यह वीरभद्र की गोष्ठी है। अपने दस मित्रों के साथ एक वर्ष की आवन साप्ताहिक गोष्ठियों में उसने जो बात चीत की है उसी का विवरण इस पुस्तक में है। मित्रों के साथ बात चीत करने में जीवन की सबसे बड़ी सरसता है: यूनानी दार्शनिक एपीकुरस का दावा था। वीरभद्र की गोष्ठी का विवरण पढ़कर आप इससे बहुत कुछ सहमत हो जायंगे। वैसे, वीरभद्र यूनानी या किसी पाश्चात्य दर्शन का नहीं, पूर्वीय बुद्धिमता का ही अधिक समर्थक जान पड़ता है। इन चर्चाओं में जीवन के अनेक विषय आये हैं: जीवन-निर्वाह, नैतिकता, स्वतन्त्रता, प्रेम, विवाह, इच्छाएँ-कुण्ठाएँ, सुख और विकासकी कामनाएँ और उनके उपयोग का प्रश्न आदि। जिसे सेक्स की समस्या कह सकते हैं उसकी चर्चा भी बहुत खुलकर आई है। फिर भी इन सबके बीच सूत्र एक ही पिरोया है: मनुष्य-मनुष्य के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का, क्योंकि वीरभद्र की राय में जीवन का परम रोचक और परम उपयोगी तत्व इस 'सम्बन्ध' में ही है।

इन चर्चाओं की नैतिकता से बहुतों को विरोध हो सकता है लेकिन इनकी मानवीय सहृदयता और रोचकता से नहीं; क्योंकि इनमें उनकी हार्दिक माँगों का ही दर्शन और प्रतिपादन है। वीरभद्र के विचारों से आप भले ही चौंकिए, खीझिए, टकराइए; लेकिन इनका बहिष्कार करना कठिन होगा। ऐसी मिठास, आत्मीयता और शालीनता इनमें हैं। निश्चिन्त रहिए, उसके सम्पर्क में आप दुर्बलता और ओछेपन की कोई झाईं न पायेंगे—उसका नाम ही जो वीरभद्र है!

इन गोष्ठियों को उसने कठोर चौकसी के साथ ग्यारह व्यक्तियों तक ही सीमित और गोपनीय रक्खा था; लेकिन अब इनका विवरण आपके हाथ में है। पुस्तक आपको प्रिय लगी तो वीरभद्र का निमन्त्रण भी अपने पास आया समझिए।

वीरभद्र की गोष्ठी

जिसमें ग्यारह व्यक्तियों की एक रोचक, मनोवैज्ञानिक, व्यवहार-सुलभ विचार-गोष्ठी के माध्यम से प्रस्तुत की गई है :

सामाजिक चिन्तन की एक पृष्ठभूमिका

लेखक :
रावी.

कैलास प्रकाशन, आगरा

वितरक :
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई पटना

परिचय

उपन्यास के रूप में 'नये नगर की कहानी' लिखने के बाद दो पुस्तकें लिखने का विचार मेरे मन में आया था : 'सामाजिक चिन्तन की पृष्ठ-भूमिका' शीर्षक एक चिन्तन-ग्रन्थ और 'चिन्तन की रेखा' शीर्षक एक उपन्यास। प्रस्तुत पुस्तक 'वीरभद्र की गोष्ठी' उन दोनों का ही एक में समन्वयपूर्वक समावेश है। चिन्तन-ग्रन्थ के दृष्टिकोण से सामाजिक चिन्तन की एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का ध्येय ही मैंने इस रचना में सबसे ऊपर रक्खा है।

जीवन के प्रति वीरभद्र का एक सुनिश्चित दर्शन है। मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों और आदान-प्रदानों में उसकी गहरी रुचि एवं आस्था है और उन्हीं के विकास में वह जीवन के 'परम रोचक' तथा 'परम उपयोगी' की उपलब्धि मानता है। इसी लक्ष्य की ओर अपने दस मित्रों के वर्ग के साथ बढ़ने की उसने एक वर्ष की बावन चर्चाओं में तैयारी की है। इन गोष्ठियों के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उसने जिस दृष्टिकोण की स्थापना करली है उससे अगली मञ्जिल के दृश्य की कुछ झलक स्पष्ट दीखने लगती है। निस्संदेह इस गोष्ठी की चर्चाओं में आगे के लिए उसका एक सुनिश्चित अभिप्राय है।

'नये नगर की कहानी' का प्रधान नायक वेंकटाचलम् और इस रचना का वीरभद्र जीवन के एक ही क्षेत्र के, लगभग एक-सा ही उद्देश्य लेकर चलने वाले कार्यकर्ता हैं। फिर भी वेंकटाचलम् कुछ अलौकिक और रहस्य-सम्पन्न-सा है, किन्तु वीरभद्र सर्वथा लौकिक एवं मानवीयता में

बहुत गहरा है। लेखक के नाते मैं अपने आपको वीरभद्र का सृष्टा कह सकता हूँ, किन्तु वास्तव में हार्दिक चेतना और बुद्धिमत्ता के धरातल पर वह अपने सृष्टा से कहीं अधिक ऊँचा है। अलबत्ता स्नेह और अनुराग की जो क्षमता उसमें है वह उसे मेरी ही देन है।

इस पुस्तक के जिन पाठक-पाठिकाओं को वीरभद्र प्रिय लगे उनके लिए वह अप्राप्य नहीं है। वीरभद्र की अगली गोष्ठियों का विवरण लिखने का कोई संकल्प अभी मेरे मन में नहीं है किन्तु उन गोष्ठियों के द्वार मेरे वैसे पाठकों के लिए निमन्त्रणपूर्वक खुले हुए हैं।

कैलास
सिकन्दरा—आगरा
२३ नवम्बर १९५६

रावी.

"To turn over the mental soil of the world, to break the hard pavements of its set and rigid opinion, so as to allow the ideas of the future to grow.

वीरभद्र की गोष्ठी

"Epicurus (342—270 B. C.) declared that the pleasure derived from the memory of pleasant conversations with a philosophical friend made him perfectly happy on the day that he was dying of a painful disease....Friendship always remained an object of special culture among the Epicureans, and their mutual affection was remarked on by all observers."

(*From* History of Ancient Philosophy by A. W. Benn)'

"'इन गोष्ठियों में हम जो चर्चाएं कर रहे हैं वे मित्रता या सद्-व्यवहार के कुछ फालतू अथवा कभी-कभी काम आने वाले सिद्धान्तों की खोज करने के लिए नहीं हैं, बल्कि उनका सम्बन्ध मनुष्य की मौलिक सामाजिक अर्थात् दूसरों से सम्पर्क स्थापित करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति से है; और इस तरह हमारे अध्ययन के राजनीति, व्यवसाय धर्म आदि के समस्त विषयों से उनका गहरा सम्बन्ध है। वे कुछेक नैतिक या मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए नहीं, प्रत्युत समाज के सर्वाङ्ग जीवन की मौलिक समस्या का हल खोजने के लिए हैं। ग्राहक और विक्रेता के बीच, शासक और शासित के अथवा उपदेशक और अनुयायी के बीच किसी भी माँग और पूर्ति के सिलसिले में जो आन्तरिक क्षोभ उत्पन्न होता है वह संसार के व्यवसाय, राजनीति और धर्म को असाधारण रूप में प्रभावित बल्कि संचालित करता है। उस क्षोभ से ही हमारी मनोवृत्तियों का, उस मनोवृत्ति से हमारी व्यावहारिक प्रवृत्तियों का और उन प्रवृत्तियों से ही समाज के इस विराट् ढाँचेका—संसारकी परिस्थितियों का निर्माण होता है।....इस गोष्ठीके हम ग्यारह सदस्य यदि सचमुच ठीक तरीके से आपस में मिल सकें तो जीवन की सबसे बड़ी रोचकता और समृद्धि हमें यहीं एक-दूसरे के सम्पर्क से मिल सकती हैं। यही प्रयोग द्वारा हमें इन गोष्ठियों में देखना है। समान स्तर के विचार-शील कुछ लोग यदि आपस में ठीक तरीके से मिल सकें तो उनका जीवन सहज ही भरपूर सरस और समृद्ध हो जायगा। यह सामाजिक रसायन—'सोशल एल्कमी'—का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है, क्योंकि किसी भी छोटे से वर्ग द्वारा इसके प्रयोग का फल उसी के भीतर सीमित नहीं रह सकता, वह उस वर्ग के बाहर सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता है।"

—वीरभद्र

पहली गोष्ठी

यह ग्यारह व्यक्तियों की एक गोष्ठी है। वीरभद्र इसका संयोजक और प्रमुख वक्ता है। उसी ने अपने परिचित दस व्यक्तियों को अपने घर निमन्त्रित कर इस गोष्ठी का प्रारम्भ किया है। आज बृहस्पतिवार है और वीरभद्र की योजना है कि प्रति सप्ताह आज के ही दिन यह गोष्ठी आध घण्टे के लिए उसके घर जुड़ा करेगी। जब तक विशेष आवश्यकता न होगी गोष्ठी के सदस्य इन निमन्त्रित दस से आगे नहीं बढ़ाये जायंगे। गोष्ठी के इस पहले निमन्त्रण में कुछ प्रीति-भोजन की भी व्यवस्था रक्खी गई थी। उससे निवृत होकर सब लोग अब वीरभद्र की बैठक में आ गये हैं और फर्श पर एक अर्द्ध चन्द्राकार-से वृत्त में उस के समीप घिर कर बैठ गये हैं।

गोष्ठी की बातचीत का विवरण देने से पहले यह उपयुक्त होगा कि उपस्थित जनों का रूप-दर्शन आवश्यक परिचय-सहित इन पंक्तियों के पाठकों को करा दिया जाय।

वीरभद्र के सामने उसके बाएँ हाथ के समीप जो सज्जन बैठे हुए हैं वह एक सरकारी दफ्तर के क्लर्क हैं; उनकी आयु ३६ वर्ष की है, स्वास्थ्य साधारण, रूप साधारण और आय कुल १६० रुपया मासिक है; साधारणतया कठिनाई से ही उनका जीवन-निर्वाह होता है। उनसे आगे दाहनी ओर को बढ़ने पर उनकी पत्नी हैं; आयु ३० वर्ष, स्वास्थ्य अच्छा, रूप साधारण। उनसे आगे तीसरी एक अधेड़ महिला हैं; आयु ५२ वर्ष, स्वास्थ्य बहुत अच्छा, रूप अब भी विशेष सुन्दर और

घर की समृद्ध; विधवा होने के कारण स्वयं स्वामिनी, स्थायी आय छह सौ रुपया मासिक। उनके आगे चौथी एक सुशिक्षिता कुमारी हैं; आयु २५ वर्ष स्वास्थ्य गिरा हुआ, रूप की बहुतकुछ कुरूपा, जीवन-स्तर साधारण; सवा सौ रुपया मासिक वेतन एक विद्यालय में पाती हैं। उनसे आगे पाँचवें सज्जन एक लेखक और पत्रकार हैं; आयु ४० वर्ष, स्वास्थ्य गिरा हुआ, रूप साधारण और आय साधारण निर्वाह के लिए पर्याप्त, दो-ढाई सौ रुपये मासिक है। छठे सज्जन एक साधारण श्रेणी के व्यापारी हैं; आयु ३५ वर्ष, स्वास्थ्य अच्छा, देखने में कुछ कुरूप, आय लगभग चार सौ रुपया मासिक। सातवें सज्जन डाक्टर हैं; आयु ५० वर्ष, स्वास्थ्य साधारण, रूप साधारण, आय अच्छी है, लगभग पाँच सौ रुपया मासिक। आठवें सज्जन वकील हैं; आयु ३४ वर्ष, स्वास्थ्य बहुत अच्छा, रूप में सुन्दर, आय साधारण निर्वाह के लिए पर्याप्त, लगभग तीन सौ रुपया मासिक। नवें सज्जन एक नवयुवक ग्रेजुएट हैं; आयु २८ वर्ष, स्वास्थ्य साधारण, रूप साधारण, घर के छह आश्रितों का बोझ लिये हुए कठिन आर्थिक संकट में; कुल अस्सी रुपया मासिक ट्यूशनों से कमाते हैं। दसवें सज्जन एक साधारण कोटि के घरके रईस हैं; आयु ४८ वर्ष, स्वास्थ्य साधारण, रूप साधारणतया सुन्दर, आय लगभग एक हजार रुपया मासिक। और ग्यारहवां स्वयं वीरभद्र; आयु ४६, स्वास्थ्य साधारण, देखने में प्रायः कुछ असुन्दर-सा ही और आय साधारण तथा असाधारण निर्वाह के लिए पर्याप्त।

गोष्ठी की इस झाँकी से स्पष्ट है कि इसके सभी सदस्य समाज के मध्यम वर्ग के अन्तर्गत उसकी निचली से लेकर बिचली श्रेणी तक के ही व्यक्ति हैं। आगे जहाँ कहीं इनमें से किसी विशेष व्यक्ति की ओर संकेत करने की आवश्यकता पड़ेगी, ऊपर दिये हुए क्रम के अनुसार उसकी संख्या के उल्लेख द्वारा ही ऐसा किया जायगा। किसी सदस्य को उसके निजी नाम से पुकारना आगे के लिए असुविधाजनक

रहेगा; इसलिए इन कार्यवाहियों के लिपिबद्ध-कर्त्ता का पाठकों से अनुरोध है कि वे उपर्युक्त क्रम-संख्या को ध्यान में रक्खें।

गोष्ठी का प्रारम्भ करते हुए वीरभद्र ने कहा:

"मित्रो, आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर यहाँ आये, इसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। इस नगरमें मेरा पहला वर्ष भी अभी पूरा नहीं हुआ इसलिए, और कुछ मेरे व्यावसायिक क्षेत्र और उसकी प्रकृति के कारण भी, मेरे मित्रों-परिचितों की संख्या बहुत कम है। आप जानते हैं कि मैं एक चित्रकार हूँ और पुस्तक-प्रकाशकों के लिए पुस्तकों के मुख-पृष्ठ के डिज़ाइन बनाना मेरा व्यवसाय और जीविका का साधन है। आपमें से तीन-चार को छोड़ शेष सज्जन ऐसे ही हैं जिनसे मेरा परिचय किसी दूकान की बैठक का या केवल राह-चलते का ही है। इस नगर में अपने मित्रों और परिचितों की जो सूची मैंने बनाई है वह संख्या में सौ के लगभग पहुँच जाती है। उन्हीं में से बारह ऐसे व्यक्तियों को चुनकर, जिनसे मुझे कुछ विशेष आशाएँ हैं, मैंने निमन्त्रित किया था; और मुझे बहुत संतोष है कि उनमें से केवल दो को छोड़ शेष दस उपस्थित हैं।

"दावतों पर कुछ मित्रों-परिचितों को एकत्र कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। इतनी उदारता और मिलनसारी आप सभी में है कि किसी भी भले व्यक्ति के ऐसे निमन्त्रण को आप प्रायः स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी प्रीति-गोष्ठियों में आप अपनी सहृदयता का योग देते हैं। आपस में मिलना-जुलना—वह चाहे दावतों में हो चाहे साहित्य-संगीत-कला या विचार-विनिमय की गोष्ठियों में हो—आपको अच्छा लगता है। लेकिन इन सम्मिलनों में एक ऐसी बात छूट जाती है जिसके अभाव में आपके हृदयों की गहराई तक कोई स्पर्श नहीं पहुँचता और कोई बड़ा फल नहीं निकलता। वह कौन-सी बात है जो

आपके पारस्परिक मिलनों में छूट जाती है—यही मुझे आपके साथ मिलकर खोजना है। दो व्यक्तियों के पारस्परिक मिलन में कभी-कभी वह बात उभर आती है और वे तुरन्त ही एक-दूसरे के हृदयों को उनके भीतरी से भीतरी कोनों तक छू लेते हैं। यह प्रायः तब होता है जब उनमें से एक कोई सुन्दरी स्त्री होती है और दूसरा एक आकर्षक पुरुष, और वे दोनों पहली दृष्टि में ही, या किन्हीं पूर्व-संचित धारणाओं और अनुमानों के सहारे, एक दूसरे के प्रति अनिवार्य रूप में आकृष्ट हो जाते हैं। यह तब भी होता है जब उनमें से एक मानव-जाति का कोई महान् शिक्षक और दूसरा उस शिक्षा का समर्थ सुपात्र होता है। दो से अधिक व्यक्तियों के मिलन में भी कभी कभी वह बात—जिसकी हम खोज करेंगे—उभर आती है; और जहाँ ऐसा होता है वहीं हम संसार की अनेक महान् लोकोपयोगी संस्थाओं का जन्म-स्थल देखते हैं। आज की अनेक ऐसी महान् और लोकसेवी संस्थाओं का प्रारम्भिक इतिहास आप खोजें तो देखेंगे कि प्रायः तीन-चार या अधिक से अधिक दस-बीस व्यक्तियों के अति साधारण सम्मिलन ने ही उन्हें जन्म दिया था।

"दो या अधिक व्यक्तियों के मिलन से—पास बैठने और बातचीत करने से भी—एक ऐसी वस्तु उत्पन्न होती है जो जीवनकी सबसे अधिक रोचक, सबसे अधिक उपयोगी और सबसे अधिक स्थायी वस्तु है। लेकिन दुर्घटना यह होती है कि हम उस वस्तु की ओर आँख नहीं उठाते, हाथ नहीं बढ़ाते।

"यहाँ उपस्थित हम सभी, एक से ग्यारह तक बहुत साधारण श्रेणी के व्यक्ति हैं। हममें से किसी में भी कोई गुण—सुन्दरता, कला, बुद्धिमत्ता या अधिक सम्पन्नता नहीं है। जिन वस्तुओं से लोग आकृष्ट होते हैं वे हममें से किसीके भी पास गिनने योग्य मात्रा में नहीं हैं। फिर भी यदि हम उस वस्तु की ओर, जो व्यक्तियों के पारस्परिक मिलन से अनिवार्य रूप में उत्पन्न होती है, ध्यान देकर

हाथ बढ़ायेंगे तो मेरा यह निश्चय है कि हम उसकी असाधारण रोचकता, जीवन के लिए उसकी अति समर्थ उपयोगिता और उसके चिर स्थायित्व से लाभ उठाये बिना नहीं रहेंगे। जीवन की ऊँची से ऊँची शक्ति, सुन्दरता, प्रेरणा और सम्पन्नता हमें हमारे बीच से ही उत्पन्न होकर मिलेंगी। मेरे निकट यह एक सत्य है, जिस पर विश्वास करने के मेरे पास कुछ कारण हैं। उन कारणों की भी मैं यथासमय चर्चा करूँगा और आपके साथ मिलकर इस वर्ष की अगली पचास-एक साप्ताहिक गोष्ठियों में उस सच्चाई को प्रत्यक्ष देखने-दिखाने का भी प्रयोग करूँगा।

"जैसा मैंने अपने निमन्त्रण-पत्र में लिखा था, आज की यह गोष्ठी एक वर्ष के लिए चलने वाली बृहस्पतिवासरीय साप्ताहिक गोष्ठियों की पहली भेंट है, और मुझे आशा है कि आप सभी मेरे निमन्त्रण को हर सप्ताह स्वीकार कर यहाँ आते रहेंगे। अगली गोष्ठियों में आज की तरह दावत की तो नहीं, फिर भी मौसम के अनुसार ठंडे या गरम पेय सत्कार की व्यवस्था कभी-कभी रहेगी और उसका सार-रस मुझे ही सबसे अधिक मिलेगा। अगली ही गोष्ठी में मैं अपने उस मित्र की चर्चा करूँगा जिसकी प्रेरणा और सहयोग से मैंने इन गोष्ठियों का आयोजन किया है; क्योंकि वास्तव में वही इन गोष्ठियों में आपका सत्कार-कर्ता मेज़बान है।

"अन्त में मैं आप सबको आज की गोष्ठी के लिए धन्यवाद दूँगा, विशेषकर अपने दाहने हाथ के समीपवर्ती अतिथि को, जोकि यहाँ उपस्थित जनों में मेरे सबसे कम परिचित और प्रत्यक्ष रूप में अपरिचित होते हुए भी, केवल मेरे निमन्त्रण की चार पंक्तियों पर ही यहाँ चले आये हैं। इस सभा के धनिकतम व्यक्ति यही हैं, और धन के भारी मनुष्य के लिए चलना-फिरना कुछ अधिक कष्ट-साध्य होता है। इसलिए मेरे ये मित्र मेरे और सम्भवतः आप सबके भी

विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।"

वीरभद्र की बात पूरी हुई। गोष्ठी में उपस्थित कुछ लोग कुछ लोगों के लिए नये भी थे; इसलिए सभी ने अपना-अपना संक्षिप्त परिचय दिया और सभा विसर्जित हुई। ✱

दूसरी गोष्ठी

अगले बृहस्पतिवार को वीरभद्र के घर दूसरी गोष्ठी जुड़ी। वही दसों व्यक्ति उपस्थित थे।

वीरभद्र ने कहा :

"मनुष्यों के पारस्परिक मिलन की एक कला है। वह कला हमारे लिए अत्यन्त स्वाभाविक है। लेकिन हम जीवन में इतने कृत्रिम और अस्वाभाविक हो गये हैं कि उस कला का उपयोग नहीं कर पाते। फिर भी समाज में कुछ लोग बराबर ऐसे होते हैं जो इस कला का निरन्तर उपयोग करते रहते हैं। अपने जिस मित्र की चर्चा करने का वादा मैंने पिछली गोष्ठी में किया था वह समाज का एक ऐसा ही व्यक्ति है। अपनी महानता और सरसता के लिए वह अपने परिचित छोटे-से समाज में विशेष सम्मानित है। पश्चिम और पूर्व की गहरी बुद्धिमत्ता उसे प्राप्त है। जिस देश का वह निवासी है, उसके लिए भारत और यूनान पश्चिम हैं, चीन और जापान ही पूर्व हैं; और पूर्व की बुद्धिमत्ता ही उसके लिए अधिक स्वाभाविक और व्यावहारिक है। आप चाहें तो बुद्धिमत्ता को दार्शनिकता के नाम से भी पुकार सकते हैं। यूनान, और विशेषकर भारत दार्शनिकता की उड़ान में बहुत ऊँचा, सूक्ष्म और दुरूह भी है। कल्पना की समृद्धि और तार्किकता

की काट-छाँट से वह बहुत बोझिल भी है। इसके विपरीत चीन और जापान का मस्तिष्क बहुत सरल, लौकिक और भौतिक जीवन के अनुरूप व्यावहारिक है। एक दृष्टिकोण से कह सकते हैं कि यह पूर्वीय दर्शन ही जीवन और जीवन-सम्बन्धी चिन्तन के अधिक समीप, और इसीलिए अधिक गहरा है। इस दृष्टि से योरुप और अमेरिका के नहीं, चीन और जापान के पास ही सच्चे भौतिक जीवन की कुंजी है और उन्हीं के पास भौतिक विकास का वास्तविक आधार है। अपने भौतिक कौशल, विलक्षण मस्तिष्क, निर्भीक चरित्र, और समृद्धियों के बीच सरल निर्लेपता के लिए जापान आज भी संसार का मुकुट बना हुआ है। और यह विशाल चीन भी कुछ शताब्दियों तक एक हलके नशे में दबा हुआ अपनी भीतरी चेतना में निष्क्रिय नहीं, कुछ काम करता रहा है। उसके नशे का (अफीम के ?) बोझ उतर गया है। उसकी ऊपरी चेतना भी जाग आई है और उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता उसकी पहली अँगड़ाई है। समय आरहा है कि यह विशाल राष्ट्र संसार की भावी समृद्धि में अपना ऊँचा आसन सम्हालेगा। यह सब उस पूर्वीय बुद्धिमत्ता या दार्शनिकता का—दार्शनिकता बहुत हलका शब्द है—फल होगा, जिसके बीज उसके भीतर ही भीतर निरंतर अंकुरित होते रहे हैं। उस अत्यन्त व्यावहारिक, सरल और समर्थ पूर्वीय बुद्धिमत्ता में मेरे उस मित्र की गहरी पहुँच है; और मनुष्यों के पारस्परिक मिलन की जिस कला की बात मैंने आज उठाई है उस कला का उस बुद्धिमत्ता से गहरा सम्बन्ध है। अपने उस मित्र के आदेश और अनुरोध से ही मैंने यहाँ आपके नगर में एक वर्ष के लिए साप्ताहिक गोष्ठियों का यह प्रयोग प्रारम्भ किया है। अपने उस मित्र और उसकी बुद्धिमत्ता की इतनी चर्चा मैंने केवल यह बताने के लिए की है कि ये गोष्ठियाँ साधारण मनो-विनोद या वाद-विवाद के लिए नहीं हैं, प्रत्युत इनके प्रयोग में आप कुछ अधिक गहराई

और सार्थकता की आशा कर सकते हैं।

"अब मनुष्यों के पारस्परिक मिलन की उस कला की ओर कुछ संकेत करके मैं आज की अपनी बात पूरी करूँगा। पिछली गोष्ठी में मैंने कहा था कि हमारे पारस्परिक मिलनों में एक ऐसी बात छूट जाती है जिसके अभाव में हमारे हृदयों की गहराई तक कोई स्पर्श नहीं पहुँचता और कोई बड़ा फल नहीं निकलता। इस छूट जाने वाली बात का उस कला से सीधा सम्बन्ध है, जिसकी मैं आज चर्चा कर रहा हूँ।

"जब कोई दूसरा व्यक्ति आपके पास आकर मिलता है तो आप समझते हैं कि आप एक से दो हो गये हैं। लेकिन यह मानव-मस्तिष्क का एक बड़ा भ्रम है। क्योंकि व्यावहारिक जीवन में—जैसे कि मानव-मस्तिष्क की सबसे ऊँची विद्या अंकगणित में भी—एक और एक दो कभी नहीं हो सकते। एक और एक या तो ग्यारह हो सकते हैं या फिर 'एक दशमलव एक' अर्थात् एक सही एक बटा दस। पहली दशा में दो व्यक्तियों का मिलन बड़े लाभ की बात है और दूसरी दशा में बड़े घाटे की। पहली दशा में एक व्यक्ति दसगुना हो जाता है और दूसरा यथावत् बना रहता है; दूसरी दशा में पहला यथावत् एक बना रहता है लेकिन दूसरा उसके समीप आने पर एक से घट कर दशमांश रह जाता है। मानव-गणित का ही नहीं, मानव-जीवन का भी 'बहुत बड़ा रहस्य इस फार्मूले में है। सोचिए, एक और एक मिलकर दो कैसे हो सकते हैं! दो तो वे दोनों अलग अलग रहते हुए ही हैं, फिर उनके मिलने का फल क्या हुआ! सुझाव यह है कि इस मिलने की क्रिया से गणित का, और जीवन का भी, सब से बड़ा अङ्क 'नौ' उत्पन्न हो जाता है और उन दोनों को मिल कर ग्यारह हो जाना चाहिए। लेकिन अधिकतर ऐसा नहीं होता। दुर्घटना यह होती है कि हम दूसरे व्यक्ति के आने पर उसके लिए अपना आसन नहीं छोड़ते। हम अपनी इकाई के इकाई ही बने रहते हैं और उस दूसरे व्यक्ति को घटा कर

उसका दशमांश ही देखते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि यह दूसरा भी—यदि वह हमारे पास टिकता है—अपने आपको दशमांश ही समझने लगता है या फिर हमसे अलग हो जाता है। इस प्रकार हमारा मिलना या तो मिलना ही नहीं होता या फिर एक बड़े घाटे का व्यापार होता है। एक शब्द में, मिलने की कला का सिद्धान्त यह है : जब कोई व्यक्ति आपके पास आये तो उसके लिए अपना आसन छोड़कर अपने बाएँ हाथ को खिसक जाइये। आप दसगुने हो जायँगे और वह भी यथावत् पूरा बना रहेगा। तभी आपका और उसका मिलन सार्थक होगा।

"लेकिन मिलन-कला का यह विवरण आपके लिए अत्यन्त 'आङ्किक' और रूखा हो सकता है। इसे यहीं छोड़ दीजिए और इसकी बात बिलकुल मत सोचिए। आज की गोष्ठी के लिए इसकी इतनी चर्चा आवश्यक थी; किन्तु आगे की बातचीत में इसका कोई काम नहीं पड़ेगा। हो सकता है कि इसकी भूमिका पर आगे किसी दिन अचानक कोई नई स्फुरणा आपके मन में अपने आप जाग आये। उसी में इस चर्चा की सार्थकता हो सकती है। भारत-यूनान, चीन-जापान और योरुप-अमेरिका की जो बातें मैंने आज कही हैं, अपने मित्र की जो इतनी चर्चा की है, उन सब का हमारी अगली बातचीत से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। इसलिए आप उन्हें भूल जायें। अगली गोष्ठियों में हम स्वतन्त्र रूप से अपने जीवन की ही सरसतम, रोचकतम वस्तुओं को खोजने और उन्हीं की चर्चा करने का प्रयत्न करेंगे।" ★

तीसरी गोष्ठी

तीसरी गोष्ठी में वीरभद्र ने कहा :

"अगर आप सचमुच जीवन की सबसे अधिक रोचक, उपयोगी और व्यापक वस्तु को खोजना चाहते हैं तो उसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यही है कि आप उसे खोजने के लिए स्वतन्त्र हों। आप मथुरा जाना चाहते हैं तो इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यही है कि आप वहाँ जाने के लिए स्वतन्त्र हों। इसके बाद ही सवारी और यात्रा-व्यय आदि की आवश्यकताएँ आती हैं। किसी भी काम के लिए सबसे पहली आवश्यकता स्वतन्त्रता की ही है। स्वतन्त्रता आज के युग का एक बहुत सम्मानित शब्द है। कहा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य को विचार करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, और साधारण विश्वास यही है कि प्रत्येक मनुष्य विचार करने में स्वतः स्वतन्त्र है ही। किसी के विचार करने पर कोई दूसरा रोक नहीं लगा सकता। विचारों को दूसरों के सामने प्रकट करने पर ही रोक लगाई जा सकती है। आज के विकसित समाज में यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने विचार प्रकट करने की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लेकिन ऐसी स्वतन्त्रता में शासक वर्ग और सामाजिक नैतिकता के पुरोहित वर्ग के लिए कुछ बाधाएँ हैं। यदि विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय तो शासन-तन्त्र को अपनी नीति चलाने में कठिनाई हो सकती है और नैतिक नियामकों के सामने सामाजिक आचरण की रक्षा का प्रश्न गम्भीर रूप लेकर उठ खड़ा हो सकता है। कुछ लोगों के प्रकट किये हुए असाधारण, लेकिन अभी अप्रचलित विचारों से प्रेरित होकर जन-साधारण भी शासन और आचारिक नीति को कुछ चुनौतियाँ देने के लिए तैयार हो सकते हैं। इसीलिए विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता अभी विवाद-ग्रस्त है। प्रकट में नहीं तो

भीतर ही भीतर वह अभी बहुतों को अमान्य है। इससे आगे अपने स्वतन्त्र विचारों को क्रियान्वित करने की स्वतन्त्रता आती है। इसका मतलब है कि कोई भी व्यक्ति जैसा सोचे, जैसा चाहे, करने के लिए स्वतन्त्र हो। ऐसी स्वतन्त्रता यदि मान्य करली जाय तो समाज में न शासन-तन्त्र का कोई स्थान रहेगा, न दण्ड-व्यवस्था का, न वैयक्तिक सुरक्षा का ही। ऐसी स्थिति या तो आतंक-अत्याचार-पूर्ण उच्छृङ्खलता की स्थिति होगी या फिर किसी सुकल्पित दैवी अराजकवाद की, जिसमें सभी व्यक्ति भरपूर समर्थ और उदार ही होंगे। इस तीसरी श्रेणी की स्वतन्त्रता के ख़तरे बहुत हैं; और यह स्पष्ट है कि हम अभी उसकी मान्यता का प्रश्न नहीं उठा सकते। फिर भी स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता है और वह प्रत्येक व्यक्ति को स्वभावतया प्यारी है, और इसीलिए व्यक्तियों के समाज की भी वह अभीष्ट है। एक या दो में नहीं, अपनी सभी श्रेणियों में वह हमारी अभीष्ट है।

"इस गोष्ठी की कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न मुझे आपके सामने रखना है। क्या आप इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि यहाँ उपस्थित हम सभी इस गोष्ठी में अपने-अपने विचारों को प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र हों ?"

"निस्संदेह, यहाँ उपस्थित हम लोगों में से किसी को भी इसमें आपत्ति नहीं हो सकती। अपने विचारों को प्रकट करने की भी स्वतन्त्रता न मानें तो हमारे इस गोष्ठी में आने का कोई अभिप्राय ही नहीं रह जाता।" नवें आसन के * नवयुवक ने कहा।

---

* पहली गोष्ठी के आसन-क्रम के अनुसार। यह आवश्यक नहीं है कि हर गोष्ठी में सभी सदस्य अपने पहले वाले क्रम में ही बैठें। केवल संकेत की सुविधा के लिए ही उन्हें पहले दिन के आसन-क्रम की संख्या दे दी गई है। इससे पाठकों को उन्हें परिचय-सहित पहचानने में सहायता मिलेगी।

"लेकिन इसमें विचार व्यक्त करने वाले के लिए कुछ कठिनाइयाँ और सुनने वालों के लिए कुछ असुविधाएँ हो सकती हैं। उनकी भी नाप तोल इसमें कर लेनी चाहिए। मान लीजिए कि आपका विचार है कि पुरुष को किसी भी स्त्री से, किसी दूसरे पुरुष की विवाहिता पत्नी से भी, प्रेम करने और प्रेम-निवेदन करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए और इसमें उसके पति को बाधक नहीं होना चाहिए। क्या इस विचार को आप समाज के दस भले व्यक्तियों के सामने व्यक्त करने में किसी कठिनाई का अनुभव न करेंगे? क्या आप यह न देखेंगे कि ऐसा प्रकट कर देने पर आप कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में गिर जायंगे और आपके पूर्व-परिचित कुछ दम्पति आपको अपने घर आने देने में किसी हद तक सशंक हो उठेंगे? अपनी कठिनाई के अतिरिक्त, वैसा व्यक्त कर देने पर क्या कुछ पत्नियां या कुछ पति या कुछ पति-पत्नी सचमुच किसी असुविधा में न पड़ जायँगे? उनकी कुछ दबी पारस्परिक विवशताओं, वञ्चनाओं, अतृप्तियों और विद्रोहमयी कामनाओं को जगने का और बाहर से वैसा कोई निमन्त्रण आने पर उनके बीच सन्देह या विरक्ति का वातावरण उत्पन्न होने का कुछ अवसर न मिल जायगा? क्या इससे समाज की शान्ति में कुछ बाधा न आयेगी?" वीरभद्र ने पूछा।

"यह हो सकता है" दूसरे आसन की विवाहिता युवती ने कहा, "लेकिन इसके लिए हमें तैयार होना चाहिए। अपने स्वतन्त्र विचारों को व्यक्त करने और दूसरों के वैसे विचारों को खुले हृदय से सुनने के लिए जब हम तैयार होंगे तभी जीवन में आगे बढ़ पायेंगे। मुझे, मेरे पति को, और मैं समझती हूँ यहाँ उपस्थित मेरी दो बहनों को भी किसी के स्वतन्त्र विचार सुनने और उन पर विचार करने में आपत्ति न होगी।"

"इनका यह कथन अग्रगामी और साहस-पूर्ण है" सातवें आसन के डाक्टर महोदय ने कहा, "फिर भी इस श्रेणी के स्वतन्त्र विचार-विनिमय में कुछ कठिनाइयाँ और असुविधाएं अवश्य हैं और वे कभी-

कभी बहुत गम्भीर हो सकती हैं। इसलिए हम सदैव के लिए ऐसा नियम नहीं निभा सकते कि अपने सभी स्वतन्त्र विचार निस्संकोच रूप में यहाँ प्रकट ही करते रहेंगे।"

"इस आशंका में दूरदर्शिता है" वीरभद्र ने कहा, "और यदि इस गोष्ठी में हम स्वतन्त्र विचारों के प्रकाशन की पूरी छूट देंगे तो आगे चल कर हममें से बहुतों को यह कहीं न कहीं खटकेगी और हम सभी निश्चिन्त रूप में सम्मिलित न रह सकेंगे। ऐसी स्वतन्त्रता को कुछ समय के लिए स्थगित रखकर मैं अभी आपसे केवल सोचने की—सोची हुई बात को कहने की नहीं, बात को केवल अपने मन में सोचने की—स्वतन्त्रता की मांग करना चाहता हूँ। हमारी कार्यवाही के लिए अभी इतना ही पर्याप्त है। क्या आप सब लोग जीवन के किन्हीं भी प्रश्नों पर स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचने के लिए तैयार होंगे? इन गोष्ठियों के लिए क्या आप सर्व-सम्मति से ऐसा प्रस्ताव स्वीकार कर सकते हैं?"

"सोचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। बन्धन वहाँ आता है जहाँ दूसरों के सामने उस स्वतन्त्र विचार को व्यक्त करने की बात आती है। अपनी मनचाही बात सोचने के लिए मैं सदैव स्वतन्त्र हूँ। किसी के स्वतन्त्र सोचने में भी कोई दूसरा व्यक्ति बाधक हो सकता है, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा।" चौथे आसन की कुमारीजी ने कहा।

"हमारी मानसिक परतन्त्रता असीम है। वास्तव में करने और कहने के धरातलों पर ही नहीं, सहज भाव से सोचने के लिए भी हम स्वतन्त्र नहीं हैं। यही बात मैं आज आपके सामने रखना चाहता था। निस्संदेह यदि हम, इस गोष्ठी के ग्यारह सदस्य जीवन के प्रश्नों और बाहर-भीतर के सुझावों पर सहज स्वतन्त्र भाव से सोचने के लिए—केवल अपने मन में सोचने के लिए—तैयार हो जायं तो जीवन की रोचकता और सम्पन्नता की खोज में बहुत दूर तक जा सकते हैं।

हमारी बहुत बड़ी विवशता और दरिद्रता यह है कि हम वास्तव में सोचने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हैं। आज का समय पूरा हो गया है, इसलिए मैं अगली गोष्ठी में आपके सामने कुछ ऐसे प्रश्न रक्खूंगा, जिनसे आप अपनी इस विवशता को कुछ स्पष्ट रूप में देख सकेंगे; और उसके बाद ही प्रारम्भिक पग के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता से सम्पन्न होकर हम अपनी खोज में आगे बढ़ सकेंगे।" वीरभद्र ने कहा।

और इसके बाद सभा विसर्जित हुई। ★

चौथी गोष्ठी

चौथी गोष्ठी में वीरभद्र ने कहा :

"अच्छा हो कि अपनी इन गोष्ठियों का अभिप्राय हम स्पष्ट रूप में समझ लें और उसे बराबर ध्यान में रक्खें। इस गोष्ठी के हम ग्यारह सदस्य यदि सचमुच ठीक तरीके से आपस में मिल सकें तो जीवन की सबसे बड़ी रोचकता और समृद्धि हमें यहीं एक दूसरे के सम्पर्क से मिल सकती है—यही प्रयोग द्वारा हमें इन गोष्ठियों में देखना है। हम ग्यारह ही नहीं, समाज के कोई भी ग्यारह समान स्तर के लोग मिलकर इस प्रयोग की सफलता को देख सकते हैं। इसके लिए ग्यारह की संख्या कोई जकड़ी हुई संख्या नहीं है। ग्यारह से दो-चार कम या दो-चार अधिक व्यक्तियों का वर्ग भी ऐसा प्रयोग कर सकता है। हमारा अनुमानित सिद्धान्त यह है कि समान स्तर के विचारशील कुछ लोग यदि आपस में ठीक तरीके से मिल सकें तो उनका जीवन सहज ही भरपूर सरस और समृद्ध हो जायगा। प्रयोग द्वारा इस सिद्धान्त की सचाई हमें खोजनी है। यह सामाजिक रसायन का—'सोशल एल्कमी' का—एक महत्वपूर्ण प्रयोग है, क्योंकि

किसी भी छोटे से वर्ग द्वारा इसके प्रयोग का फल उसी के भीतर सीमित नहीं रह सकता ; वह उस वर्ग के बाहर सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता है। जब एक व्यक्ति अमीर हो जाता है तो अपनी अमीरी के स्वान्तः सुखाय उपभोग द्वारा भी वह अपने पड़ोस के दस व्यक्तियों को रोजी दे देता है—उनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता पड़ जाती है। जीवन की, और इसलिए मनुष्य और मानव-समाज की, प्रत्येक इकाई दहाई भी है ; और उस रहस्यपूर्ण रीति से प्रत्येक मनुष्य दस मनुष्य का और प्रत्येक मानव-वर्ग दस मानव-वर्गों का केन्द्र है। एक से अनेक अनिवार्य रूप में जुड़े हुए हैं।

"रोचकता और समृद्धि हमारी इन गोष्ठियों के दो प्रमुख शब्द हैं। सम्पूर्ण मानव-समाज आज किन वस्तुओं के पीछे भाग रहा है? कोई ऐसी वस्तु जो उसके मन को पकड़ सके। उसी में उसका सबसे बड़ा आनन्द है और वही उसकी खोज का लक्ष्य है। मनोरंजन के बड़े से बड़े साधन और साधनाओं की ऊँची से ऊँची उड़ानें इसी मन को पकड़ने वाले 'रोचक' के लिए हैं। और यह 'रोचक' उसे यथेच्छ मात्रा में अधिक से अधिक मिले, यही उसकी समृद्धि की कामना है। रोचकता एक तत्व है और समृद्धि उसकी मात्रा है। दोनों एक ही वस्तु की दो दिशाएँ हैं। मनुष्य की यह खोज पूरी होनी चाहिए। इन गोष्ठियों में इसी रोचकता और समृद्धि की खोज हमें करनी है। लेकिन उसके लिए सबसे पहली, मौलिक आवश्यकता है—जैसा मैंने पिछली गोष्ठी में कहा था—सोचने की स्वतन्त्रता की। क्या आप सोचने के लिए स्वतन्त्र हैं? विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता तो बाद की बात है, विचार करने के लिए ही क्या आप वास्तव में स्वतन्त्र हैं? राह चलते अगर आपको सोने की एक थैली पड़ी हुई मिल जाय तो क्या आप उस परिस्थिति पर स्वतन्त्र रूप से कुछ सोच सकेंगे? आप शायद सोचेंगे कि वह और किसी का धन है, आपको नहीं लेना

चाहिए। आप समीप से निकलते हुए किसी दूसरे राहगीर की बात सोचेंगे या बाद में आने वाली पुलिस की जांच-पड़ताल का अनुमान करेंगे। या फिर आप उस धन के उपयोग और उससे होने वाली सुख-सुविधाओं की कल्पना करेंगे। पहली दशा में आप उस थैली को वहीं पड़ी रहने देंगे और दूसरी दशा में उसे सम्हाल कर अपने वस्त्रों के बीच रख लेंगे। लेकिन क्या इन दोनों ही दशाओं में आपका सोचना स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचना होगा? क्या आपको अभ्यास है कि सामने एक सुन्दरी, आकर्षणमयी नारी को देखकर स्वतन्त्रता-पूर्वक कुछ सोच सकें? यदि आप आँखें नीची कर, मुख फेर कर उससे दूर हटने का प्रयत्न करते हैं, तो आपका वह चिन्तन अत्यन्त अस्वाभाविक और परतन्त्र है; और यदि आप उसे अपना निमन्त्रण भेजने या उसका अपहरण करने के लिए किसी गुप्त मार्ग की खोज करते हैं तो भी आपका चिन्तन उतना ही विवश और अशोभन है। यदि कोई आकर्षक, समृद्ध पुरुष किसी नव परिचिता तरुणी के सामने प्रेम-निवेदन करे तो क्या वह स्वतन्त्रता पूर्वक उस पर विचार कर सकेगी? या तो वह चीख कर उसके सामने से भाग जायगी और उसकी कुदृष्टि से स्वयं को शुद्ध करने के लिए कुछ व्रत-उपवास करेगी, या अपने पांव की जूती उतार कर अपने हाथ में उठाने की कायरता दिखायेगी, या फिर उसे अपने घर के पिछले द्वार का पता और कोई सुविधाजनक समय देने का उपक्रम करेगी। प्रेम और प्रेम-निवेदन के क्या-क्या अर्थ हो सकते हैं, वह नहीं सोच सकेगी। इन तीनों उदाहरणों में उनका चिन्तन, खोजने पर, एक ओर भय, लोकापवाद, आत्म-प्रवञ्चना और संकुचित लोक-धारणाओं के बोझ से दबा हुआ, और दूसरी ओर लाभ, अतृप्ति और सुरुचि-हीनता के पाशों में जकड़ा हुआ पाया जायगा। हम अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क से नहीं, एक भयभीत अतः निर्मम, कठोर और रूढ़िग्रस्त समाज के मस्तिष्क से ही सोचते हैं। मेरा यह कथन आप पर लागू न हो तो

मुझे प्रसन्नता ही होगी। आप स्वतन्त्रतापूर्वक सोचते हैं या नहीं, इसका फ़ैसला पाने की मुझे अभी कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात को तय करने की है कि आप स्वतन्त्र सोचने के समर्थक और अनुयायी होना पसन्द करेंगे या नहीं। क्या आपमें से किसी को इस गोष्ठी की कार्यवाहियों के अन्तर्गत स्वतन्त्र चिन्तन के विरुद्ध कोई आपत्ति है?"

"स्वतन्त्र चिन्तन के विरुद्ध हममें से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। हम लोग सोचने की स्वतन्त्रता से भी कितने वंचित हैं, इसका कुछ आभास आज आपके संकेत से हमें मिला है, यद्यपि वह अभी स्पष्ट नहीं है। निस्सन्देह इन गोष्ठियों में आने की सार्थकता और सफलता इसी में है कि हम सभी स्वतन्त्र सोचने के लिए तैयार हों।" तीसरे आसन की अधेड़ महिला ने कहा।

अन्य सभी उपस्थित जनों ने एक मत से इसका समर्थन किया। इस पर वीरभद्र ने कहा :

"तब हम सर्व सम्मति और सब की रुचि से यह निश्चय करते हैं कि सोचने की स्वतन्त्रता हम सब के लिए आवश्यक और आदरणीय है और हम यहाँ निस्संकोच इस स्वतन्त्रता का व्यवहार करने का प्रयत्न करेंगे। इस गोष्ठी के लिए उपयुक्त सदस्यों के अपने सफल चुनाव का मुझे आज बड़ा सन्तोष है और मैं आपको आपकी जागरूक सदाशयता के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। स्वतन्त्र चिन्तन को आधार-शिला के रूप में लेकर हम अगली गोष्ठी से अपनी खोज की ओर अग्रसर होंगे।" ★

पाँचवीं गोष्ठी

पाँचवीं गोष्ठी में वीरभद्र ने कहा :

"हम ग्यारह व्यक्ति यहाँ उपस्थित हैं। हममें से किसी के पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो दूसरों के लिए विशेष आकर्षक हो। हममें से कोई भी विशेष सुन्दर, धनवान्, या ऐसा प्रभावशाली नहीं है कि जिनसे हम जो वस्तु चाहते हों उनसे वही हमें दिला सके। आप ऐसा ही समझते हैं, इसलिए आपको यहाँ उपस्थित किसी भी दूसरे व्यक्ति से किसी विशेष रोचक, विशेष प्रिय वस्तु की आशा नहीं है। है न यही बात?"

"बात लगभग ऐसी ही है। फिर भी हमें आपसे कुछ विशेष रोचक विचारों के मिलने की आशा तो है ही। उनमें से कुछ विचार हमें विशेष प्रिय भी हो सकते हैं।" पहले आसन के सज्जन ने कहा।

"यह आपकी बहुत छिछली आशा है। विचार भी भला कोई रोचक और प्रिय होने की वस्तु है? कोरे विचार से आगे क्या यह सम्भव नहीं कि मेरे पास आप तक पहुँचाने के लिए किसी अत्यन्त सहृदय, सुन्दर, करोड़पति व्यवसायी युवक का एक सन्देश और किसी अनिन्द्य रूप-शील-वती तरुणी का हार्दिक निमन्त्रण हो? क्या यह सम्भव नहीं कि ऐसे व्यक्तियों का सम्पर्क मुझे पहले से ही प्राप्त हो और वे मेरे माध्यम से, किसी विशेष अभिप्राय से, आपके निकट सम्पर्क में आना चाहते हों?" वीरभद्र ने कहा।

"यह सम्भव है" पहले आसन के उन्हीं सज्जन ने कहा, "और यदि सचमुच ऐसा सन्देश और निमन्त्रण आपके पास हो तो वह हमारे लिए अत्यन्त आकर्षक हो सकता है। लेकिन जबतक वह खुलकर हमारे सामने न आये, या स्पष्ट रूप में उसकी आशा हमें न हो जाय

तब तक वह एक अपूर्ण कल्पना से, और इसीलिए किसी विचार से अधिक आकर्षक नहीं हो सकता।"

वीरभद्र ने कहा :

"जबतक कोई वस्तु खुलकर हमारे सामने न आये या स्पष्ट रूप से उसकी आशा न हो—इन दो वाक्यांशों में मेरे इन मित्र ने बहुत सार्थक कुंजी हमारे हाथ में रखदी है। यदि आपमें मेरी वास्तविक रुचि है और मैंने अपने आप को भी कुछ भीतर तक देखा है तो मैं आपके सामने खुलकर ही आना चाहूँगा। खुलकर आना एक बहुत बड़े रहस्य का उद्घाटन है। इसकी सार्थकता खोजने में हमें देर न लगेगी। उन दो समृद्ध और सुन्दर व्यक्तियों के निमन्त्रण की जो बात मैंने कही, वह मेरी कल्पना है या वास्तविकता, इसे स्पष्ट करने की मुझे जल्दी न करनी चाहिए; क्योंकि मेरे पास उन दो के अतिरिक्त और भी अनेक व्यक्ति हैं, और भी बहुत सी बातें हैं। आपके पास भी अनेक ऐसे व्यक्ति और अनेक ऐसी बातें हैं जो यहाँ ऊपर हमें दिखाई नहीं देरही हैं, लेकिन वे सामने आने पर हमारे लिए रोचक हो सकती हैं। वास्तव में यहाँ उपस्थित हम केवल ग्यारह नहीं, ग्यारह से बहुत अधिक—अपने 'आङ्किक' सिद्धान्त की भाषा में एक सौ दस हैं। मेरा प्रस्ताव है कि हम सभी अपने भीतर का कुछ और खोलकर यहाँ इस गोष्ठी में रक्खें। इससे हम देख सकेंगे कि हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक सम्पत्ति कितनी है, उससे कितना निजी और दूसरों का लाभ किया जा सकता है। उन दो व्यक्तियों और उनके निमन्त्रणों के बाद तीसरी वस्तु मेरे पास वह कला है जिसके द्वारा मैं आप सब को एक दूसरे के साथ गहरा, और इसीलिए अत्यन्त रुचिकर आदान-प्रदान करने के लिये प्रेरित कर सकता हूँ। क्या यह तीसरी बात पहली दो से अधिक सार्थक और अधिक आकर्षक नहीं हो सकती?"

"शायद हो" नवें आसन के युवक ने कहा, "लेकिन इससे

अधिक आकर्षक तो मुझे आपके पहले दो व्यक्तियों का निमन्त्रण प्रतीत होता है, यदि वह सच हो।"

"आप एक बात भूलते हैं" वीरभद्र ने कहा, "यदि मैं ही पहले आपके साथ गहरे आदान-प्रदान के लिए प्रेरित न हूँगा तो उन व्यक्तियों का निमन्त्रण आप तक क्यों पहुँचाऊँगा और उसे कार्यान्वित करने में आपके-उनके बीच का माध्यम कैसे बनूंगा? स्पष्ट है कि हम लोगों के बीच ही पारस्परिक गहरी रुचि और वैसी प्रेरणा पहली आवश्यकता है।"

"इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं" चौथे आसन की कुमारीजी ने कहा, "इस गोष्ठी में गहरी रुचि होने पर मैं जो सबसे अधिक आकर्षक वस्तु यहाँ उपस्थित कर सकती हूँ वह ऐसी है जिसकी कोई भी, मेरे रूप और गुणों को देखकर, कल्पना नहीं कर सकता।"

"हम उसके समीप आरहे हैं। एक सबसे अधिक रोचक वस्तु जो हममें से प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को दे सकता है यह है कि वह आदान-प्रदान सम्बन्धी अपनी उन आन्तरिक मान्यताओं को प्रकट करे जिन्हें वह मन ही मन तीव्र रूप में अनुभव करता है, किंतु दूसरों के सामने रखते झिझकता है। यदि हम आपस में एक-दूसरे को अनुदार, अविश्वसनीय और प्रतिकूल समझना कम कर दें तो सुगमतापूर्वक ऐसा कर सकते हैं और उसके आश्चर्यजनक परिणाम देख सकते हैं।" वीरभद्र ने कहा।

"अपनी मान्यताओं को दूसरों के सामने प्रकट करना स्वयं में ही एक बहुत सुखद अनुभव हो सकता है, किन्तु इसके खतरे और संकीर्णताएँ भी हैं। आन्तरिक मान्यताओं को प्रकट करना आपके पहले कहे 'खुल कर आने' का ही एक अङ्ग है। इसके लिए उपयुक्त और विश्वसनीय, यथेष्ठ समझदार व्यक्तियों का मिलना ही एक बड़ी कठिनाई है।" दूसरे आसन की महिला ने कहा।

"मेरी राय में वैसे व्यक्तियों का मिलना न मिलना उतनी बड़ी समस्या नहीं है। मिले हुए व्यक्तियों के साथ बरतने की हमारी असमर्थता और उदासीनता ही हमारी अधिक बड़ी कठिनाई है। यदि ग़लत अभिप्राय और ग़लत तरीके से हम दूसरों के सामने खुलकर आयें तो इससे अधिक हानिकर मूर्खता और कोई नहीं, और यदि ठीक अभिप्राय और ठीक तरीके से वैसा करें तो इससे बढ़कर बुद्धिमत्ता दूसरी नहीं। अपनी बात कहने के अभिप्राय और सलीके को हम विवेकपूर्वक ध्यान में रक्खें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। स्वतन्त्र सोचने की आधार-शिला पर यदि हम अपने विवेक को खड़ा करेंगे तो हमें इस प्रयोग में कोई बड़ी कठिनाई न पड़ेगी। अगली गोष्ठी में हम खोजने का प्रयत्न करेंगे कि हमारी आवश्यकताएँ और उनसे उत्पन्न समस्याएँ क्या हैं।" वीरभद्र ने कहा और सभा विसर्जित हुई। ※

छठी गोष्ठी

छठी गोष्ठी में वीरभद्र ने कहा :

"हमारी आवश्यकताएँ और उनसे उत्पन्न समस्याएँ क्या हैं? जीवन-निर्वाह के लिए हमें कुछ आधारभूत वस्तुओं की आवश्यकता है—अन्न, वस्त्र, मकान, शुद्ध जल, वायु, रोशनी आदि की। इस पहली आवश्यकता को हम 'रोटी' के प्रतीकात्मक शब्द से पुकार सकते हैं। इसके बाद हम देखते हैं कि जीवन में रोग, चोट तथा शारीरिक एवं मानसिक दुर्घटनाओं के रूप में कुछ विपत्तियाँ भी हम पर बराबर आती रहती हैं। इनसे बचाव का उपचार भी हमारी एक विशेष महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इस आवश्यकता या समस्या को मैं अपनी शाब्दिक सुविधा के अनुसार 'रोग' की समस्या का

नाम देना चाहता हूँ। यह दूसरी हमारी 'रोग' की समस्या है। इसके आगे हमारी अन्य इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति का प्रश्न आता है। विविध श्रेणी के भौतिक और सूक्ष्म सुखों का हम स्वाद लेना चाहते हैं। इन इच्छाओं और कामनाओं को मैं 'राग' का नाम देना चाहता हूँ। निम्न से लेकर उच्चकोटि तक के प्रेम, विकास और ऊँची से ऊँची मानसिक-आध्यात्मिक आकांक्षाएँ इस 'राग' शब्द के भीतर आप ले सकते हैं। 'राग' का अर्थ है, किसी वस्तु के प्रति हमारा लगाव। जीवन-निर्वाह के लिए आधार-रूप में आवश्यक वस्तुओं को 'रोटी' का, जिन वस्तुओं और परिस्थितियों को हम दूर रखना चाहते हैं उन्हें 'रोग' का, और जिन्हें प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें 'राग' का नाम देकर हम कह सकते हैं कि हमारी सारी आवश्यकताएँ और उनसे उत्पन्न समस्याएँ रोटी, रोग और राग के तीन शब्दों में आ जाती हैं। रोटी, रोग और राग; या क्रम बदलकर राग, रोग और रोटी ही हमारे जीवन की तीन मोटी समस्याएँ हैं। क्या आप अपने जीवन की कोई ऐसी समस्या सोच सकते हैं जो इन तीन विभागों में से किसी के भी अन्तर्गत न आती हो ?"

"राग-रोग-रोटी। आपके ये तीन विभाग मनुष्य की समस्याओं को पूरी तरह घेर लेते हैं। मैं समझता हूँ कि यह विभाजन सुन्दर और सम्पूर्ण है और हम अपनी सभी समस्याओं को इनमें से किसी न किसी के भीतर रख सकते हैं। लेकिन एक प्रकार की समस्या को सदैव किसी एक ही विभाग के भीतर रक्खा जा सकेगा, इसमें कुछ कठिनाइयाँ दीखती हैं। उदाहरणार्थ, धन की समस्या को क्या आप सदैव 'रोटी' के अन्तर्गत रख सकेंगे ?" सातवें आसन के डाक्टर ने कहा।

"आपका प्रश्न ठीक है" वीरभद्र ने कहा, "यह आवश्यक नहीं, और सम्भव भी नहीं कि एक प्रकार की समस्या को हम सदैव एक ही विभाग में रक्खें। धन की समस्या मेरे इन मित्र के लिए

(नवें आसन की ओर संकेत करके) 'रोटी' की समस्या हो सकती है, इनके (दसवें आसन) के लिए 'राग' की, और इनके (पहले आसन) के लिए 'रोग' की। पहले सज्जन की धन-कामना जीवन-निर्वाह के लिए हो सकती है, क्योंकि उनके पास धन की बहुत कमी है। दूसरे सज्जन की अधिक धन की आवश्यकता किसी नये वैभव या अतिरिक्त सुख-विहार के लिए हो सकती है। इसी प्रकार तीसरे सज्जन को उसकी आवश्यकता पिछला ऋण चुकाने या किसी का व्यावहारिक भार उतारने के लिए है तो उनकी यह समस्या रोग के अन्तर्गत गिनी जा सकती है। लेकिन समस्याओं की ऐसी विवेचना इस गोष्ठी के लिए एक रूखा विषय बन जायगी इसलिए हमें किसी रुचिकर दिशा में मुड़ना चाहिए। यहाँ उपस्थित हम सभी की कुछ न कुछ समस्याएँ हैं—आर्थिक, सामाजिक, आचारिक, सेक्स, प्रेम, प्रतिष्ठा या लौकिक-पारमार्थिक विकास सम्बन्धी। क्या आप समझते हैं कि अपनी उन समस्याओं को या उनके आधार पर निर्मित उनसे मिलती-जुलती समस्याओं को यदि आप विचार-विनिमय के लिए यहाँ प्रस्तुत करेंगे तो यह हम सभी के लिए विशेष रुचिकर न होगा ?"

"निस्सन्देह ऐसी बातचीत हम सब के लिए विशेष रोचक होगी" दूसरे आसन की महिला कहने लगीं, "और फलस्वरूप उनमें से कुछ समस्याओं के हल भी सम्भवतः निकल आयेंगे। मेरे इन श्रीमान्‌जी की (दाहने हाथ पर बैठे अपने पति की ओर संकेत कर, विनोद के स्वर में) प्रेम-सम्बन्धी एक समस्या है। उस समस्या के हल की मुझे भी बड़ी खोज है। ये बेचारे—"

"प्रेम की समस्याएँ, मैं सोचता हूँ, बहुत मीठी होती होंगी" नवें आसन के युवक ने बीच में ही कहा, "लेकिन जिसके सामने रोटी की क्रूर समस्या—एक अपने लिए नहीं, पत्नी, बच्चे और छोटे भाई-बहिनों के छह-छह सदस्यों के परिवार के लिए रोटी की समस्या—प्रतिदिन मुँह बाये खड़ी रहती हो उसके लिए यह प्रेम-चर्चा रोचक नहीं हो सकती।"

"मेरी राय में प्रेम की चर्चा उसके लिए भी रोचक हो सकती है। रोटी का अभाव एक सामयिक, अस्थायी अभाव है जो कभी भी दूर हो सकता है; और प्रेम की प्रवृत्ति मनुष्य का अधिक स्थायी स्वभाव है। आर्थिक संकीर्णता दूर होते ही आप जीवन की उस व्यापक समस्या में रुचि लिये बिना नहीं रह सकेंगे।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"लेकिन वह आर्थिक संकीर्णता अनिश्चित काल तक चलने वाली दीखती है।" पहले वक्ता (नवें आसन) ने उत्तर दिया।

"अनिश्चित काल तक क्यों? उसे आप कल समाप्त कर सकते हैं।" प्रतिवादी (दसवें आसन के) सज्जन ने कहा, और उनके स्वर में अब की बार कुछ बल था। "आपके पास अवश्य ही कोई गुण और सामर्थ्य है। अवश्य ही समाज में, और शायद इस गोष्ठी में भी, ऐसे व्यक्ति मौजूद होंगे जो धन-सम्पन्न हों और आपके गुण-सामर्थ्य का सौदा कर सकते हों। यदि आप ईमानदारी के साथ अपनी सर्वोत्कृष्ट सेवाएँ देना चाहें तो पैसों से भी उन्हें खरीदने वाला क्यों न मिलेगा?"

"जिस व्यक्ति के मुख से आप यह बात सुन रहे हैं" वीरभद्र ने पूर्व वक्ता युवक को लक्ष्य करके कहा, "वह ऐसा कहने की समर्थ स्थिति में है। लेकिन यह बातचीत बहुत व्यक्तिगत और केवल दो व्यक्तियों की पारस्परिक हुई जा रही है, जिसे हमें इस गोष्ठी में अभी से अधिक स्थान न देना चाहिए। मैं समझता हूँ कि मेरे समृद्ध मित्र मेरे इन युवक मित्र को किसी दिन अपने घर निमन्त्रित कर कुछ और बातचीत करना पसन्द करेंगे।"

"सहर्ष, कल सुबह ही। चाय के समय।" दसवें आसन के सज्जन ने कहा और उनके समीप बैठे युवक ने उस निमन्त्रण को कृतज्ञ भाव से स्वीकार किया।

"बात प्रेम-समस्या से चली थी," आठवें आसन के वकील साहब ने कहा। "प्रेम की बात मुझे भी सोचनी पड़ी है, लेकिन विवाह के प्रश्न को मैंने सदैव अपनी सामाजिक और धार्मिक आकांक्षाओं में बाधक पाया है। मैं भी कभी अपनी समस्या आपके सामने रखूँगा।"

"अपना एक बड़ा ही रोचक, नित्यप्रति का अनुभव मैं गोष्ठी में रखूँगी। सड़क पर चलते हुए अपरिचित लोग दूर से कैसी आशा-भरी दृष्टि से मुझे देखते हुए समीप आते हैं, लेकिन पास आने पर मानों उनकी आशाओं पर घड़ों पानी पड़ जाता है। वह दृश्य देख कर मुझे बड़ी हँसी आती है। उनमें से बहुत कम—कोई बिरले ही—मुझे कुछ स्वस्थ भावनाशील और समझदार दिखाई देते हैं। मैं जानती हूँ कि उन्हें देने के लिए मेरे पास एक बहुत बड़ी वस्तु है और कभी-कभी किसी-किसी को मैं उस सम्बन्ध में कुछ बताना भी चाहती हूँ।" चौथे आसन की कुमारीजी ने कहा।

"प्रेम और अर्थ की समस्याओं का कुछ गहरा पारस्परिक सम्बन्ध मैंने देखा है। सम्भवतः ये एक ही समस्या की दो शाखाएँ हैं। मैंने कुछ लड़कियों और नवयुवकों की पहली दिशा में कुछ सहायता की है और उनके परिणामों से मुझे बड़ा सन्तोष है। सम्भवतः इस गोष्ठी में मैं उन बातों को सामाजिक हल के रूप में कभी रख सकूँगी।" तीसरे आसन की अधेड़ महिला ने कहा।

"बातें अलग-अलग ही चल रही हैं तो मैं भी अपना एक अनुरोध यहाँ रक्खूँगा।" पांचवें [illegible]सन के लेखक सज्जन ने कहा, "हमारे घरों और मित्रों में से बहुत [illegible]ग इस गोष्ठी की रोचकता और उपयोगिता का आभास पाकर इसमें आने के लिए उत्सुक हैं। उदाहरणार्थ मेरी पत्नी ही इसके लिए बहुत उत्सुक है। वह सुशिक्षिता, अग्रगामी और बहुत सुलझे हुए विचारों की—"

"और रूप की भी असाधारण सुन्दरी" बीच में ही चौथे आसन की कुमारीजी ने योग दिया।

"निस्संदेह विशेष सुन्दर भी है। उसकी मान्यताओं से मैं यथेष्ट प्रभावित हूँ। ऐसे व्यक्तियों के लिए आप इस गोष्ठी के द्वार क्यों नहीं खोलना चाहते ?" पूर्व वक्ता ने बात पूरी की।

"वे यथेष्ठ रूप में हमारे साथ ही हैं" वीरभद्र ने कहा, "और आपके द्वारा उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व यहाँ हो जायगा। ग्यारह की सीमा का पालन हमारे लिए अभी अनिवार्य है। और वास्तव में, जहाँ तक मैंने अभी गिना है, हम ग्यारह नहीं, चवालीस इस गोष्ठी में सम्मिलित हैं।"

गोष्ठी की समाप्ति का सूचक साढ़े आठ का घंटा दीवारघड़ी ने बजाया और सभा विसर्जित हुई। ★

सातवीं गोष्ठी

वीरभद्र की सातवीं गोष्ठी एक असाधारण गोष्ठी रही। इस गोष्ठी की बातचीत का विवरण यदि वक्ताओं के शब्दों में ही प्रस्तुत किया जाय तो वह पूर्व गोष्ठियों के औसत का तिगुना स्थान घेर लेगा। इसलिए सुविधाजनक यही है कि उसे संक्षिप्त रूप में संवाददाता के शब्दों में ही यहाँ प्रस्तुत किया जाय।

यह गोष्ठी सदस्यों के कुछ अधिक आन्तरिक और विस्तृत परिचय की गोष्ठी थी। आत्म-परिचयों के इस आदान-प्रदान की सतह पर भले ही कोई विशेष आकर्षक बात न हो, लेकिन इनके विस्तार में रोचकता और समृद्धि की गहरी सम्भावनाओं का आभास अवश्य ही

देखा जा सकता है। वीरभद्र के जिस अनुरोध ने आज की बातचीत को प्रेरणा दी वह, उसी के शब्दों में, यह था :

"मैं चाहता हूँ कि आज हम लोग आपस में एक दूसरे को अपना कुछ और गहरा परिचय दें। क्या आपके पास कोई ऐसी विशेष वस्तु या वस्तुएँ हैं जिन्हें आप दूसरे को दे सकते हैं, देना चाहते हैं और देने में किसी बड़े सुख का भी अनुभव कर सकते हैं? आपके परिवार या मित्रों-परिचितों में कोई ऐसे विशिष्ट व्यक्ति हैं जिन पर स्नेह, श्रद्धा, या हार्दिक समीपता के नाते आपका कुछ विशेष अधिकार हो और जिन्हें आप हम सबके परिचय-सम्पर्क में लाना पसंद कर सकते हों? मेरा अनुरोध है कि आज की गोष्ठी में आप अपने गुणों, और उनसे सम्बन्धित अपनी आकांक्षाओं का, अपने विशिष्ट मित्रों, अपने प्रिय जनों का तथा आवश्यकतानुसार अपने पारिवारिक स्वजनों का भी निस्संकोच भाव से जितना दे सकें, परिचय हमें दें। इसके लिए हम बहुत कुछ अनुकूल वातावरण पिछली छह गोष्ठियों में बना आये हैं। पारस्परिक परिचय का जो दूसरा पग मैं आज उठाना चाहता हूँ उसकी सार्थकता हम सभी आज ही कुछ न कुछ देख लेंगे।"

इस अनुरोध के फलस्वरूप आत्म-परिचयों की चर्चा खुल पड़ी। पहले आसन के सज्जन, क्लर्क महोदय ने बताया कि उनमें कोई विशेष गुण नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, उनका कोई घनिष्ठ मित्र नहीं। पत्नी के अतिरिक्त बारह वर्ष की एक पुत्री और उससे छोटे दो लड़के—इन्हीं पांच व्यक्तियों का उनका छोटा-सा संसार है और इसी के बीच वे संतोषपूर्वक जीवन-यापन कर रहे हैं। पुत्री पर उनका स्नेह विशेष है। क्लर्कबाबू ने कहा यही, लेकिन उनकी संकोचपूर्ण गम्भीर मुख-मुद्रा से यह स्पष्ट था कि इस कथन के नीचे और भी कुछ दबा हुआ है। आगे उनकी पत्नी ने जब उनकी और अपनी प्रेम-समस्याओं की बात कही तब उनकी गम्भीरता और भी स्पष्ट थी।

२—दूसरे आसन पर क्लर्क महोदय की पत्नी। विवाह के पूर्व एक नवयुवक के प्रति इनका और इनके प्रति उसका विशेष आकर्षण, और प्रेम का सांकेतिक आदान-प्रदान हुआ था। वह नवयुवक आज एक प्रसिद्ध कवि है। उसने अपने किसी मित्र के नाम पत्रों में और अपनी कुछ रचनाओं में भी इस महिला से कवित्व की असाधारण प्रेरणा पाने की बात प्रकट की है। वह अब इस महिला के प्रकट सम्पर्क में आने के लिए उत्सुक है। इनके हृदय में भी उसके लिए विशेष स्थान फिर से बन गया है। आगे उन्होंने बताया कि इनके पति पर एक अज्ञात युवती पिछले तीन महीने से मुग्ध दीखती है। उसका घर इनके दफ्तर के रास्ते में है और वह प्रतिदिन निश्चित समय पर इनकी प्रतीक्षा करती है। इससे इनके मन में एक नई उथल-पुथल मच गई है, जो इनके जीवन की ऐसी पहली ही अनुभूति है।

३—तीसरे आसन की प्रौढ़ा महिला। इनकी तीन विवाहिता पुत्रियाँ अपनी-अपनी ससुराल में हैं। एक और दम्पति इनका विशेष अनुगृहीत है, जिसका प्रेम-विवाह इन्होंने अपने सामाजिक प्रभाव द्वारा ही कराया था। एक इनके अभिन्न-हृदय, सम-वयस्क मित्र हैं, जो इनके पति के सामने से ही इनके स्वजन हैं और एक उच्च कोटि के पत्रकार हैं। इनके एक अन्य मित्र हैं, जिन्हें ये गुरुवत् मानती हैं और जिन पर श्रद्धा करने वालों का एक बड़ा वर्ग है। इनके अनुगृहीत जनों की एक बड़ी संख्या है, जिनमें से एक लेडी डाक्टर और एक इनके समकक्ष ही सम्पन्न, कुलीन घर की विधवा हैं। कुछ विवाहित और अविवाहित तरुण-तरुणियाँ इनके निकट सम्पर्क में हैं।

४—चौथे आसन की कुमारीजी। इन्हें एक ऐसी अभिन्न-हृदया, अत्यन्त रूपवती, विचारशीला और समाज में कुछ विशेष कार्य करने के लिए जागरूक सहेली प्राप्त है जो विवाहिता है किन्तु अभी पर्दे में ही रहती है। उसकी कुछ आकर्षक योजनाएँ हैं। इनके (कुमारीजी के)

माता-पिता गरीब हैं। एक छोटी बहिन है जो अपढ़ किन्तु विशेष सुन्दरी है। एक युवक मित्र हैं, जो पहले पत्र-व्यवहार द्वारा इनके प्रेमी, और साक्षात् सम्पर्क में आने पर इनके धर्म-भाई बने और आर्थिक सहायता देते रहते हैं।

५—पत्रकार महोदय। इनकी पत्नी विशेष सुन्दर और सामाजिक सम्पर्कों में रुचि रखने वाली हैं। इनकी सुन्दरी, नृत्य-संगीत में दक्ष एक अठारह वर्षीया पुत्री है, जिसका विवाह दुर्योगवश एक अत्यन्त अनुपयुक्त व्यक्ति से हो गया है। पुत्री के मन में पति तथा समाज के प्रति विद्रोह है। इनके विशिष्ट मित्रों में एक प्रसिद्ध व्यवसायी तथा एक सुप्रसिद्ध राजनीतिक विचारक और संसद्-सदस्य हैं। बहुसंख्यक तरुण युवक तथा युवतियाँ भी इनके सम्पर्क में हैं।

६—व्यापारी सज्जन। इनकी पत्नी सुन्दर किन्तु स्वभाव की विशेष कर्कशा हैं। मित्रों में एक युवा प्रोफ़ेसर तथा उनकी पत्नी और एक गायक कलाकार से इनकी विशेष घनिष्ठता है।

७—डाक्टर। इनकी पत्नी देहात की, अपढ़ और बहुत पिछड़े हुए विचारों की हैं। दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं, जिनमें एक पुत्र और एक पुत्री अविवाहित किन्तु विवाह के योग्य हैं। विशिष्ट मित्रों में एक तरुण अध्यापिका तथा उनके अधेड़ आयु के पति हैं। एक मित्र अच्छे चित्रकार हैं। इनका नौकर अत्यन्त स्वामिभक्त, मालिक के लिए प्राणों की भी बाज़ी लगाने वाला विशेष उल्लेखनीय है।

८—वकील साहब। घर में केवल इनकी माता हैं। एक योगी गुरु पर इनकी असीम श्रद्धा और इन पर उनकी असाधारण कृपा है। एक नवयुवती के प्रति इनका आन्तरिक अनुराग भी है। एक विधवा साधुनी इनकी धर्म बहिन बनी है, जो इनके घर अपने ऋषीकेश-आश्रम से कभी-कभी आती भी है। ये विवाह-बन्धन में पड़ने के लिए बहुत सतर्क हैं।

९—युवक। इनकी पत्नी बहुत कुरूप और गँवार हैं। एक पुत्र और एक पुत्री है। एक छोटा भाई पढ़ता है। एक विवाह योग्य बहिन है, विशेष सुन्दर, सुशील और गृह-कार्य में दक्ष। इनके गाँव का एक समृद्ध युवक पड़ोसी इनका मित्र है, जिसने संकट-काल में कभी-कभी इनकी सहायता की है। लेकिन जीवन में परम सहृदय मित्र और महान् सहायक इन्होंने पिछले सप्ताह ही पाया है, जिसने आवश्यक तात्कालिक सहायता के अतिरिक्त छह हज़ार की पूँजी इनकी ओर से तथा छह हज़ार की अपने एक भानजे की ओर से लगाकर बारह हज़ार से एक गृहोद्योग-व्यवसाय की योजना चालू कर दी है। इनके यह महान् मित्र इनके समीप बैठे, दसवें आसन के धनिक सज्जन ही हैं।

१०—धनिक सज्जन। पत्नी, तीन पुत्र और एक पुत्री का परिवार है। हज़ार रुपये महीने की बँधी आय है। बहुत मितव्ययी और क़िफ़ायतशार हैं—इतने कि समीप के समाज में इसकी आलोचना भी है। हज़ार की आय है और केवल चार सौ में निर्वाह करते हैं। सार्वजनिक दान-सहायता आदि में अरुचि है, अतः बहुत कम देते हैं। लेकिन इनके पिता के समय से गुप्त सहायता का इनका एक स्थायी कोष है, जिसमें आय के पूरे बीस प्रतिशत के हिसाब से दो सौ रुपये मासिक इन दिनों भी जमा होते रहते हैं। इस निधि में इस समय इकत्तीस हज़ार से ऊपर जमा है। सुपात्र साहाय्यार्थियों की इन्हें बड़ी खोज रहती है, किन्तु उसके विज्ञापन का कोई साधन नहीं है। अन्तरङ्ग मित्र कोई नहीं। फिर भी, जिनसे व्यावहारिक समीपता है उनमें एक बड़े वकील, एक भले डाक्टर और एक प्रसिद्ध पत्रकार के नाम उल्लेखनीय हैं। दो धर्म-बहिनें, एक धर्म-भानजा, तथा एक पुराने स्वामिभक्त नौकर पर इनका विशेष अनुराग है।

इतने परिचय के बाद गोष्ठी समाप्त हुई। गोष्ठी के उपरान्त उस समय आगे कहने-सुनने की नहीं, मन में ही बहुत कुछ सोचने और

खोजने की सामग्री अपने घरों की ओर जाते हुए सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत थी। ★

आठवीं गोष्ठी

आठवीं गोष्ठी में वीरभद्र ने कहा :

"पिछली गोष्ठी में हमने देखा है कि हम सभी के पास कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी चर्चाएँ और समस्याएँ लेकर हम एक दूसरे के समीप आना पसन्द करेंगे। यदि अपनी उन बातों में दूसरों की रुचि और सहयोग आपको मिल सके तो उन्हें प्रस्तुत करने में आपको संतोष और सुख मिलेगा। हमारे पत्रकार मित्र (पांचवें आसन) की पुत्री का असफल, अनमेल विवाह एक समस्या है, जिसके प्रति हम सभी की सहानुभूति है और हममें से अनेक व्यक्ति उसके लिए कुछ सोचने-करने के लिए उत्सुक होंगे और शायद हममें से कोई बिलकुल क्रियात्मक हल भी प्रस्तुत कर सकेंगे। उस लड़की के माता-पिता इस स्थिति के प्रति स्वतन्त्र भाव से जागरूक हैं, इसलिए यह समस्या उतनी जटिल नहीं है। अपने इन मित्र की पत्नी से, जो कि सुन्दर भी हैं और मिलनसार भी और हम लोगों के बीच आने के लिए उत्सुक भी, हम सभी का मिलने के लिए उत्सुक होना स्वाभाविक है। पहले आसन के अपने मित्र की मौन प्रेमिका के मन की बात जानने; दूसरे आसन पर उनकी पत्नी के प्रेरणा-भाजन लोकप्रिय कवि को अपने बीच निमन्त्रित करने; तीसरे आसन की अपनी सम्मान्या सदस्या के प्रेमी और गुप्त मित्रों तथा उनके सभी अनुगृहीत जनों के सम्पर्क में आने; चौथे आसन की कुमारी जी की उस असाधारण योजनामयी सुन्दरी सहेली की सारी बात सुनने; छठे आसन के व्यापारी मित्र की सुन्दरी होते हुए भी कर्कशा बन पाने

वाली सहधर्मिणी के साथ सम्मानपूर्वक थोड़ा-सा वाक्-युद्ध करने; सातवें आसन के डाक्टर बन्धु के जाँनिसार नौकर का सम्मान करने; आठवें, वकील साहब के योगी गुरु के मुख से अपने संकोचशील मित्र की प्रेमिका के सम्बन्ध में उनका कुछ मन्तव्य सुनने; नवें, तरुण मित्र की कुरूप और गँवार बताई हुई पत्नी के किसी दूसरे पक्ष की खोज करने; तथा दसवें, अपने सम्पन्न मित्र के इकत्तीस हज़ार के सहायता कोष के लिए कुछ अधिकारी पात्रों के नाम सुझाने के लिए लगभग हम सभी उत्सुक होंगे। यह सब अत्यन्त रोचक है और इनमें से कुछ के सम्पर्कों के लिए तो आप विशेष लालायित भी हो सकते हैं। वास्तव में पिछली गोष्ठी में बताये हुए कुछ व्यक्ति और उनकी परिस्थितियाँ ऐसी हैं, जिनके सहायक होकर आप स्वयं भी अपने किसी गहरे अभाव की पूर्ति कर सकते हैं। इस समय हम, इस गोष्ठी के ग्यारह सदस्य, एक ऐसे स्थल पर पहुँच गये हैं जहाँ हमें एक दूसरे के पास कुछ रोचक, आकर्षक वस्तुएँ दिखाई देने लगी हैं। अब हमारा अगला कदम क्या होना चाहिए? क्या हम उन्हीं रोचक वस्तुओं के आदान-प्रदान की, उन्हीं की चर्चा की बात करें? जो कुछ हमें एक दूसरे के पास दिखाई दिया है क्या वही उसका सबसे अधिक आन्तरिक और सबसे अधिक रोचक है? इसे कुछ ठहर कर सोचने की आवश्यकता है। हमें पारस्परिक जीवन की सर्वाधिक रोचक और सर्वाधिक उपयोगी वस्तु की खोज करनी है। यही उद्देश्य लेकर हमने यह गोष्ठी बनाई है न? आज जो कुछ रोचक और उपयोगी वस्तुएँ हमें एक दूसरे के पास दिखाई दी हैं, वे बहुत ऊपर की, धरातल से नीचे केवल पहले सतह की वस्तुएँ हैं। हमारी एक दूसरे में गहरी रुचि हो, तभी हम अपनी और दूसरे की गहराई में मौजूद परम आकर्षक एवं उपयोगी वस्तुओं को देख सकते हैं, तभी हम एक दूसरे के विश्वासपात्र हो सकते हैं और तभी हमारा आदान-प्रदान स्थायी रूप में सार्थक हो सकता है। इस गोष्ठी के

उद्देश्य की ओर हम स्पष्टवादिता के सहारे ही बढ़ सकते हैं, इसलिए मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या सचमुच हम लोगों की एक दूसरे में दिलचस्पी हो गई है? हरेक आदमी अपनी मीठी-सीठी, दुख-सुख की कहानी दूसरों को सुनाने में रस पाता है; हरेक आदमी अपनी समस्याओं में दूसरों का सहयोग पाना चाहता है; सौन्दर्य, निमन्त्रण और धन की ओर हर कोई आकृष्ट होता है। लेकिन आपकी इन प्रवृत्तियों को दूसरे व्यक्ति के प्रति गहरी रुचि नहीं कहा जा सकता। मान लीजिए कि मेरे एक तरुण मित्र की पत्नी कुरूपा और कर्कशा है। वे सुनते हैं कि उनके एक मित्र की सुन्दरी नवयुवा बहिन का विवाह एक बिलकुल अनुपयुक्त युवक के साथ हो गया है और वह अपने पति से अलग होकर उपयुक्त समाज का सम्पर्क चाहती है। वे तुरंत ही उस मित्र की ओर उसकी बहिन की खातिर खिंच जाते हैं। लेकिन उनका यह खिंचना अपने मित्र में गहरी दिलचस्पी नहीं है। न ही यह उनकी बहिन में ही उनकी गहरी दिलचस्पी मानी जा सकती है। यह तो उनके निजी दाम्पत्य-जीवन की कुण्ठा और अतृप्ति की ही पुकार हो सकती है। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि अभी हमारी एक-दूसरे में गहरी दिलचस्पी नहीं है और हम उस स्थिति से बहुत दूर हैं जहाँ एक दूसरे के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हो सकते हैं। ऐसी दशा में यदि हम, इस गोष्ठी के ग्यारह सदस्य अभी से अपनी उन थोड़ी सी रुचियों और समस्याओं पर जिनका परिचय हमने पिछली गोष्ठी में पाया है, उन्हीं पर परस्पर आदान-प्रदान करने में अटक जायँ तो अपने मुख्य लक्ष्य से भटक जायेंगे। हमारा मुख्य ध्येय पारस्परिक सहयोग से अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का हल और रुचियों का निर्वाह नहीं है। जिन क्लबों और मित्रों-पड़ोसियों के वर्गों में ऐसा होता है वे प्रायः ऊपरी स्वार्थों और रुचियों के आदान-प्रदान के छिछले पानी में ही डूब जाते हैं और पारस्परिक जीवन की गहराइयों में नहीं उतर पाते। हमें अपने इस ऊँचे ध्येय का बराबर ध्यान रखना है, अन्यथा

हम पारस्परिक जीवन के परम समर्थ, सर्वाधिक रोचक और सर्वाधिक उपयोगी से वञ्चित ही रहे आयेंगे। हाँ, हमारी व्यक्तिगत समस्याओं के हल और आवश्यकताओं की पूर्ति में यदि सहज ही कुछ बातें एक दूसरे के सहयोग से हो जायं तो उनका हम स्वागत करेंगे लेकिन उन्हें प्रधानता कभी नहीं देंगे। हमारे दो मित्रों—नवें और दसवें आसन—के बीच जो सहृदयतापूर्ण आर्थिक-व्यावसायिक सम्बन्ध पिछले सप्ताह हो गया है उसके लिए हम सभी को प्रसन्नता है लेकिन वह एक गौण परिणाम का उदाहरण है और उस जैसी बातों के लिए हमें प्रयत्न नहीं करना है।

"तब फिर हमें इस गोष्ठी में करना क्या है? मैं मीठे-मीठे आम खाना चाहता हूँ। आप अपने बाग में आम पैदा करते हैं, जिनमें कुछ मीठे होते हैं, कुछ खट्टे। इस गोष्ठी में परिचय-सम्पर्क हो जाने के कारण आप मुझे मीठे-मीठे आम चुन कर देते हैं और मैं उनके बदले आपको अच्छे दाम देता हूँ। यह मेरी और आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हुई। लेकिन इससे मैं और आप जीवन की व्यापक गहराइयों और वास्तविक मिठासों तक नहीं पहुँच सकते। आम का रस चूसने की मेरी एक सँकरी सीमा है। सेर, दो सेर, पांच सेर के आगे मेरा पेट उसे ग्रहण नहीं कर सकता; उसके आगे आम का रस मेरे लिए स्वादिष्ट और रुचिकर नहीं रह जाता। उसके मूल्य स्वरूप आपको प्राप्त होने वाला धन भी सीमित ही हो सकता है। लेकिन मैं मीठे आम अपने मित्रों-स्वजनों, बल्कि सारे समाज के लिए बड़ी मात्रा में सुलभ कर देता हूँ। मैं मीठे आमों की बड़ी-बड़ी दावतें करता हूँ। इससे जो सुख और तृप्ति मुझे मिलती है वह असीम है और उसमें अजीर्ण का भी कोई भय नहीं है। मीठे आम बड़ी मात्रा में उगाने के लिए मैं आपको एक बड़ी पूँजी देता हूँ। मेरा और आपका यह सम्मिलित कार्य व्यक्तिगत धरातल पर किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं, सामाजिक स्तर पर एक महान् मांगलिक सृजन है। इस

स्तर पर मिलकर मैं और आप पारस्परिक जीवन की, तथा सम्पूर्ण समाज के जीवन की गहराइयों में उतर सकते हैं और परमोपयोगी एवं परम रोचक का साक्षात्कार कर सकते हैं। यही लक्ष्य हमें अपनी गोष्ठियों में सामने रखना है। अपनी इस बात को मैं अगली गोष्ठी में स्पष्ट करूंगा। आज का समय पूरा हो गया है। मुझे उस दिन संकोच का अनुभव होता है जिस दिन गोष्ठी का पूरा समय मैं ही ले लेता हूँ। लेकिन शीघ्र ही इन गोष्ठियों का वह दौर भी आयेगा जब आप ही बहुत कुछ कहेंगे और मैं केवल सुनूँगा।"★

नवीं गोष्ठी

नवीं गोष्ठी के प्रारम्भ में ही चौथे आसन की कुमारीजी का प्रश्न आया :

"पिछली से पहले की गोष्ठी में आपने ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जिसमें हम सभी अपने-अपने भीतर की कुछ रोचक और महत्व-पूर्ण बातें लेकर एक दूसरे के सामने प्रकट हुए। जो परिचय उस दिन हमें एक दूसरे का मिला वह विशेष सरस और पारस्परिक सम्पर्कों के लिए विशेष आशाजनक था। लेकिन पिछली गोष्ठी में आपने जैसे उस सब पर फिर परदा डाल दिया और वैसी पारस्परिक समीपता को अनावश्यक बताया। यह बात मुझे, और मैं समझती हूँ यहाँ उपस्थित किसी को भी भायी न होगी। व्यक्तिगत प्रेम और सहयोग के पारस्परिक सम्पर्कों में आप क्या कमी देखते हैं और उससे ऊपर का कौनसा रस इस गोष्ठी में प्रस्तुत करना चाहते हैं?"

वीरभद्र ने कहा :

"हमारी व्यक्तिगत प्रेम और सहयोग की कामनाएँ और सम्भा-

वनाएँ अभी बहुत सीमित और छिछली हैं। जब तक हम व्यक्ति से ऊपर समष्टि के धरातल पर इन कामनाओं को न देखने लगेंगे तब तक ये छिछली ही रहेंगी। आपको—क्षमा कीजिए, किसी भी हृदयशील युवक को—रुचिकर भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएँ और उसकी मनोनीत एक परम रूपवती प्रेयसी देकर संसार के किसी भी कोने में बसा दिया जाय तो वह समझेगा कि उसे जीवन की सबसे बड़ी निधि मिल गई है। यह उसकी व्यक्तिगत कामना-पूर्ति की पराकाष्ठा हो सकती है, किन्तु इस स्थिति में वह अपनी और अपनी प्रेयसी की गहराइयों में कभी नहीं उतर सकता। कुछ समय पश्चात् वह अपनी तृप्ति में एक खला पायेगा। अपने जीवन में वह एक छीजन या ह्रास का अनुभव करेगा। यह केवल इसलिए कि उसने व्यक्तिगत से आगे समष्टिगत, या कह लीजिए बहु-जन-गत प्रेम का अनुभव नहीं किया। हमारा व्यक्तिगत पात्र इतना छोटा है कि उसमें समाई हुई तृप्ति यदि दूसरे पात्रों में आती-जाती न रहे तो सड़ने लगती है। व्यक्तिगत तृप्ति के माध्यम द्वारा आप चिरन्तन सुखानुभूति की ओर नहीं बढ़ सकते। इसे समझने का हम प्रयत्न करेंगे।

"मेरे धनिक मित्र का इकत्तीस हज़ार रुपया मुझे खर्च करने के लिए मिल जाय, इसमें अधिक सुख है या उन जैसे हज़ार धनिकों के हज़ार गुप्तदान-कोष मेरी आँखों के सामने सुपात्रों की सेवा में निकल पड़ें—इसमें? आपको अपने मनचीते प्रियजन का चुम्बन मिल जाय और आप सहस्र प्रेमियों के लिए उनके प्रियजनों के स्वस्थ चुम्बन सुलभ करदें—इन दो में कौनसी बात आपके लिए बड़ी होगी? पहली दशा में अपनी स्वल्प सीमित तृप्ति की और दूसरी में सहस्रों सुतृप्त, अनुगृहीत दृष्टियों के आपके चारों ओर घिरे हुए मधुरालिंगन की कल्पना कीजिए और देखिए कि उन दो में कौन आपको अधिक एवं स्थायी रस दे सकता है। हम अतिसीमित व्यक्तिगत सुख, व्यक्तिगत सुरक्षा, व्यक्तिगत रसास्वादन, व्यक्तिगत पवित्रता के इतने अभ्यस्त हो गये हैं

कि इन बातों के वास्तविक समष्टिगत अर्थ को समझ ही नहीं पाते। व्यक्तिगत धरातल पर भारतीय पतिव्रत और एकपत्नीव्रत का आदर्श एक ऊँचा आदर्श है, लेकिन व्यापक जीवन के धरातल पर—जिस पर अगला पाँव रखने के लिए हमें बढ़ना ही होगा—उसे सबसे ऊँचा या बहुत ऊँचा नहीं ठहराया जा सकता।"

"यह आपने एक बड़ी मजेदार बात कहदी है। चरित्र और स्वस्थ सामाजिक मर्यादा में विश्वास करने वाला कौनसा व्यक्ति आपके इस कथन से नहीं चौंकेगा? पतिव्रत और पतिपरायणता के आदर्श को ही यदि आप नीचा या साधारण कहकर परिवार में से उठा देंगे तो दम्पतियों के बीच सहज विश्वास और आश्वासन कहाँ रह जायगा और वे कैसे एक दूसरे की आत्मीयता पर निर्भर रहकर निश्चिंत भाव से सहजीवन बिता सकेंगे? धर्म-कर्म की मान्यताएँ अलग भी रक्खें तो क्या इस आदर्श के उठ जाने पर जीवन के सुख-दुख के साथी दो अभिन्न सहचरों के बीच एक ऊँची दीवार न खड़ी हो जायगी?" दूसरे आसन की महिला ने कहा।

"हम आदर्शों के सहारे ही टिकते आये हैं।" वीरभद्र ने कहा, "आदर्शों का हमारे जीवन में आवश्यक स्थान है, लेकिन प्रत्येक आदर्श एक समय और सीमा के आगे सड़ने लगता और रूढ़ि बन जाता है। जब उसके सड़ने का समय आता है तब वह एक भय, बन्धन, अज्ञान या आतंक बनकर हमारे ऊपर छा जाता है और हम उसमें जकड़े हुए नीरस भाव से उसका पालन करते रहते हैं। उसकी प्रियता समाप्त हो जाती है और उसके सहारे उससे उत्साह पाकर हम कोई प्रगति नहीं करते। आप अपने पति से क्या इसीलिए प्रेम करती हैं कि पतिव्रत धर्म का आदर्श आपके सामने है? यदि आपका प्रेम इस आदर्श के सहारे ही है तो वह प्रेम सहज, निर्बन्ध और प्रियतापूर्ण नहीं हो सकता। यदि आपका प्रेम सहज स्वाभाविक और प्रियतापूर्ण है तो पतिव्रत के आदर्श का ध्यान आपको नहीं हो सकता। जरा सोचकर देखिए। मैं

कहता हूँ कि पतिव्रत आदर्श को याद रखने की ही नहीं, पतिव्रत की भी आपको आवश्यकता नहीं है। दाम्पत्य प्रेम और पारिवारिक जीवन-निर्वाह के लिए क्या यह सचमुच आवश्यक है कि नारी दूसरे पुरुषों की ओर आकृष्ट न हो और स्वतंत्र भाव से उनका यथेच्छ सत्कार न करे? यह शायद एक नया प्रश्न है, जिस पर हम कभी विचार करेंगे। इन गोष्ठियों के आरम्भ में मैंने जो बात कही थी वह फिर हमारे सामने घूम फिर कर आ गई है। वास्तव में हम सोचने के लिए भी अभी स्वतन्त्र नहीं हैं। किंतु जीवन की गहरी खोज यदि हमें करनी है तो इतनी स्वतंत्रता हमें लानी ही पड़ेगी। हमारे अनेक आदर्शों ने हमारी सोचने-समझने की स्वतन्त्रता को खाकर हमारे मस्तिष्क को कुंठित कर दिया है। उदाहरण के लिए यह पतिव्रत धर्म का आदर्श ही हमारे कुलीन हिंदू परिवारों की महिलाओं में छाया हुआ है। इसके अनुसार दूसरे सुन्दर और गुणवान् पुरुषों की प्रशंसिका या अनुरागिनी होना उनके लिए वर्जित है। फलस्वरूप उनमें वैसी दृष्टि भी नहीं रह गई है। वैसी दृष्टि का अभाव जीवन का ही अभाव है। और इस आदर्श की छत्रछाया होते हुए भी जहाँ कहीं, जिन कुलवन्ती नारियों में ऐसी दृष्टि है उनका मामला बहुत नाज़ुक है। उनके 'पतन' और अधिकृत पति आदि स्वजनोंसे, प्रकट नहीं तो मानसिक, विच्छेदका मार्ग खुला हुआ ही समझिए। यदि किसी पतिव्रता युवती ने अपने किसी प्रशंसक या प्रशंसित का आलिङ्गन आवेग के क्षण में या सत्कार की भावना से स्वीकार कर लिया है तो वह फिर मुक्त हृदय से, निरपराध भाव से अपने पति से प्रेम नहीं कर सकती। वह अपने मन की कथा पति से नहीं कह सकती और पति की शैया उसके लिए उतनी ही दूर हो जाती है जितनी दूर दूसरे पुरुष की। यह सब क्यों और कैसे है और इनके मूल में हमारी मौलिक द्विविधा क्या है—हम अगली चर्चाओं में देखेंगे।" ★

दसवीं गोष्ठी

दसवीं गोष्ठी का प्रारम्भ आठवें आसन के वकील साहब के प्रश्न से हुआ। उन्होंने कहा :

"इधर की बातचीत में आप जिस ओर झुक आये हैं वह आपके प्रारम्भिक वक्तव्यों की एक-दो बातों में विरुद्ध जान पड़ती है। प्रारम्भ में आपने कहा था कि हम ग्यारह व्यक्ति मिलकर पारस्परिक आदान-प्रदान का ऐसा प्रयोग करेंगे कि हमारे बीच से ही हमारी सब आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी, हम एक दूसरे के पूरक होकर परम समृद्ध हो जायेंगे और जीवन का भरपूर रस हमें अपने बीच से ही मिल जायगा। लेकिन अब आप कहते हैं कि हम लोगों के बीच व्यक्तिगत आदान-प्रदान का कोई महत्व नहीं, और वह किया जाय तो हम जीवन की गहराइयों में उतरने से वंचित रह जायेंगे। दूसरा विरोध यह है कि आपने तीन श्रेणी की स्वतन्त्रताओं में से पहली, केवल स्वतन्त्र सोचने की, स्वतन्त्रता को इस गोष्ठी में अपनाने की बात कही थी और तय किया था कि दूसरी श्रेणी की—स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने की—स्वतन्त्रता कुछ हानिकारक भी हो सकती है, इसलिए उसे अभी व्यवहार में न लाया जायगा। लेकिन प्रेम-सम्बन्धी स्वतन्त्रता, पतिव्रत आदि के आदर्शों पर आपने जो कुछ कहा है वह, मेरी दृष्टि में, आप के स्वतन्त्र विचारों का प्रकटीकरण ही है। क्या ये दोनों बातें आपकी पहले निश्चित की हुई दिशा के विपरीत और सीमा के बाहर नहीं जातीं ?"

वीरभद्र ने कहा :

"मेरे इन मित्र का दूसरा आक्षेप—निश्चय के विरुद्ध विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता लेने का आक्षेप—एक हद तक ठीक है, और इस चेतावनी के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। निश्चित सीमा से बाहर

निकल जाने की गलती हम में से किसी से भी हो सकती है; और जब ऐसा होने लगे तो किसी से भी संकेत मिलने पर हमें कृतज्ञतापूर्वक सावधान हो जाना चाहिए। लेकिन जो कुछ मैंने कहा है वह अपने किन्हीं निश्चित विचारों के प्रकाशन और समर्थन के नहीं, बल्कि विचारणीय कुछ नये दृष्टिकोण और सम्भावनाएँ आपके सामने रखने के अभिप्राय से कहा है। मेरा मतलब यह नहीं कि आप मेरे इन दृष्टिकोणों को ठीक मानलें, बल्कि यही है कि आप उन दिशाओं पर भी विचार करें। जहाँ तक मैं अपने इस अभिप्राय में ईमानदार हूँ वहाँ तक मैंने अपने स्वतन्त्र विचार नहीं, आपके स्वतन्त्र विचार के लिए कुछ नये प्रश्न ही आपके सामने रखे हैं। और स्वतन्त्र सोचने का अभ्यास करने के लिए वैसे कुछ प्रश्न तो हमें सामने लाने ही पड़ेंगे। मैं सावधानी रखूँगा कि आगे कोई बात इस ढंग से न कहूँ जिसे आप मेरा आग्रह समझ बैठें। अब रही पहली—इस गोष्ठी की व्यक्तिगत आदान-प्रदान सम्बन्धी नीति की बात। ध्यान से देखें तो जो कुछ मैंने पहले और बाद में कहा, उनमें कोई विरोध नहीं, प्रत्युत वे एक ही ध्येय की दो मंजिलें हैं। हमारा पारस्परिक आदान-प्रदान और सहयोग भरपूर गहरा और समर्थ हो, यही हमारा अभिप्राय है और इसीके लिए आवश्यक है कि हम उन आवश्यकताओं और रुचियों के पारस्परिक निर्वाह में अभी से न अटक जायँ जो हमें अभी, परिचय और घनिष्ठता की बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में, एक दूसरे के पास दिखाई दी हैं। अभी से हम ऐसे आदान-प्रदान में अटकेंगे तो शीघ्र ही कोई काँटा हमारे बीच आ सकता है जो हमें पारस्परिक विरक्ति, विमुखता या घृणा के लिए भी बाध्य कर दे। ऐसा काँटा न भी आये तो भी उन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद हमारे पारस्परिक सम्बन्ध ढीले पड़ जायेंगे, क्योंकि जीवन की गहराइयों में उतरने की कोई प्रेरणा हमारे समीप न होगी। वैसी प्रेरणा आने के लिए आवश्यक है कि हम अपनी कामनाओं को वैयक्तिक से ऊपर समष्टि के या सार्वजनिक धरा-

तल पर अनुभव करें।

"इस गोष्ठी में हम वह सब करना चाहते हैं जो हमारी मौलिक निर्वाह-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति और उसके आगे ऊँचे से ऊँचे सुखों के लिए अपेक्षित है। मौलिक आवश्यकता को हमने पिछली एक गोष्ठी में 'रोटी' का, और साधारण से लेकर ऊँचे से ऊँचे जिन सुखों की हम कल्पना कर सकते हैं उन्हें 'राग' का नाम दिया है। रोटी और राग की व्यवस्था तो हम इस गोष्ठी में करेंगे ही, लेकिन इनके बीच, इन दोनों से कहीं अधिक बड़ी समस्या 'रोग' की है—उन विपत्तियों की जिनसे छुटकारा पाना हमारे लिए अनिवार्य रूप में आवश्यक है। राग, रोग, रोटी—इन तीनों शब्दों की चर्चा हम एक गोष्ठी में कर चुके हैं। यह 'रोग' ही हमारे जीवन की, हमारी चेतना की ज्ञात और अज्ञात तहों में समाई हुई सबसे अधिक व्यापक समस्या है। हमारा यह रोग कितना व्यापक और विविध-रूप है, हम इसकी कल्पना ही नहीं कर पाते। शारीरिक व्याधियों और आर्थिक-सामाजिक अभावों के जिन कुछ-एक रूपों में हम इसे प्रत्यक्ष देखते हैं, वे इस पूरे रोग का शतांश भी नहीं हैं। हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम अपने रोग के ९९ प्रतिशत अंश को रोग ही नहीं जानते। रोग को हम यथार्थ रूप में जान लें तो उसका उपचार सुगम हो जाय। और रोग की समस्या हल होते ही रोटी और राग की सुविधाएँ दूर नहीं रह सकतीं। रोग हमारी सबसे व्यापक समस्या है। उसकी व्यापकता के अज्ञात स्तरों का मैं एक उदाहरण दूँगा।

"मेरे सामने एक अत्यन्त रूपवती, वैभव के शृङ्गारों में सजी तरुणी है। उसका रूप-लावण्य मेरे मन में उसके अधरामृत का पान करने की एक ललक उत्पन्न कर देता है। बीच में एक बात कहूँगा कि आप लोग इस अधरामृत-पान या चुम्बन के शब्द को कृपया पवित्र कर दीजिए। इसका जो वासनामूलक और चोरी से सम्बन्ध रखने वाला अर्थ समाज में चलता है उसे कुछ स्वच्छ कर लीजिए। दो मुखों के पार-

स्परिक मिलन को आप सदैव उतना शुद्ध न मान सकें तो किसी प्रतीकात्मक अर्थ में ही इस शब्द को पवित्र मान लीजिए। तो, उस रूपसि के मुख को चूम लेने की ललक मेरे मन में उठती है। लेकिन वह तो कोई परम समृद्ध राजकुमारी है और मैं उसकी दृष्टि में एक अति साधारण सड़क का राही हो सकता हूँ। उससे चुम्बन की याचना या प्राप्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह मेरी एक कठिन विवशता है। मेरे मन में एक ऐसी इच्छा है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती; और ऐसी इच्छा जिसकी पूर्ति न हो सके स्पष्टतया 'रोग' की ही एक समस्या है। मेरे पास मेरे गाँव का चरवाहा एक अपढ़ गरीब गड़रिया भी खड़ा है। उसने भी उस सुन्दरी को देखा है, लेकिन उसके मन में वैसी कोई चाह नहीं उठी है। क्या वह उस रोग से मुक्त है जिसमें मैं ग्रस्त हूँ? नहीं, उसका रोग मुझसे कहीं अधिक व्यापक, भारी और गम्भीर है। यह बात नहीं कि सुन्दर नारी के मधुर चुम्बन का स्वाद उसे ज्ञात न हो। यौवन के ढलाव पर आया हुआ वह अभी तक अविवाहित है, फिर भी किसी तरुणी ग्राम-ललना के चुम्बनों का स्वाद वह ले चुका है और उसकी कथा उसने मुझे एक बार विस्तार से बताई है। लेकिन इस समय उस ग्राम-बाला से भी अधिक सुन्दरी तरुणी के सम्मुख होने पर भी उसके मन में वह प्यास नहीं जगी है। क्यों? इसलिए कि भय, आतंक, क्षुद्र लोभ, अनाशा और अपने को दूसरों की तुलना में सदैव हीन समझने की उसकी अज्ञात प्रवृत्तियों का घनघोर रोग उसके ऊपर सवार है। वह उस महारानी की राह से हट जाने की बात सोच रहा है; डर रहा है, कोई बेंत मार कर उसे राह के किनारे से हटा सकता है। वह रानी उसे एक या पाँच रुपये बख्शीश में दे सकती है, कुछ पूर्व घटनाओं के आधार पर उसे ऐसा लालच भी है। उसके वस्त्रों की चमक के आगे उसके मुख तक उसकी दृष्टि ही नहीं जाती। उसका रोग—सौन्दर्य के सहज आकर्षण के प्रति उसकी निर्वेदना—अज्ञात होने के नाते और भी गम्भीर है। लेकिन मेरे समीप

मेरा एक दूसरा बन्धु भी है। उसने उस तरुणी के रूप को मुग्ध आँखों से देखा है और उस दर्शन के साथ ही, मानो विद्यु त-गति से, उसके अधरों का चुम्बन ले चुका है। उस सुन्दरी को इस चुम्बन का पता नहीं लगा, उसके अंगरक्षकों को इसका भान नहीं हुआ, मेरे इस बन्धु और उस सुन्दरी के बीच माप की दूरी बीस गज से उन्नीस नहीं हुई। फिर भी उसने उसका चुम्बन ले लिया है और उस तरुणी ने भी अपने अन्तस् के अन्ततम प्रदेश में उसका गहरा स्पर्श पा लिया है। उसकी बाह्य चेतना में भी कुछ लगा है। वह अनायास ही तरल, पुलकित हो उठी है। यह सब कैसे हुआ है, मैं वर्णन नहीं कर सकता। मेरा यह बन्धु उस रोग से सर्वथा मुक्त है, जिसमें मैं और मेरा साथी चरवाहा न्यूनाधिक अंशों में जकड़े हुए हैं। यह कविता या रहस्यवाद की नहीं, मेरे और आपके सहजतम जीवन की ही भाषा है। आकर्षक तक पहुँचने की हमारी विवशता हमारा एक रोग अवश्य है, लेकिन आकर्षणों का अभाव उससे भी कहीं अधिक गहरा रोग है। इसी ऊँची-चौड़ी छत पर* इन्हीं गोष्ठियों के समाप्ति-काल में आप हर बार एक वैभव-शृङ्गार-सज्जिता परम रूपवती को देखते हैं, लेकिन आप में से कितनों ने उसे वैसी चुम्बनमयी दृष्टि से देखा है? मैंने अभी तक उसकी ओर आपकी दृष्टि को निमंत्रित नहीं किया, आज कर रहा हूँ। वह देखिये, अति उज्ज्वल से लेकर अति धूमिल तक असंख्य रंगों और विराट् से लेकर लघु तक अनन्त छवि के आकारों में सजी-सँवरी, मेघ-रंजित आकाश के विस्तृत पट पर अस्ताचलगामी सूर्यगोलक के समीप किसी मधु-अधरा सुन्दरी का मुख क्या आपको नहीं दीख रहा? उसके चुम्बन की ललक यदि आपके अन्तस् में कभी नहीं जगी तो अभी आपका रोग उस चरवाहे से कम नहीं है और आप अपने घर-नगर

---

* प्रारम्भिक तीन-चार को छोड़ शेष गोष्ठियाँ अधिकतर कमरे के बाहर खुली छत पर ही होती रही हैं।

की प्रेयसी की वास्तविक रसानुभूति से भी बहुत दूर हैं।"

वीरभद्र की आँखों और वाणी में इस समय एक अभूतपूर्व तरलता थी, जिसका प्रभाव पूरी उपस्थिति पर प्रकट था। वह स्वयं कुछ विशेष सुन्दर दीख उठा था। गाम्भीर्य-मिश्रित सरसता और अनुरक्ति के वातावरण में सभा विसर्जित हुई। ★

ग्यारहवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जीवन के समस्त अभीष्ट और समस्त अवाञ्छित से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं को एकत्र कर रखा जाय तो उनका सबसे बड़ा भाग, कहिए नब्बे प्रतिशत, उस विभाग के अन्दर आयेगा, जिसे हमने पिछली गोष्ठी में रोग का नाम दिया है। हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति और बड़े से बड़े सुखों की प्राप्ति में केवल एक वस्तु बाधक है—हमारा रोग। इस रोग को आज हम कुछ विवरण के साथ समझने का प्रयत्न करेंगे।

"आपके जीवन में बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ आती हैं जो आपको प्रिय लगती हैं। ऐसी भी अगणित वस्तुएँ हैं जो अभी तक आपके सामने नहीं आईं, लेकिन यदि आ जायँ तो आपको विशेष रोचक और आकर्षक लग सकती हैं। अब यदि आपके सामने कोई ऐसी प्रदर्शनी लगे जिसमें वे सभी वस्तुएँ जो आपको प्रिय लग सकती हैं एकत्र करदी जायँ तो सम्भव है कि आप उनमें से किसी एक या कुछ एक को अपने लिए सर्वाधिक रोचक और सबसे अधिक प्रिय चुन सकें। इतना न कर सकें तो भी उन वस्तुओं को रोचकता की दृष्टि से कुछ श्रेणियों में तो बाँट ही सकते हैं। लेकिन ऐसी कोई प्रदर्शनी आपके सामने नहीं

है और बहुत सम्भव यही है कि जो वस्तु आपके लिए सबसे अधिक प्रिय हो सकती है वह अभी आपकी दृष्टि में ही न आई हो। हमारा एक बहुत बड़ा अभाव यह है कि अपने सर्वाधिक प्रिय को जानने-देखने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। लेकिन यह अभाव हमें चुभता नहीं है। हमारा ध्यान अपनी देखी हुई वस्तुओं में से ही कुछ विशेष रोचक पर रहता है; और पहले से नहीं तो यहाँ से स्पष्ट रूप में हम अपने रोग की सीमाओं का निरीक्षण कर सकते हैं।

"जो वस्तुएँ आपको आकर्षक लगती हैं उनमें से अधिकतर सर्वश्रेष्ठ को छोड़कर आप दूसरी और तीसरी श्रेणी की वस्तुओं को पाने की ओर ही अग्रसर होते हैं। यह एक सत्य है, जिससे आप में से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। अपनी पसन्द के सबसे अधिक आकर्षक युवक या युवती से विवाह का, या जीविका के क्षेत्र में अपने सबसे अधिक मनोनुकूल व्यापार का, या रहने के लिए सबसे अधिक पसन्द घर अथवा नगर का, या किसी अत्यन्त प्रिय एवं महत्वपूर्ण विचार के अनुसरण का त्याग आप सभी ने किया है। अधिक आकर्षक वस्तुओं का त्याग कर कम आकर्षक और कभी-कभी अनाकर्षक और अप्रिय तक का वरण आप करते हैं। ऐसा क्यों?

"आप कहेंगे, विवशताएं और परिस्थितियाँ ऐसा करने के लिए आपको बाध्य करती हैं। तो फिर विवशताएँ और परिस्थितियाँ हमारे वे रोग हैं जिनका उपचार हमें करना है। लेकिन विवशताओं और प्रतिकूल परिस्थितियों के बिना भी हम आकर्षक का त्याग और अल्पाकर्षक अथवा अनाकर्षक का वरण करते हैं। विवशता तो वहाँ होती है जहाँ हम किसी वस्तु को प्राप्त करने में सचमुच असमर्थ हों; लेकिन अधिकतर होता यह है कि प्रिय वस्तु को प्राप्त करने की शक्ति हममें है या नहीं, इसका अनुमान लगाने के पूर्व ही हम किसी ज्ञात-अज्ञात भय, सन्देह या प्रमाद के कारण उसका विचार ही छोड़ देते हैं। किसी भी सुन्दर वस्तु के दर्शन और त्याग के बीच यह भय-

सन्देह-प्रमाद-परक क्रिया हमारे मन के भीतरी पटल पर इतनी शीघ्रता से हो जाती है कि हमें पता ही नहीं चलता कि कब कोई वस्तु हमें प्रिय या आकर्षक लगी थी। हमें लगता है कि उस वस्तु के प्रति हमारे मन में कोई इच्छा ही नहीं हुई। इच्छा की पूर्ति में जहाँ विवशता है वहाँ तो हम अपने रोग को पहचानते हैं, लेकिन हमारे रोग का चिन्तनीय, वृहत्तर, व्यापक भाग वहाँ है जहाँ सुन्दर वस्तुओं के सम्मुख होते हुए भी उनकी ओर हमारी दृष्टि और इच्छा नहीं जाती। अपने चारों ओर हमें रोचक, आकर्षक और प्राप्य वस्तुओं का जो व्यापक अभाव-सा दीखता है वही हमारे रोग की विस्तृत सामान्य-भूमि है। रोग यह है कि रोचक एवं उपयोगी—कह लीजिए, सुन्दरम् और शिवम्—के प्रति हमारी इच्छाएँ अजाग्रत हैं; और रोग का कारण यह है कि हमारे हृदय और मस्तिष्क पर अविचार का अरबों मन बोझ लदा हुआ है। हम सोचने और चाहने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हैं। लेकिन यह बोझ ऐसा नहीं है जिसे किसी दूसरे ने हमारे ऊपर हमारी स्वीकृति के बिना लाद दिया हो, या जिसे हम उतार न सकते हों। इस बोझ को उतारने के कुछ प्रयोग हम करेंगे।

"एक सहृदय, स्नेही, प्रिय-दर्शन स्वजन की कामना आप सभी के हृदय की एक मौलिक चाह है। पत्नी या पति के रूप में ऐसा स्वजन आपको सुलभ रहे, समाज में प्रचलित विवाह-व्यवस्था का यही अभिप्राय है। लेकिन आपका वह स्वजन—आपकी पत्नी या पति—क्या सचमुच उतना सहृदय, प्रेमी और आपकी दृष्टि में सुन्दर है, और आपके सम्बन्ध वैसे ही मधुर और सरस हैं जैसे आप चाहते हैं? नहीं, ऐसा नहीं है। आपके दाम्पत्य-जीवन में सरसता का, दृष्टि में सौन्दर्य का और सम्बन्धों में अनुरक्ति का अभाव है। रिआयत मत कीजिए, कस कर देखिए, समाज के कम से कम निन्नानवे प्रतिशत विवाह इस दृष्टि से असफल और अपूर्ण हैं और आप उन निन्नानवे प्रतिशत के बाहर नहीं हैं। वास्तव में विवाह की बांधी हुई मर्यादा ही

अपूर्ण और असफल है। मुझे ध्यान है और आपको भी याद दिलाता हूँ कि मैं अपने किन्हीं स्वतन्त्र विचारों का प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ, कुछ विचारणीय परिस्थिति ही आपके सामने रख रहा हूँ। यहाँ उपस्थित आप में से कुछ ऐसे हैं जिनका वैसा कोई स्वजन अभी नहीं है या अब नहीं रहा है। वे अपने आपको इस सार्वजनिक परिस्थिति में मिलाकर देख सकते हैं। अब अपने परिचित समाज में दृष्टि दौड़ा कर देखिए, कहीं पर कोई दूसरा व्यक्ति—पर-पुरुष, पराई पत्नी, विवाहित, अविवाहित—ऐसा है जो आपको अपने पास के स्वजन से अधिक प्रिय और उपयुक्त लगता हो ? कल्पना कीजिए कि किसी दैवी एवं सर्व-सम्मत सामाजिक व्यवस्था के अनुसार समाज के सभी विवाह एक सप्ताह के लिए रद्द कर दिये गये हैं और अगले बृहस्पतिवार को आपको अपना नया विवाह करना है। दाम्पत्य साहचर्य के लिए आप किसी भी अन्य जन—कोई भी पर-पुरुष, पर-पत्नी, विवाहित, अविवाहित—को निमंत्रित करने के लिए स्वतन्त्र हैं और पारस्परिक सहमति से अपने पूर्व साथी को ही पुनः ग्रहण करने के लिए भी स्वतन्त्र हैं। इस दिशा में आप कुछ सोच सकें, अपनी दृष्टि और अनुराग को किसी ओर कुछ दूर बढ़ा सकें तो वैसा करने का प्रयत्न करें। अगले बृहस्पतिवार को हम इसी सूत्र को लेकर आगे बढ़ेंगे।" ★

बारहवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"पिछली गोष्ठी में जो प्रश्न मैंने उठाया था उस पर आप सभी ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया होगा। आज आप सभी को उस पर कुछ-न-कुछ कहना है। आपके उत्तर का हमारी आगे की खोज में

बड़ा महत्व होगा। मैं आप में से उस व्यक्ति का हार्दिक अभिनन्दन करूँगा जो अपने हृदय और मस्तिष्क की पूरी टटोल के बाद ईमानदारी से कह सकेगा कि वह अपने पूर्व साथी को पुनः वरण कर सर्वाधिक सुखी और कृतार्थ होगा, और वह व्यक्ति भी मेरे लिए कम सम्मान्य नहीं होगा जिसकी दृष्टि में कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति सुलभ हो जिसे वह अपने सर्वाङ्गीण हित के साथ वरण कर सके।"

"मैं सोच रहा हूँ कि इस प्रश्न का गम्भीरतापूर्वक सोचा हुआ उत्तर इस गोष्ठी में प्रस्तुत करना कहाँ तक ठीक होगा। आपने ही कहा था, और ठीक कहा था कि यहाँ उपस्थित हम लोग अभी परिचय और घनिष्ठता की बहुत प्रारम्भिक अवस्था में हैं। ऐसी स्थिति में अपने मन के भीतर की बात यहाँ प्रकट करना क्या कुछ हानिकर नहीं हो सकता? मैं बता चुका हूँ कि मेरी पत्नी विचारों और लौकिक व्यवहार में भी बहुत पिछड़ी हुई है। अब अगर मैं कहूँ कि मैं उसे साथ न रखकर दूसरी स्त्री से विवाह करना पसन्द करूँगा तो इससे मेरे और किसी अन्य व्यक्ति के बीच क्या विरक्ति, विमुखता और घृणा के अवसर आने की सम्भावना नहीं हो सकती—जैसा कि आपने ही सुझाया था?" सातवें आसन के डाक्टर सज्जन ने आपत्ति की।

"यदि वह अन्य व्यक्ति यहाँ उपस्थित जनों में से कोई नहीं है तो उस प्रकार की हानि की आशंका नहीं है। पारस्परिक आदान-प्रदान या उसके प्रस्ताव करने में हानि की आशंका मैंने बताई थी, न कि अपने मन की बातें आवश्यक सावधानी के साथ खोलने में। मेरा सुझाव है कि यदि वह अन्य व्यक्ति जिसे आप अपनी वर्तमान् पत्नी का स्थान देना पसन्द करेंगे, यहाँ उपस्थित है तो आप उसका नाम लिये बिना अपना निश्चय प्रकट कर दें। इस तरह की बातचीत से हम पारस्परिक आदान-प्रदान के बन्धनों से बचते हुए भी हार्दिक और बौद्धिक रूप में एक-दूसरे के समीप ही आयेंगे।" वीरभद्र ने कहा।

काफी देर तक सभा में निस्तब्धता रही। वीरभद्र ने ही फिर कहा :

"मुझे प्रतीक्षा है कि इस उठाये हुए कठिन प्रश्न को तोड़ने का पहला साहस आप में से कौन करेगा।"

"मैं करूँगी" सब की आंखें वक्ता की ओर घूम गईं; दूसरे आसन की महिला कह रही थी, "अपने को भीतर तक टटोल कर मैंने देखा है और पाया है कि मेरे विवाहित जीवन में सरसता और पारस्परिक अनुरक्ति का सचमुच अभाव है और हम दोनों एक दूसरे में कोई आकर्षक सुन्दरता नहीं देखते। मेरी दृष्टि में एक ऐसा व्यक्ति है जिसका साहचर्य मैं अपने पति की अपेक्षा अधिक प्रिय ही नहीं अपने विकास की दृष्टि से उपयोगी भी पाऊँगी। फिर भी अपने पति के साथ मेरा एक ऐसा हार्दिक और सम्भवतः आत्मिक नाता है जो इस जीवन भर टूट नहीं सकता। इनसे विछोह की कल्पना भी मेरे लिए इतनी पीड़ान्तक है कि मैं उसे सहन नहीं कर सकती।"

"मेरा पहले से ही अनुमान था कि आपका साहस हम सभी को आश्चर्यचकित करेगा, विशेषकर इसलिए कि उसमें सौजन्य और सहृदयता की मात्रा भरपूर रहेगी। आप क्या कहते हैं?" अन्तिम वाक्य वीरभद्र ने पहले आसन वाले उनके पति को लक्ष्य कर कहा।

"पिछले सप्ताह भर अपनी पत्नी के साथ खुलकर मेरी बातें हुई हैं। इनकी स्थिति से मेरी पूरी सहानुभूति है। हम दोनों ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वैवाहिक सम्बन्ध की मर्यादाओं में परिवर्तन होना चाहिए, तभी हमारा जीवन बाहरी और भीतरी दोनों अर्थों में समृद्ध एवं सुखी हो सकता है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरी दृष्टि में कोई ऐसी स्त्री नहीं है जिसका साहचर्य पाने की मेरे मन में निश्चित लालसा हो। जिस एक युवती की चर्चा मेरे सम्बन्ध में हुई है उसकी मुग्ध-सी आँखों का पूरा अर्थ मैं अभी तक नहीं निकाल पाया हूँ और उसके सम्बन्ध में अन्धकार में ही हूँ।"

"आपने" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने दूसरे आसन की पूर्व-वक्ता महिला को लक्ष्य कर कहा, "आपने जिस व्यक्ति को पसंद करने की बात कही क्या वह वही कविवर जी—"

"ऐसा प्रश्न न कीजिए" वीरभद्र ने उसकी बात एकदम काटते हुए कहा, "ऐसे प्रश्न अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी हैं।"

वीरभद्र की दृष्टि अब तीसरे आसन की अधेड़ सुन्दरी पर थी। "वर्तमान जीवन-साथी को छोड़ कर उसे ही पुनः अपनाने या किसी दूसरे का साहचर्य पाने का प्रश्न मुझ पर लागू नहीं होता। फिर भी एक व्यक्ति मेरे जीवन में अभी आया है, जिसके सम्बन्ध में सोचती हूँ कि उसका साहचर्य और उसके प्रति अपना सम्पूर्ण आत्मिक समर्पण मुझे सम्भवतः अधिक प्रिय होगा। यह मैं अपने उस प्रिय स्वजन की भी तुलना में रखकर कह रही हूँ जिसकी बात पहले बता चुकी हूँ। उसकी हार्दिकता और सूक्ष्म संवेदनशीलता में एक अभाव है जो मुझे खटकता है। मोटे शब्द में कहूँ, तो उसमें एक प्रकार की जड़ता है। जिस व्यक्ति की बात मैं अब कह रही हूँ उसमें उन अभावों की पूर्ति के साथ गहरे आत्मिक स्नेह की सम्भावनाएं भी मैं देखती हूँ। अपने जिन दूसरे गुरुवत् मित्र पर मैं श्रद्धा करती हूँ उनके साथ मेरे सम्बन्ध आंशिक ही हैं। इसलिए मैं इस तीसरे व्यक्ति को अपने इतने समीप पाने की कल्पना कर सकती हूँ।" तीसरे आसन की महिला ने कहा।

"अब आप!" वीरभद्र ने चौथे आसन की कुमारी जी को लक्ष्य किया। उन्होंने कहा :

"ऐसे कुछ युवक मेरी दृष्टि में हैं। मैं अभी निर्बन्ध हूँ, फिर भी अनुभवहीन हूँ। मैं अपनी पसंद के कुछ युवकों में से सर्वाधिक सुन्दर और आकर्षक को नहीं बल्कि उसे ही वरण करना चाहूँगी जो मुझे अपना भरपूर प्रेम दे सके और मुझे पाकर स्वयं भी सुखी हो सके।"

"गोष्ठी का समय पूरा होने आगया है। मैं आप सभी के विचार जानना चाहता हूँ।" वीरभद्र ने शेष जनों को लक्ष्य कर कहा।

पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा "मेरा निश्चित मत यह है कि मैं अपनी वर्तमान पत्नी से भिन्न किसी दूसरी स्त्री का साहचर्य उतना अधिक पसंद नहीं करूँगा। चलते हुए आकर्षणों और वैसे स्वल्पकालिक सम्पर्क की कामनाओं की बात अलग है। लेकिन मेरी पत्नी का विचार है—"

"कृपया!" वीरभद्र ने बीच में टोका, "अपनी पत्नी की बात न कहिए। यहाँ हमें केवल अपनी ही बातें कहनी हैं।"

"मैं एक अन्य, अपने मित्र की पत्नी से विवाह करना पसंद करूँगा।" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा।

"मैं भी एक दूसरी, आश्रयहीन विधवा महिला का साहचर्य अपनी पत्नी की अपेक्षा अधिक पसंद करूँगा। लेकिन अपनी पत्नी का त्याग नहीं करूँगा।" सातवें आसन के डाक्टर महोदय ने कहा।

"और यदि वह भी किसी दूसरे पुरुष को पसंद करती तो?" वीरभद्र ने पूछा।

"तो बात अलग है। मैं उसे सौंप कर निश्चिंत हो सकता हूँ।"

"मैं स्वभावतया उस युवती को ही स्वीकार करूँगा जिसका—मेरा प्रेमभाव चलता है।" आठवें आसन के वकील साहब ने कहा।

"मैं अपनी पत्नी से स्वतन्त्र होना निश्चय ही पसंद करूँगा। एक कुमारी और एक विवाहिता नवयुवती ऐसी हैं जिनमें से किसी को भी मैं अपनी जीवनसंगिनी बनाकर अधिक सुखी हो सकता हूँ।" नवें आसन के युवक ने कहा।

"मैं अपनी पत्नी से पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ। उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर किसी दूसरी से जोड़ने की बात तो मैं नहीं सोच सका, फिर भी दो-

तीन महिलाएं मेरी दृष्टि में ऐसी हैं जिनकी समीपता पाकर मुझे विशेष सुख मिल सकता है। उनसे मिलने में जो सामाजिक बाधाएँ हैं वे हट जायँ तो उन्हें समीप से देखकर सम्भव है मैं उनमें से किसी को स्थायी रूप से अपने साथ ही रखकर अधिक तृप्त रह सकूँ।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"और आप भी तो कुछ कहें!" चौथे आसन की कुमारी जी का यह संकेत वीरभद्र के प्रति था।

"मैं? मैं भी अपनी बात कहूँगा, लेकिन अगली गोष्ठी में।" वीरभद्र ने कहा और सभा विसर्जित हुई। ★

तेरहवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा:

"सबसे पहले मैं पिछली गोष्ठी में चले हुए प्रश्न का अपना निजी उत्तर दूँगा। उस उत्तर में मैंने एक सप्ताह की देर की है इसलिए ब्याज-स्वरूप अपने एक और डूबे हुए ऋण की अदायगी भी करूँगा। पिछली जिस गोष्ठी में आप सबने अपना कुछ विशेष परिचय देते हुए अपने कुछ निकटवर्ती स्वजनों की भी चर्चा की थी उसमें मैंने अपनी बात नहीं कही थी। आज उचित अवसर देखकर आपको बताता हूँ कि मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी यथेष्ट सुन्दर और सुस्वभाव है। मेरे तीन बच्चे हैं, दो पुत्र और एक पुत्री, जिनमें सबसे बड़े की आयु ग्यारह वर्ष की है। मेरे मित्रों, अनुग्राहकों और अनुग्रहीतों की संख्या बहुत बड़ी है; और उन में से कुछ असाधारण श्रेणी के, विशेष गुणों और समृद्धियों से सम्पन्न हैं। अपनी पत्नी से मैं पहली बार, आपके नगर में इन गोष्ठियों के लिए ही, दो वर्ष के लिए अलग हुआ हूँ।

अपनी पत्नी से मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ, फिर भी यदि वैसा अवसर मिले, जिसकी हमने पिछली दो गोष्ठियों में कल्पना की है तो निस्संदेह मैं किसी दूसरी स्त्री से ही अगला विवाह करना पसन्द करूँगा। ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ मेरी दृष्टि में हैं, जिन में से किसी को भी मैं जीवन-साहचर्य के लिए अंगीकार कर सकता हूँ। मैं उनमें से उन सब के नाम, जिन्हें मेरा प्रस्ताव प्रिय होगा, एक एक पर्चे में लिखकर और उनकी गोलियाँ बना कर अपने सामने डाल लूँगा और फिर आँख मूँद कर जो भी पर्चा हाथ लगेगा उसे उठा लूँगा। इस प्रकार जो नाम मेरे हाथ आयेगा उसे ही मैं अपनी सहचरी बना लूँगा।"

"आपका यह वक्तव्य" चौथे आसन की कुमारी जी ने कहा, "बड़ा ही विचित्र और हृदय-हीन-सा है। इसमें उस श्रद्धा, अनुरक्ति और एकाग्र आत्मीयता का भयंकर अभाव है जो दो जीवन-सहचरों के बीच होनी ही चाहिए। जिसे आप लाटरी द्वारा चुन कर अपनी जीवन-सहचरी बनायेंगे उसे कैसे आश्वासन होगा कि आप अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम उसे दे सकेंगे? और बिना वैसा आश्वासन पाये कैसे आपके और उसके बीच हार्दिक अभिन्नता एवं जीवन की परिपूर्णता आ सकेगी?"

"श्रद्धा, अनुरक्ति और आत्मीयता की प्रगति में एक मंजिल वह आती है जब वे एकाग्र न होकर व्यापक, बहुमुखी ही होती हैं। एक को पूरा प्रेम देने के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह किसी दूसरे को न दिया जाय। प्रेम की प्रचुरता और शायद पराकाष्ठा भी इसी में है कि वह आपके भीतर से उफनता-बिखरता चले। जो भी घट आपकी राह में रीता मिले उसे भर दे, लेकिन उसे भर कर अशेष न हो जाय। इस बात की व्याख्या में यदि हम लोग अभी पड़ेंगे तो अपने चिन्तन की अभीष्ट दिशा से भटक जायंगे। इसलिए हमें अपने मुख्य विषय पर लौटना चाहिए।

"इस गोष्ठी में हमारी संख्या बहुत थोड़ी है। यदि इसमें हमारे समाज के सभी वर्गों और विचारों के प्रतिनिधि होते तो हमारी संख्या

सौ से कम न होती और उनमें आधी महिलाएँ होतीं। उस दशा में इस प्रश्न के जो उत्तर आते उनसे हम सहज ही देख सकते कि हमारा समाज किसी प्रश्न को सोचने तक के लिए कितना परतन्त्र है। अधिकांश विवाहित स्त्रियों और बहुत से पुरुषों के लिए भी यह प्रश्न घनघोर अधार्मिक और अचिन्तनीय होता। लेकिन इस गोष्ठी के सदस्य हम सभी एक ही वर्ग के व्यक्ति हैं, जो स्वतन्त्र चिन्तन की दिशा में बढ़ने की क्षमता रखते हैं। इस गोष्ठी के लिए अभी ऐसे ही एकांगी वर्ग की आवश्यकता है। हम सभी मे एक असाधारण विशेषता है, जो आगे चलने पर स्पष्ट होती जायगी। तो, विवाह के प्रश्न को लेकर हमने देखा है कि हमारे निकटतम पारस्परिक जीवन में—पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका का जीवन ही निकटतम कहा जा सकता है—ऐसे निकटतम पारस्परिक जीवन में भी सरसता, अनुरक्ति और सौन्दर्य-दृष्टि का अभाव है। हमारे वैवाहिक सम्बन्ध में समता और माधुर्य बहुत कम, बन्धन ही बहुत अधिक है। मनुष्य पारस्परिक समीपता में आकर, अपनी और दूसरों की गहराई में उतर कर, जीवन की सर्वोच्च समृद्धियों को खोज लाये, इसी के लिए प्रकृति भी प्रयत्नशील है और समाज भी। इसी अभिप्राय की पूर्ति के लिए मनुष्यों का दो योनियों, स्त्री और पुरुषों के शरीरों, में विभक्त होकर जन्म लेना प्रकृति का, और पुरुष का नारी के साथ विवाह समाज का, प्रयोग है। प्रकृति के प्रयोग में हमारा कोई प्रकट हाथ नहीं है लेकिन समाज के विधान में है। इसलिए हम इस विवाह के प्रश्न पर कुछ गहराई तक विचार करेंगे।

"विवाह का अभिप्राय क्या है? दो व्यक्ति, जो योनि-भेद के कारण प्राकृतिक रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होकर एक दूसरे के सुख-पूरक भी हो सकते हैं, व्यवस्थित रूप से एक साथ रहें। वे एक दूसरे के प्रति सहानुभूति, समवेदना, सेवा, संरक्षण और अधिकाधिक प्रिय-साधन का प्रयोग कर सम्मिलित सुख-विकास की दिशा में आगे

बढ़ें। विवाह का अभिप्राय यही है। कुछ लोग कहते हैं कि विवाह का मुख्य अभिप्राय सन्तानोत्पत्ति है। लेकिन यह गलत है। विवाह का, और स्त्री-पुरुष के बीच स्वाभाविक आकर्षण का प्रमुख अभिप्राय सन्तानोत्पत्ति नहीं, प्रेम और सह-जीवन है। आप मेरी इस बात से चौंक रहे हैं। बड़े-बड़े विद्वानों और धर्म-शास्त्रियों का यही मत आपने सुना है कि विवाह और स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का पवित्रतम एवं सर्वोच्च उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही है। लेकिन यदि सन्तानोत्पत्ति ही इसका सर्वोच्च उद्देश्य होता तो स्त्री-पुरुष के बीच रूप-सौन्दर्य एवं भावनापरक आकर्षणों की कोई आवश्यकता न होती और न इनका कोई अर्थ ही होता। सन्तानोत्पत्ति के लिए तो शरीर की लैङ्गिक भूख ही पर्याप्त थी, वैसी कि पशुओं में होती है। पशुओं को सौन्दर्य की प्रतीति नहीं होती। स्पष्ट है कि मनुष्य में विपरीत सेक्स के रूप के प्रति हार्दिक आकर्षण का कोई दूसरा ही अभिप्राय है जो प्रेम और सहजीवन की पूर्ति से ही सम्बद्ध हो सकता है। सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रकृति नारी-पुरुष के सहवास की मोहताज नहीं है। जीवन-सृजन के दूसरे भी अनेक साधन प्रकृति के पास हैं, जिनका उपयोग उसने पिछले युगों में किया है, और कोई कारण नहीं कि आगे भी न करेगी। स्त्री-पुरुष के शारीरिक मिलन-द्वारा मानव-शरीरों की सृष्टि प्रकृति का केवल एक अल्प-सामयिक, इस युग विशेष का प्रयोग है। अगले युग में इसकी आवश्यकता न रहेगी। सम्भव है, अगले युग में मनुष्य अपनी छायाकृति के उपयोग द्वारा या केवल मनोबल से ही आवश्यकतानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करने लगे। छाया-पुत्रों और मानस-पुत्रों की सृष्टि पिछले युगों में भी मनुष्य ने की है। विगत युगों में क्या व्यवस्था थी और आगामी में क्या होगी, इसकी जानकारी रखने वाले व्यक्ति आज भी संसार में हैं; और ऐसे लोग वे हैं जिनके सामने सम्पूर्ण मानव-इतिहास और मानव-विधान के लेखे—उनके 'रिकार्ड'—खुले हुए हैं। गुप्त और प्रकट, अनेक धर्म एवं विज्ञान के

ग्रन्थों में भी ये लेखे विद्यमान हैं और उनके कुछ-एक गहरे उपाध्यायों की साक्षी पर ही मैं यह बात कह रहा हूँ। फिर भी मेरा अभिप्राय सेक्स और प्रजनन-सम्बन्धी कोई थ्योरी या सिद्धान्त आपके सामने रखने का नहीं, बल्कि केवल यही है कि नारी-पुरुष का सौन्दर्यपरक आकर्षण सन्तानोत्पत्ति के लिए नहीं, प्रेम के लिए ही है। यदि यह बात ठीक निकले तो इससे आपमें से उन सभी को—जो सृष्टि की उत्पत्ति और सुरक्षा की चिन्ता अपने कन्धों पर उठाये नहीं चल रहे हैं—रूप और सौन्दर्य की राह, जीवन की सरसता का विस्तृत मार्ग खुला दीखेगा। अगली गोष्ठी में भी हम इस प्रेम और विवाह के प्रसंग को जारी रक्खेंगे।" ★

चौदहवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने प्रारम्भ किया :

"पिछली गोष्ठी में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण और सम्बन्धों की बात चल रही थी। मैंने सुझाया था कि उसी सम्बन्ध को भरपूर सुखद और सफल बनाने के लिए समाज ने विवाह-व्यवस्था प्रचलित की थी। क्या आप चाहेंगे कि हम विवाह के प्रश्न पर आज कुछ गहराई तक विचार करें?"

"अवश्य। इस प्रश्न की रोचकता और उपयोगिता में हम में से किसी का भी मतभेद नहीं हो सकता।" पांचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा।

वीरभद्र ने कहा :

"युवावस्था में स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण प्राकृतिक है। हम उस प्रारम्भिक युग की कल्पना कर सकते हैं जब स्त्री

और पुरुष ने सामने होने पर एक-दूसरे की आवश्यकता का अनुभव किया होगा। उस समय किसी भी स्त्री के लिए किसी भी पुरुष का निमंत्रण स्वीकार्य रहा होगा। उनके सम्पर्क में आने के लिए किसी बन्धन या व्यवस्था की आवश्यकता न थी। वह निश्छल पशुओं की सी सरलता का युग था। आगे एक पुरुष का किसी एक स्त्री या कुछ-एक स्त्रियों के साथ सम्बन्ध नियमित और किसी सीमा तक स्थायी होने लगा और तभी उस सम्बन्ध की सुरक्षा और दूसरों के अतिक्रमणों से उसके बचाव का प्रश्न उठा। शिकार, धरती, धान्य और धन को लेकर मानव-समाज के बीच संघर्ष का जन्म तो बहुत पहले ही हो चुका था, अब स्त्री भी ऐसे संघर्ष और युद्ध का एक कारण बन गई। समाज को व्यवस्था बनानी पड़ीः जो स्त्री-पुरुष सहमति पूर्वक एक-दूसरे के साथ रहना चाहें उनके बीच कोई तीसरा अतिक्रमण न करे, बलपूर्वक किसी का अपहरण न करे। इस व्यवस्था से लोगों को कुछ निश्चिन्तता हुई। दूसरों के सुख की रक्षा में लोगों ने अपने भी सुख की रक्षा देखी। बलिष्ठ जनों ने इस व्यवस्था को संरक्षण दिया। लेकिन मानव-चेतना विकास के पथ पर थी। रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य की दिशाओं में मनुष्य का आकर्षण जाग चला था। पुरुष देखता कि अमुक स्त्री, जिसका किसी दूसरे पुरुष से सम्बन्ध है, अधिक सुन्दर या किसी अन्य आकर्षक गुण से सम्पन्न है। स्त्री देखती कि अमुक पुरुष, जो किसी दूसरी स्त्री या किन्हीं दूसरी स्त्रियों से सम्बद्ध है, अधिक सुन्दर या किसी अन्य आकर्षण से सम्पन्न है। उनकी रुचियां एक व्यक्ति से हटकर दूसरे पर जाने लगीं। पुरानी सहमतियाँ टूट कर नई जुड़ने लगीं। प्रस्तुत को छोड़कर अधिक श्रेष्ठ की कामना और उपासना होने लगी। यह निश्चय ही मानव-हृदय की संवेदना के विकास का लक्षण था। हार्दिक संवेदना से ऊपर यह बौद्धिक चेतना का भी युग था। मानव-इतिहास का एक मध्य बिन्दु, यह ऋषियों का युग था। स्त्री और पुरुष दोनों की इच्छाओं का सम्मान था और उनके

स्वतन्त्र अनुसरण का महत्व लोक-सम्मत था। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध मधुर थे, और यदि वे कहीं अन्यत्र जुड़कर मधुरतर हो सकते थे तो इसके लिए पूरी छूट थी। इस स्वतन्त्रता में जीवन की प्रगति सुगम थी। उस युग का इतिहास यदि हमें कहीं मिल सकता है तो पुराण-उपनिषद् जैसे ग्रन्थों में ही। उद्दालक ऋषि की स्त्री या पत्नी जब एक अन्य तेजस्वी ब्राह्मण के निमन्त्रण पर उसकी ओर आकृष्ट हुई तो ऋषि की सहज अनुमति उसे मिल गई। ऋषि ने देखा कि उस नारी का अगला विकास उस पुरुष के संसर्ग में ही अधिक सुगम होगा। वह उसके साथ चली गई। किन्तु उनके पुत्र श्वेतकेतु को अपनी माता का यह व्यवहार अप्रिय लगा। इस कथा के अनुसार अधिकार-पूर्ण विवाह की प्रथा का जन्म श्वेतकेतु द्वारा हुआ। इस व्यवस्था को ही आधुनिक विवाह-युग का आरम्भ कह सकते हैं। विवाह का अर्थ हुआ: तू मेरी है, तेरे शरीर और हृदय पर मेरा ही अधिकार है। यह व्यवस्था मानव की विकासशील प्रवृत्तियों के सम्मुख एक प्रतिगामी धारा थी। प्रारम्भ में इस बन्धन में पारस्परिक अनुराग, आश्वासन, संरक्षण और आजीवन स्नेह-निर्वाह की प्रतिज्ञा के उजले धागे भी थे। इस बन्धन का और भी उपयोग था। शारीरिक सौन्दर्य के प्रति मनुष्य की नई जगी हुई भूख का अनियन्त्रित और असन्तुलित होकर विकृति की दिशाओं में बहक जाना स्वाभाविक था। केवल शारीरिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर अनुपयुक्त, असम तथा दूसरी अनेक दृष्टियों से अवांछनीय व्यक्तियों के भी कौशल-प्रपंच-पूर्ण निमंत्रण सुन्दर स्त्रियों को मिलने लगे थे। उन अहितकर प्रलोभनों से उन्हें बचाने के लिए ऐसा बन्धन उपयोगी भी था, क्योंकि सेक्स-चेतना के क्षेत्र में मनुष्य का चिन्तन ह्रास की ओर झुक आया था। विवाह में अधिकार की जो बात रख दी गई थी, वह मानवीय सौजन्य पर एक कालिमा थी, फिर भी एक समय और परिस्थिति के लिए वह आवश्यक थी। आवश्यक समय और सीमा के आगे भी यदि वह कालिमा बढ़ती रहती है तो वह समाज

के शरीर पर एक काला कोढ़ ही सिद्ध होगी। हमें देखना है कि ज्यों ही उस बन्धन-रूप कालिमा की आवश्यकता न रह जाय, उसे तुरंत मिटा देना चाहिए। विवाह के इस अधिकार-परक बन्धन ने यदि हमारी पाशविक कामुकता और उसके आचरण को बढ़ाया हो; चोरी, बलात्कार, संदेह, कटुता, अतृप्ति, मानसिक संकीर्णता आदि की समाज में वृद्धि की हो, तो हम इसमें आवश्यक सुधार की, या इसे जड़ से उखाड़ देने की बात सोच सकते हैं। मुझे ध्यान है, और आप भी कृपया विश्वास रक्खें, मैं अपनी मान्यताएं आपकी स्वीकृति के लिए नहीं, केवल विचारणीय प्रश्न ही आपके सामने रख रहा हूँ।

"आज की स्थिति सेक्स के सम्बन्ध में वही है जो मैंने अभी अन्त में प्रस्तुत की है। सेक्स की भूख, रूप की प्यास, अतृप्ति, विवशता और जहां सुविधा है वहां सेक्स-व्यापार की अति ही हमें समाज में दिखाई देती है। हमारे जीवन में नीरसता का राज्य और स्वच्छ इच्छाओं का अभाव है। जिस अभिप्राय से आपने विवाह का बन्धन अपनाया है वह क्या पूरा हो रहा है?

"आप विवाह क्यों करते हैं? इसीलिए न कि दो व्यक्ति, जो प्राकृतिक रूप में एक-दूसरे के लिए आकर्षक और सब प्रकार से पूरक हो सकते हैं, मिलकर रहें और पारस्परिक सुख, सरसता और सहयोग का गहरे से गहरा आदान-प्रदान करें? विवाह के बन्धन का यह भी अर्थ है कि वे एक-दूसरे के कुछ ऊपरी सम्पर्कों या आवरणों का रस लेकर जल्द ही अलग न हो जायँ बल्कि धैर्य के साथ एकत्र रहकर एक-दूसरे को भीतर तक जानने और पाने की साधना करें। यह स्पष्ट है कि जो तितली फूलों का थोड़ा-थोड़ा रस लेकर फूल-फूल पर अटकती है वह उनका मधु-संचय नहीं कर सकती। आप जानते हैं, मधु-संचय करने वाली तो और ही होती हैं। यदि आपके विवाहित जीवन में कटुता है, नीरसता है, या उसकी प्रवाहमयी सरसता के लिए कोई मार्ग आप नहीं खोल पाते तो इस बन्धन का प्रश्न विचारणीय है।

प्रेम, सहयोग, सौन्दर्य-दृष्टि की जागृति और उसकी प्यास की तृप्ति या इन सबकी सुविधाएँ आपको अपने विवाहित स्वजन के साथ नहीं मिलतीं तो ऐसे विवाह का अभिप्राय ही क्या है ? इस प्रश्न पर हमें विचार करना होगा—इसलिए नहीं कि हम विवाह और प्रेम के सम्बन्ध में कुछ मान्यताएँ निश्चित कर समाज में उनका प्रसार करें, बल्कि इसलिए कि इस प्रश्न के नीचे ही हम जीवन का मौलिक प्रश्न खोजने की आशा करते हैं। आज मैंने कुछ विस्तार के साथ विवाह-प्रथा की ऐतिहासिक रूप में रेखा प्रस्तुत की है। इसी के आधार पर हम अगली गोष्ठी में अपनी वर्तमान परिस्थिति को समझने का प्रयत्न करेंगे।" ★

पन्द्रहवीं गोष्ठी

पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा :

"यह लगभग तय है कि हमारे दाम्पत्य जीवन में सरसता, सौंदर्य-दृष्टि और जिसे अनुरक्ति कहना चाहिए उस वस्तु का अभाव है। मेरी पत्नी सुन्दर है फिर भी मैं कह सकता हूँ कि उसके प्रति मेरी सौन्दर्य-दृष्टि धुँधली हो चुकी है। हमें एक-दूसरे के भौतिक सुख-दुःख की चिन्ता अवश्य है किन्तु उससे आगे हमारे बीच कोई आन्तरिक समवेदना जगी हुई नहीं है। पत्नी के साथ इस विषय पर पिछले सप्ताह मेरी बहुत बातचीत हुई है। यह चर्चा उसे बहुत रोचक लगी है। इस बातचीत से जो कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठे हैं उन्हें मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ।"

"वे प्रश्न हमारे विचार-विनियम का उपयुक्त विषय बन सकेंगे। उन्हें ही आप सामने लाइए। जो बातें उन प्रश्नों से बाहर छूट जायंगी उनकी हम अलग से चर्चा कर लेंगे।" वीरभद्र ने अनुमति दी।

"हम समझते थे कि पैंतीस-चालीस की आयु के बाद पति-पत्नी के बीच सौन्दर्य-दृष्टि और अनुरक्ति का कोई स्थान नहीं रहता और न उसकी आवश्यकता ही रहती है। अपने साथी से भिन्न दूसरे व्यक्तियों के प्रति जो कभी-कभी वैसा आकर्षण होता है वह एक चलता हुआ आभास है और व्यावहारिक जीवन में उसका रस अधिक समय तक टिक नहीं सकता। आपके दृष्टिकोण से यह धारणा ग़लत है। आप इसमें क्या सुधार सुझा सकते हैं?" पूर्व वक्ता ने कहा।

"पैंतीस-चालीस की आयु के बाद भी मनुष्य को प्रेम-विषयक उपन्यास, कथाएँ और भावपूर्ण सौन्दर्य-चित्र अच्छे लगते हैं। प्रम और सौन्दर्य साहित्य और कला के प्राण हैं, और साहित्य तथा कला विकासोन्मुख मानव-जीवन के चिरकाल से अवलम्ब रहे आये हैं। पैंतीस-चालीस या पचास-साठ की आयु के बाद यदि हम जीवन में प्रेम और सौन्दर्य का स्थान या आवश्यकता नहीं देखते तो इसमें प्रेम-सौंदर्य के अस्तित्व का नहीं, हमारी दृष्टि का ही दोष हो सकता है। पौराणिक युग के कृष्ण और अर्जुन तथा वर्तमान ऐतिहासिक युग के मुहम्मद, पृथ्वीराज और अकबर ने जब-जब नये विवाह किये तब-तब उन्हें यह ध्यान नहीं रहा होगा कि वे पैंतीस या चालीस के हो चुके हैं। शारीरिक बुढ़ापा वास्तव में एक अस्वाभाविक अवस्था है और हमारे मन की शिथिलता का परिणाम है। मन की शिथिलता हमारी विचारहीनता से भिन्न किसी अन्य वस्तु की उपज नहीं हो सकती। लेकिन यह चर्चा निश्चित विषय से हमें कुछ दूर ले जायगी। विचारणीय विषय था कि हमारे वैवाहिक सम्बन्ध यदि असफल और अवरोधक हैं तो उनमें क्या सुधार हो सकता है, और यदि अभीष्ट सुधार नहीं हो सकता तो क्या बिना विवाह के भी समाज का काम नहीं चल सकता?" वीरभद्र ने कहा।

"वैवाहिक मर्यादा में" तीसरे आसन की अधेड़ महिला ने कहा, "पति-पत्नी के बीच नैतिक बन्धन एक यही होता है कि वे अपना हृदय

और शरीर किसी अन्य को न दें। यही एक बन्धन है जो किसी पति या पत्नी की सौन्दर्य एवं प्रेम सम्बन्धी इच्छा में, और यदि वह इच्छा किसी अन्य व्यक्ति के प्रति जाग उठे तो उसकी पूर्ति में, बाधक हो सकता है। किसी की इच्छा के विकास या इच्छा की पूर्ति में बाधक होना उसकी जीवन-प्रगति में बाधक होना है, यह बात मेरी समझ में आती है। मैं जानती हूँ कि ऐसा करना प्रेम, सहयोग और मानवीय सौजन्य के विरुद्ध जाना है। लेकिन यहीं पर एक वास्तविक कठिनाई है। यदि आप अपनी पत्नी के किसी भी अन्य पुरुष से प्रेम करने की स्वतन्त्रता को मान लेते हैं तो इसकी सम्भावना बढ़ जाती है कि उसे वैसा व्यक्ति मिल जाय। उस दशा में क्या यही न होगा कि आपका प्रेम अपनी पत्नी की ओर से हट या घट जायगा और आपको उसके सुख-दुख की उतनी चिन्ता न रहेगी? आप क्या उसकी ओर से उदासीन न हो जायंगे? इस प्रकार दो विवाहित व्यक्ति जो बन्धन रहने पर आजीवन सुख-दुःख के सहायक रहते, अब प्रेम, सहयोग और संरक्षण के लिए सदैव अस्थिरता, परिवर्तन और अनिश्चय के झूले में झूलेंगे। प्रेम की स्वतन्त्रता में इस स्थिति का आपके पास क्या उपचार है?"

"यह केन्द्र का प्रश्न है।" वीरभद्र ने कहा "यदि मेरी पत्नी किसी दूसरे की ओर आकृष्ट होती है, अपने हृदय और शरीर से उसका कुछ सत्कार करना चाहती है और करती है तो वह मेरे प्रेम, सहयोग और संरक्षण से वंचित हो जाती है। विवाहित प्रेम-सहयोग का मानो पहला और अन्तिम सूत्र यही है। लेकिन मेरी पुत्री या बहिन जब किसी पुरुष की ओर उस रूप में आकृष्ट होती है तो मेरे मन पर वैसी चोट नहीं लगती और मेरा प्यार और संरक्षण उसके प्रति वैसा ही अक्षुण्ण बना रहता है। मेरा मित्र कल एक स्त्री की ओर आकृष्ट था, आज दूसरी की ओर है, इससे मेरे उसके स्नेह-सहयोग-पूर्ण व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता। लेकिन पत्नी, जिसे मैंने अपने

हृदय और जीवन के सबसे अधिक समीप रखने के दावे के साथ अपनाया था, उसी के साथ मेरा नाता सबसे अधिक शर्तों से भरा और हलके-से झटके से टूटने वाला है। अपनी सबसे अधिक निजी सम्पत्ति, अपने हृदय और शरीर पर भी उसका इतना अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे के सत्कार में इनका उपयोग कर सके। पति-पत्नी के बीच इससे अधिक बर्बर और अन्यायपूर्ण नाता और क्या हो सकता है! अब दूसरी ओर से इसी चित्र को देखिए। मेरा और मेरी पत्नी का नाता सबसे पहले आजीवन मैत्री, सहयोग और हितचिंता का नाता है। सेक्स-भेद के कारण इस नाते में सौन्दर्य-दृष्टि और अनुरक्ति और सन्तान-लाभ का भी पूरा स्थान है। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर हम विवाह-सूत्र में बँधे। कुछ समय बाद मेरे उसके बीच सौन्दर्य-दृष्टि और अनुरक्ति में शिथिलता आगई। यही अधिकांश दम्पतियों के जीवन में उम्र के साथ होता है। शिथिलता का अर्थ यह कि हमें एक-दूसरे का रूप अब उतना सुन्दर नहीं लगता और एक-दूसरे के सामीप्य में उतना रस नहीं मिलता। मुझे उसके रूप और सामीप्य की अब वैसी आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थिति में एक अन्य पुरुष हमारे बीच आता है। वह मेरी पत्नी के रूप और शील से उसकी ओर आकृष्ट होता है। मेरी पत्नी भी उसके रूप, गुण या उसके अनुराग से ही उसकी ओर झुकती है। उसके जीवन में सोया हुआ स्पन्दन फिर से जागता है। उस स्पन्दन के मार्ग में बाधक होने वाला मैं कौन हूँ? जिस वस्तु का—पत्नी के रूप और सामीप्य का—मेरे निकट अब वैसा उपयोग नहीं है, उसे दूसरे के उपयोग से रोकने की मुझे क्या आवश्यकता और क्या अधिकार है? पति पत्नी का पूरक ही नहीं, गुरु, पितृवत् संरक्षक और आजीवन मित्र भी है। यदि वह समर्थ और जागरूक है तो पत्नी की कोई भी प्रियताएँ और आकांक्षाएँ उसके स्नेह को विचलित नहीं कर सकतीं। वह उस पिता के समान है जो अपनी प्यारी बच्ची को घर या वाटिका में, धूप या

छांव में, कोई भी मनपसन्द खेल खेलने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देता है; लेकिन अंत में वह फिर उसी के पास आकर स्नेह और संरक्षण की छाया पाती है। मेरी दृष्टि में ऐसा ही पति और ऐसा ही दाम्पत्य-सम्बन्ध आदर्श है। ऐसे ही सम्बन्ध में स्थायी प्रेम और मैत्री की दृष्टि हो सकती है। पत्नी के हृदय का कोई भी कोना पति के लिए अज्ञात न हो, उसकी प्रत्येक ललक और आकांक्षा की क्षति-रहित मार्गों द्वारा पूर्ति का वह ध्यान रक्खे, यही उसे चिर अनुगृहीत और आश्वस्त रखने का मानवोचित साधन है। पारस्परिक विश्वास और सहयोग की इससे बढ़कर और क्या स्थिति आप चाहते हैं? यदि आपकी पत्नी अपना उन्मुक्त हृदय, और उस हृदय के किसी कोने में अगर किसी दूसरे व्यक्ति का स्थान है तो उस व्यक्ति के आसन-सहित सम्पूर्ण हृदय तथा सहयोग आपको देती है और आपके लिए आपकी दी हुई सन्तान की माता बनना स्वीकार करती है तो क्या यह पर्याप्त नहीं है? मेरी समझ में इससे अधिक वैवाहिक विधान की और कोई माँग नहीं होनी चाहिए।"

"एक बन्धन सम्भवतः आपने भी यहाँ रख लिया है" दूसरे आसन की महिला ने कहा : "आपकी पत्नी आपकी दी हुई सन्तान की माता बनना स्वीकार करती है, इसका अभिप्राय क्या यह नहीं है कि वह और किसी से, अपने अन्य प्रेमी से, सन्तान ग्रहण नहीं करेगी?"

"मेरा यही अभिप्राय है।" वीरभद्र ने कहा।

"तब ऐसी स्थिति में आप उसे अपने शरीर द्वारा अन्य प्रियजन का यथेच्छ सत्कार करने से किसी सीमा तक वंचित भी करते हैं। आपने अभी हृदय और शरीर से किसी भी प्रेमी का यथेच्छ सत्कार करने की स्वतन्त्रता की बात कही थी।" पूर्व महिला ने कहा।

"मैं समझता हूँ कि इतना निर्बाध आवश्यक है और इसमें स्वस्थ स्वतन्त्रता का बाधक कोई बन्धन नहीं है।"

"यह कैसे ?"

"आप भी सोचिये। अगली गोष्ठी में हम इस पर विचार करेंगे।" वीरभद्र ने इस गोष्ठी की वार्ता सम्पूर्ण की। ★

सोलहवीं गोष्ठी

पहले आसन के क्लर्क सज्जन ने प्रश्न किया :

"पिछली गोष्ठी में पति-पत्नी के आदर्श सम्बन्ध की बात करते हुए आपने कहा था कि पति की ओर से पत्नी को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। वह चाहे तो अपने हृदय और शरीर से अन्य पुरुष का यथेच्छ सत्कार कर सकती है। लेकिन उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाली सन्तान उसके पति की ही होनी चाहिए। यह शर्त क्या पत्नी की उपर्युक्त स्वतन्त्रता को सीमित नहीं कर देती ? यदि वह देह से भी दूसरे व्यक्ति का यथेच्छ सत्कार करने के लिए स्वतन्त्र है तो इस शर्त का निर्वाह कैसे सम्भव है ? जब स्वतन्त्रता की ही बात है तो फिर इस इतनी रुकावट की ही क्या आवश्यकता है ?"

वीरभद्र ने कहा :

"इसकी आवश्यकता है और इसका निर्वाह भी सुगम है। वैयक्तिक और पारस्परिक जीवन की सार्थकता के लिए यह सर्वथा वांछनीय है कि प्रत्येक पिता को यह पता हो कि अमुक बालक या बालिका उसकी और निश्चित रूप से उसी की संतान है। पिता का अपनी संतान से जितना गहरा और आन्तरिक सम्बन्ध होता है उतना माता का नहीं। संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक जीव पहले अपने पिता के पास आता है, पीछे माता के गर्भ में। पिता का चुनाव वह करता है, माता कोई भी हो सकती है। मानव-विज्ञान के गुह्य ग्रन्थों

में इनका विवरण मिलता है। पिता का स्नेह, जो कि प्रत्येक शिशु की आन्तरिक आवश्यकता है, तभी मिल सकता है जब उसे इस सम्बन्ध में कोई अनिश्चय न हो। और भ्रमवश दिया हुआ स्नेह भी आंतरिक स्नेह नहीं हो सकता। वैयक्तिक और पारस्परिक जीवन से आगे सम्पूर्ण समाज के जीवन की स्वच्छता के लिए अनिवार्य रूप में यह आवश्यक है कि समाज जिसे जिस पिता का पुत्र जानता है वह उसी पिता का हो। इसमें भूल या सन्देह या अनिश्चय का होना समाज की अन्तर्बाह्य प्रगति में एक बड़ी बाधा है। अज्ञात पिताओं के बच्चे सामाजिक चेतना पर एक ऐसा कलंक हैं जिसकी जड़ें बहुत गहरी जाती हैं। यदि कोई भी पति-पत्नी समाज के सामने सही-सही घोषित कर सकें और करदें कि अमुक संतान अमुक पिता की है तो वे समाज के प्रति कृत-कर्तव्य रह सकते हैं। समाज के लिए इतना ही यथेष्ट है कि वह धोखे में न रहे। जिस दिन व्यक्ति में इतना पवित्र साहस आ जायगा कि वह अपनी किसी सन्तति की बात समाज से न छिपाये, और जिस दिन समाज में इतनी न्याय-संगत उदारता आ जायगी कि वह अविवाहित दम्पति के बच्चों को भी आदर-सत्कार से ले सके, उस दिन इस प्रतिबन्ध की भी आवश्यकता न रह जायगी। जब तक ऐसा नहीं है तब तक सच्चाई और अस्तेय के लिए इसका निर्वाह होना चाहिए। समाज से चोरी करना अपनी हीनता को बढ़ाना है। दूसरी बात यह है कि दो व्यक्ति जब विवाह करते हैं तो उनका एक प्रमुख ध्येय सन्तानोत्पत्ति भी होता है। सन्तान के लिए पुरुष अपनी पत्नी को पहला क्षेत्र और नारी अपने पति को पहला स्रोत चुनती है। इस चुनाव को बिना किसी बहुत बड़े कारण के बदलना या मिश्रित करना दुर्बलता और हानिकर अस्थिरता का ही द्योतक है। और फिर इस प्रारम्भ की हुई व्यवस्था का निर्वाह तनिक भी कठिन नहीं है। मैं आपको अपने, मेरे और पड़ोस के किसी भी अनुकूल घर में उठने बैठने, खेलने और खाने-पीने की स्वतन्त्रता देता हूँ। केवल इतना

व्यवस्था चाहता हूँ कि जब आपके पेट में भूख लगे तो मुँह में खाना उस चम्मच से ही खायें जो आप अपने लिए खरीद चुके हैं। बाह्य और आन्तरिक स्वास्थ्य के लिए इसका बड़ा महत्व है। क्या इतनी-सी व्यवस्था का निर्वाह भी आपके लिए कठिन है?"

"यह बात बहुत स्पष्ट नहीं हुई" दूसरे आसन की महिला ने कहा, "इससे और भी बहुत से प्रश्न उठते हैं।"

"बहुत स्पष्ट होने की आवश्यकता भी नहीं है। यह स्वयं सोचने की बात है। और किसी भी बात से उठे हुए प्रश्न अगणित हो सकते हैं हमें आगे भी तो बढ़ना है।' वीरभद्र ने कहा।

"फिर भी शरीर द्वारा सत्कार की स्वतन्त्रता का स्पष्टीकरण तो होना ही चाहिए।" पांचवें आसन से पत्रकार सज्जन ने कहा।

हमारी कठिनाई यह है कि प्यास लगने पर यदि एक निर्मल जल से भरा कलस हमें दिखाई देता है तो हम ऊपर से ही उसका जल प्यास भर पीकर सन्तुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि उसके पेंदे में पड़े हुए पानी का भी स्वाद लेना चाहते हैं। पेंदे में मान लीजिए, मोटी चीनी के कुछ सफेद दाने चमक रहे हैं। हमारी प्यास विकृत, छिछली और कृत्रिम हो गई है—शुद्ध पानी की जगह चीनी का शर्बत पीने के हम आदी हो गये हैं। पूरे कलश का पानी हम पी नहीं सकते, और पेंदे का मीठा घोल पीना चाहते हैं। यदि प्यास स्वस्थ, स्वाभाविक होती तो हम उसके ऊपर का ही चौथाया या आधा जल पीकर तृप्त हो जाते, लेकिन हमें तो नीचे का गाढ़ा मीठा घोल चाहिए। हम उस कलश को या तो लुढ़का देते हैं या उसके पेंदे को छेद देते हैं। इस रूपक को आप नारी या सेक्स-सम्बन्धी अपनी प्यास पर घटा सकते हैं। शरीर द्वारा सत्कार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि आप निम्नांग सहवास की सीमा में ही पहुँच जायँ। सहज आकर्षण की स्थिति में यह अस्वाभाविक भी है।" वीरभद्र ने कहा।

"आप कहते हैं कि स्वस्थ आकर्षणकी स्थिति में नारी किसी पर-पुरुष के प्रति अपनी देह का सर्वांगीण समर्पण नहीं करेगी, न करना चाहेगी ?" दूसरे आसन की महिला ने पूछा।

"सर्वांगीण समर्पण करना चाह भी सकती है, कर भी सकती है, लेकिन अति असाधारण तन्मयता और आत्मीयता की किसी बिरली स्थिति में ही। उस दशा में वह स्वाभाविक होगा, और जो स्वाभाविक है वही धर्म है।"

"उस दशा में पर-पुरुष से सन्तान-लाभ का बचाव कैसे होगा ?" नवें आसन के युवक ने पूछा।

"बचाव न हो तो न हो, समाज के सामने दुराव न करने का साहस उसमें होना चाहिए। अधिक सम्भव है कि ऐसी सन्तान समाज का एक महान् नागरिक निकले।"

"और सन्तति-नियमन के आजकल प्रचलित और प्रसारित दूसरे अनेक कृत्रिम साधन भी तो हैं।" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा।

वीरभद्र ने कहा : "एक आदमी को अति भोजन का रोग हो गया। जितने समय वह खाता न रहता, उसे बेचैनी रहती। लेकिन पेट की तो अपनी सीमा थी ही। डाक्टर ने उसके गले में जीभ के नीचे छेद कर एक बड़ी थैली उसके कन्धे से सिलवादी। खाया हुआ स्वादिष्ट अन्न पेट में न जाकर उस थैली में जाने लगा। जिनकी भूख इतनी उग्र और अनियंत्रित हो गई हो वे इस प्रकार का कोई भी उपाय कर सकते हैं।"

"शरीर द्वारा सत्कार का यदि कुछ भी अर्थ है तो किसी भी मुग्धा, स्वीकृतिमयी युवती का चुम्बन तो लिया या स्वीकार किया ही जा सकता है ?" पाँचवें आसन के पत्रकार बन्धु ने प्रश्न किया।

"इससे आपको या उसे कौन रोकता है ?" वीरभद्र ने कहा, "लेकिन यह जो साढ़े आठ का अद्धा अभी बजा है, यह आज की बातचीत को रोक देने का आदेश अवश्य दे रहा है। अब हम अगले बृहस्पतिवार को ही मिलेंगे।" ★

सत्रहवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"पिछली गोष्ठियों में हमने यह देखने का प्रयत्न किया है कि आज के समाज में दो निकटतम व्यक्तियों—पति-पत्नी—का सम्बन्ध भी कितना छिछला है और गहराई की ओर बढ़ने पर वह क्या हो सकता है। हम समझते हैं कि विश्वास, सहयोग और प्रेम के लिए निषेध-नियंत्रण-पूर्ण बन्धनों की आवश्यकता है, जब कि ऐसे बन्धनों का प्रेम और सहयोग की उपलब्धि से दूर का भी नाता नहीं है। कम से कम इतना तो आपने देख ही लिया है कि अपने स्वजन की इच्छाओं पर रोक लगाकर आप उसकी इच्छाओं के स्रोत को ही सुखा देते हैं। और इच्छा का स्रोत ही जीवन का स्रोत है। अपने साथी को पहले आप बंधनों में बाँध कर निष्प्राण कर देते है, फिर कहते हैं कि उसमें सरसता, अनुराग और सौन्दर्य नही है। अपने समीपवर्ती जनों पर बन्धन लगाने की हमारी प्रवृत्ति इतनी घनीभूत हो गई है कि हम स्वयं भी दशों दिशाओं से निरन्तर बन्धनों में ही घिरे रहते हैं। बन्धनों का यह बोझ और विस्तार इतना अधिक हो गया है कि हम इन बन्धनों से बाहर जीवन की—विश्वास, अनुराग और सौन्दर्य जीवन की ही कलाएँ हैं—जीवन के विविध रूपों की कल्पना ही नहीं कर पाते। बन्धनों का यह बोझ ही हमारा व्यापक रोग है; और इसी ने हमारी

सब से अधिक निकटवर्ती, सोचने और चाहने तक की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया है। जीवन की जिस चरम रोचकता और उपयोगिता की हमें खोज है वह मेरे-आपके या किन्हीं भी दो या अधिक व्यक्तियों के पारस्परिक मिलन में ही प्राप्त हो सकती है। एकान्त साधना और ब्रह्मनिष्ठा द्वारा गिरि-गुहा-वासी तपस्वियों और योगियों को भी वह परम रोचक और परम उपयोगी पूर्णतया प्राप्त नहीं होता; उसकी पूर्ति के लिए उन्हें समाज, संसार या किन्हीं दूसरों के बीच लौटना ही पड़ता है। यह मेरा अपना विचार ही नहीं, धर्म और ध्यान के ऊँचे ग्रन्थों में भी मैंने ऐसा पढ़ा है। और तो और, परब्रह्म परमेश्वर जैसी सत्ता यदि कोई है तो उसका भी काम सृष्टि में फैले बिना नहीं चलता। इसलिए उस परम रोचक और उपयोगी की खोज हम एकान्त में नहीं, सम्मिलन में ही कर सकते हैं; और मेरे-आपके जैसे साधारण व्यक्तियों के लिए उस सम्मिलन का क्षेत्र उसके निकटतम स्वजन—पति-पत्नी, प्रेमी, प्रेयसि या मित्र—के ही समीप है। इस सम्मिलन के लिए विपरीत सेक्स का सान्निध्य एक बहुत बड़ी सुविधा है, क्योंकि सेक्स का चुम्बक मानवीय आकर्षण का सबसे चौड़ा द्वार है। इस वार्तालाप के इस स्थल पर पहुँच कर मैं आपको सलाह दे सकता हूँ कि आज से ये गोष्ठियाँ समाप्त कर दी जायँ और आप अपने हृदय के सब से अधिक समीपवर्ती स्वजन के पास जाकर उसके सम्पर्क में ही उस परम रोचक और उपयोगी की खोज करें। यदि आपको वैसे पति-पत्नी या प्रेमी का साथ प्राप्त नहीं है, या प्राप्त साथी में गहरी अनुरक्ति की सम्भावना नहीं है तो मेरा आन्तरिक अनुरोध है कि आप अपने समाज में से ऐसा एक व्यक्ति अविलम्ब चुन लें। लेकिन वैसे व्यक्ति के साथ सम्पर्क की गहराइयों में उतरने की कला से, उसकी 'टेकनीक' से अभी आप सम्पन्न नहीं हैं, इसलिए इन गोष्ठियों की अभी आवश्यकता शेष है। इन गोष्ठियों में हम मानवीय मिलन की उस कला का भी अध्ययन और अभ्यास करने की आशा रखते हैं।

"इन गोष्ठियों में मैं और आप एक-दूसरे की उन अन्तर्तम गहराइयों में उतरना चाहते हैं जहाँ हमारे जीवन की सर्वाधिक रोचक और उपयोगी वस्तु सुरक्षित है। जैसा मैंने पहले कहा, सेक्स का आकर्षण एक प्रारम्भिक सुविधा मात्र है। किसी भी व्यक्ति की गहराई में पहुँच कर आपको वह अभीष्ट वस्तु मिल सकती है—वह चाहे विपरीत सेक्स का हो, चाहे आपके ही सेक्स का। मनुष्य का अन्तर्तम व्यक्तित्व सेक्स रहित है, या कह लीजिए, उसमें दोनों सेक्स का आकर्षण है। अब इस सम्पर्क के लिए पहली आवश्यकता यह है कि आप दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार के बन्धन में न बाँधें। विवाहित जीवन में अपने संगी पर लगाये हुए ज्ञात-अज्ञात बन्धनों की बात आप देख चुके हैं और उन बन्धनों को ढीला करने पर किस प्रकार के सुख-विकास की सम्भावना है, इसका भी कुछ आभास पा चुके हैं। अधिकार की, किसी वस्तु या व्यक्ति को केवल अपने ही इच्छित, और अधिकतर अनिच्छित उपयोग के लिए बाँध रखने की भावना उसके रस को समाप्त कर देती है। दूसरों को आप जिन बन्धनों में बाँधना चाहते हैं वे प्रकट ही नहीं सूक्ष्म भी होते हैं। जो व्यक्ति आपको सुन्दर या किसी उपयोग में आने योग्य दीखता है उसे तो आप बाँधते ही हैं; जिस पर श्रद्धा करते हैं, जिसकी शक्तिमत्ता या किसी गुण-सम्पन्नता से प्रभावित होते हैं उसे भी बाँधने के अभिप्राय से ही उसके समीप जुड़ते हैं। आप अपनी प्रकट जानकारी में नहीं तो भीतर ही भीतर इसी टटोल में रहते हैं कि उस व्यक्ति की श्रद्धेयता, उसकी शक्ति या गुण विशेष कब-कहाँ आपके किसी मनोनुकूल उपयोग में आ सकेंगे। आपकी श्रद्धा-प्रशंसा का आन्तरिक अभिप्राय यही होता है कि आप उस व्यक्ति की सम्पन्नता को अपने किसी उपयोग के लिए बाँध लेना चाहते हैं। विचारहीनता के बोझिल वातावरण में पली हुई आज की मानवीय मनोवृत्ति का यह एक आन्तरिक सत्य है।

"मैं और आप यदि वास्तव में मिलना चाहते हैं तो हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हम एक-दूसरे को अपने किसी अभिप्राय

के लिए बाँधें नहीं। आप लोग यहाँ आ रहे हैं और मेरी बात को इतनी रुचि से सुन रहे हैं तो मेरे मन में यह चाह उठ सकती है कि आप आगे चल कर मेरे प्रशंसक, मेरे विचारों के प्रचारक, मेरी अभीष्ट वस्तुओं के साधक और मेरे सहकारी बनें—भले ही मैं प्रकट में ऐसा बड़प्पन अभी आपके सामने न जताऊँ। इसी प्रकार आपके मन में यह चाह हो सकती है कि मेरे स्वतन्त्र और रोचक विचारों के प्रभाव में आने वाली सुन्दर तरुणियाँ और ऐसे ही युवक और धनिक जन अपने दान-सत्कार के भंडार आपके लिए खोल दें। आपमें से किसी के मन में ऐसा विचार हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ दिनों तक मुझे अपना शिक्षक मान कर आगे किसी दिन आप मेरे कान में कोई बहुत ऊँचा मन्त्र फूँक कर मुझे अपना शिष्य बना लेंगे। ऐसा महत्वपूर्ण मन्त्र या महत्वाकांक्षा आपमें से किसी के मन में हो सकती है। तो फिर इस गहरे मिलन का पहला सिद्धांत मुझे आज आपके सामने यही रखना है कि हम यदि सचमुच मिलना चाहते हैं तो निर्बन्ध भाव से और सुनिश्चित, असंदिग्ध, निश्छल समानता और बराबरी के धरातल पर ही मिल सकते हैं। इस दिशा में यदि तनिक भी छल या अहंकार मेरे या आपके मन में है तो हम कदापि अभीष्ट फल की दिशा में नहीं बढ़ सकेंगे।"

वीरभद्र की बात पूरी हो चुकी थी और गोष्ठी का समय भी। इसी समय आठवें आसन के वकील साहब ने कहा :

"पति-पत्नी के सम्बन्ध वाली बातें पिछली गोष्ठी में ही समाप्त होकर आज दूसरा प्रकरण प्रारम्भ हो गया। मुझे उस विषय में ही दो प्रश्न रखने थे।"

"आप उन प्रश्नों से ही आज की गोष्ठी प्रारम्भ कर सकते थे। अब अगली गोष्ठी में सही।" वीरभद्र ने कहा और सभा विसर्जित हुई। ✶

अठारहवीं गोष्ठी

आठवें आसन के वकील साहब ने पूछा :

"दो सप्ताह पहले पति-पत्नी के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए आपने कहा था कि पत्नी को अपने हृदय और शरीर से किसी भी अन्य व्यक्ति का सत्कार करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। वहाँ 'सत्कार' शब्द का प्रयोग क्या आपने विशेष अभिप्राय से किया था? सत्कार की जगह क्या यह नहीं कह सकते कि उसे अन्य व्यक्ति द्वारा भी अपनी हार्दिक और शारीरिक सन्तुष्टि करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए?"

"सत्कार शब्द का प्रयोग मैंने जान-बूझ कर ही किया है। अपनी सन्तुष्टि की नहीं, दूसरे के सत्कार की भावना से ही जब वह ऐसा करेगी तभी उसकी ऐसी स्वतन्त्रता सार्थक होगी। अपनी सन्तुष्टि से ऊपर दूसरे के सत्कार—दूसरे व्यक्ति को सुख देने की इच्छा—से प्रेरित होकर जब आप कुछ आदान-प्रदान करते हैं तभी उसमें दोनों पक्षों के लिए वास्तविक सरसता आ सकती है।" वीरभद्र ने कहा।

"दूसरी बात आपने यह कही थी कि जब आप अपनी पत्नी को अन्य व्यक्ति से प्रेम करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देंगे तो अन्त में उसे फिर आपके ही पास आकर स्नेह और संरक्षण की छाया मिलेगी। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं है कि दूसरे व्यक्ति के प्रति उसका आकर्षण एक घाटे का काम होगा, उस व्यक्ति के पास स्नेह-संरक्षण की कमी होगी और वह आपकी पत्नी के लिए आपकी अपेक्षा निम्न स्तर का ही सिद्ध होगा? यदि यह ठीक है तो उसे दूसरे के प्रति आकृष्ट होने ही क्यों दिया जाय?" वकील साहब का दूसरा प्रश्न आया।

"मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वह व्यक्ति निम्न स्तर का होगा। वह उसके पति से बहुत ऊँचे स्तर का भी हो सकता है और बहुत सम्भव है कि उसे अपने नये प्रेमी से जीवन की वह प्रेरणा मिले जो

पति से नहीं मिल सकती थी। फिर भी यदि पति-पत्नी का नाता सहृदयता की भूमि पर जुड़ा है तो वह पारस्परिक स्नेह और संरक्षण का एक ऐसा पौदा है जो कभी सूख नहीं सकता और जिसकी वृद्धि रुक नहीं सकती। आयु की दृष्टि से—क्योंकि पति-पत्नी का नाता नये प्रेमी के नाते से पहले का है—स्नेह और संरक्षण के उस वृक्ष की छाया नारी के लिए सदैव सहायक और वांछनीय रहेगी।" वीरभद्र ने स्पष्ट किया।

"वैवाहिक मर्यादा के सम्बन्ध में आपने जो बातें कहीं वे बहुत रोचक और मननीय हैं फिर भी उनसे बहुत-सी शंकाएँ उठती हैं। नारी की स्वतन्त्रता की बात कह कर आप इस विषय को इतनी जल्दी क्यों समाप्त कर देना चाहते हैं?" नवें आसन के युवक ने कहा।

"समाप्त करने वाला मैं कौन होता हूँ?" वीरभद्र ने कहा, "आप उसे बराबर जारी रख सकते हैं। आप अपनी पत्नी के साथ इसकी चर्चा कीजिए; बात पसंद आये तो उसे स्वतंत्र कर दीजिए और फिर देखिए कि आपके और कौन-कौनसे मित्र अपनी पत्नियों को स्वतंत्र करने के लिए तैयार हैं। उन मित्रों की स्वतंत्र पत्नियों में से शायद कोई सुन्दरी आपके लिए वरदान बन जाय! यह सब आप कर ही सकते हैं।"

"लेकिन ऐसी स्वतंत्रता पाने पर मेरी पत्नी के लिए तो कोई राह नहीं निकलेगी। मुझे विश्वास है कि कोई दूसरा व्यक्ति से पसंद करने के लिए तैयार नहीं होगा।" पूर्व वक्ता ने कहा।

"तब फिर उसे आपकी पूरी क़दर हो जायगी और वह आपकी यथेष्ट परायण बन जायगी। वह आपके अनुकूल बनने और आपको प्रसन्न करने का प्रयत्न करेगी। और उसे स्वतंत्रता का आश्वासन दे देने पर आपकी स्वतंत्रता का मार्ग तो खुल ही जायगा।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"स्वयं को स्वतन्त्र करने का पहला पग यही है कि आप अपनी ओर से उस व्यक्ति या व्यक्तियों को स्वतन्त्र करदें जिन्हें आपने बाँध रक्खा है। स्नेह और संरक्षण के नाम पर आप अपने आश्रित या प्रियजन पर जो बन्धन लगते हैं वह उलट कर परोक्ष रूप में कई गुना होकर आपको भी बाँधता है। स्नेह और संरक्षण से आगे शुभैषिता, श्रद्धा और प्रशंसा के बन्धनों में भी आप दूसरो को बाँधते हैं। ये भी बन्धन हैं क्योंकि आपको संकुचित स्वार्थ-कामनाएँ इनके स्वच्छन्द प्रवाह को किन्हीं सँकरी धाराओं में बाँधती रहती हैं। संकुचित स्वार्थ में बहुत थोड़ा, और वह भी विकृत रस होता है। जहाँ संकुचित स्वार्थ होता है वहाँ वास्तविक मिलन नहीं हो सकता। सच्चा मिलन सरक्षण, नेतृत्व या श्रद्धा के धरातल पर नहीं, समानता और सहज सत्कार के धरातल पर ही हो सकता है। सहज सत्कार वह आदान-प्रदान है जिससे दूसरे को सुख मिले और आपकी भी गहरी सन्तुष्टि हो। ध्यान से देखें तो आप जीवन में अपनी स्वच्छ, आन्तरिक प्रेरणा से जो भी करना चाहते हैं वह किसी दूसरे के सत्कार से भिन्न और कुछ नहीं है। आप अपनी प्रेयसि का चुम्बन लेते हैं। आप जानते और अनुभव करते हैं कि आपने उसमें एक मंदिर स्पन्दन जगा दिया है, उसकी एक गहरी ललक पूरी कर उसे तृप्त कर दिया है। यदि ऐसी अनुभूति आपकी नहीं है, आपने उसे कोई गहरी तृप्ति नहीं दी है, तो आपका वह चुम्बन एक अति नीरस, पाशविक आक्रमण और स्वाद की दृष्टि से धूल है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि आपकी वास्तविक तृप्ति दूसरे के सत्कार में ही निहित है।

"आप अब समानता और सत्कार के धरातल पर मेरे या किसी दूसरे के समीप आना चाहते हैं जिससे परम रोचक और परमोपयोगी की खोज कर सकें। पहला पग आपने यह उठाया है कि आपने उसे अपनी ओर से स्वतन्त्र कर दिया है। उस सुन्दरी युवती की कहानी आप सभी जानते हैं जिसने अपने हाथ में कैद किये हुए कबूतर को स्वतन्त्र

करते ही एक सम्पन्न युवक की हार्दिक गहराइयों में प्रवेश पा लिया था। लेकिन आपने कबूतर से बहुत बड़ी वस्तु, अपने समकक्ष स्वजन को स्वतन्त्र कर दिया है। आपकी उससे अब कोई माँग नहीं है, उसके लिए कोई निर्देश नहीं है। अब आपका दूसरा क़दम क्या हो सकता है?"

"हमें देखना चाहिए कि हम उसका क्या सत्कार कर सकते हैं।" चौथे आसन की कुमारीजी ने कहा।

"ठीक है। लेकिन सत्कार की प्रेरणा और उसका समुचित क्षेत्र हमें सहज ही नहीं मिल जायँगे। ये हमें तभी मिलेंगे जब हम यथासम्भव अपने स्वजन की अधिक से अधिक आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को जान लेंगे। उन इच्छाओं-आवश्यकताओं में से ही हमें उनका चुनाव करना होगा जिनकी पूर्ति हम कर सकते हैं और करने में स्वयं भी गहरा सुख पा सकते हैं। इस प्रकार हमारा दूसरा पग यह हुआ कि हम एक-दूसरे की इच्छाओं और आवश्यकताओं का अधिक से अधिक पता लगाएँ और फिर देखें कि उनमें से कौन हमारे लिए भी विशेष रोचक हैं। अगली गोष्ठी में हम इस पर विचार करेंगे।" ★

उन्नीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जैसा हमने पिछली गोष्ठी में देखा, हमारा दूसरा पग यह होना चाहिए कि हम दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं-आवश्यकताओं को अधिक से अधिक जानें और फिर यह देखें कि उनमें से किन-किन की पूर्ति करने में हमें गहरा सुख मिल सकता है। लेकिन दूसरे व्यक्ति की—वह भले ही आपका अति निकटवर्ती स्वजन हो, उसकी—इच्छाओं-आव-

श्यकताओं को गहराई तक जानना सुगम कार्य नहीं है। आप काग़ज़-पेंसिल लेकर उसके पास बैठ जायँ और आपकी प्रार्थना पर वह अपनी इच्छाओं-आवश्यकताओं की सूची आपको लिखा दे, यह असम्भव है। भय, संकोच और स्वयं की द्विविधा भी उसके ऐसा करने में किसी हद तक बाधक होंगे, लेकिन उसकी वास्तविक कठिनाई यह होगी कि उसे स्वयं अपनी आन्तरिक इच्छाओं-आवश्यकताओं की स्पष्ट जानकारी न होगी। आप में से कौन अपनी इच्छाएँ-आवश्यकताएँ मुझे गिना सकता है? अधिकतर यही होता है कि हम अपनी कुछ-एक इच्छाओं की पूर्ति के साधनों को ही अपनी इच्छाएँ मान लेते हैं। ये साधन भी हमारी कल्पना के अनुसार अनुमानित साधन ही होते हैं और व्यावहारिक उपयोग के लिए ग़लत भी हो सकते हैं। आप समझते हैं कि धनवान् होना, अपने शरीर को विशेष सुन्दर-आकर्षक बनाना, किसी विशेष विद्वत्ता या गुण का उपार्जन अथवा एक भव्य, विशाल भवन के स्वामी होना आपकी इच्छाएँ हैं। लेकिन क्या वास्तव में ये आपकी इच्छाएँ हैं? आप धनवान् इसलिए होना चाहते हैं कि धन द्वारा अपने कुछ सुखों की सृष्टि करना चाहते हैं; सुन्दर इसलिए होना चाहते हैं कि आप कुछ दूसरों के प्रशंसा-अनुरागपूर्ण सम्पर्क का रस लेना चाहते हैं; गुण या विद्वत्ता का उपार्जन इसीलिए करना चाहते हैं कि उनके उपयोग द्वारा अपना या समाज का कुछ हित-निर्माण करना चाहते हैं; भव्य विशाल भवन उसमें निमंत्रित कर अपने स्वजनों का सुख-सत्कार करने के लिए ही चाहते हैं। इस प्रकार धन, सुन्दरता, विद्वत्ता और सुन्दर भवन केवल वे साधन हैं जिनके द्वारा आप अपनी कुछ इच्छाओं की पूर्ति करना चाहते हैं। आपकी वे इच्छाएँ क्या हैं जिनकी पूर्ति आप इन साधनों के द्वारा करना चाहते हैं? आपकी वे इच्छाएँ आपके सामने कुछ स्पष्ट और बहुत कुछ अस्पष्ट ही रहती हैं। उनकी खोज आगे चलकर हमारे लिए अत्यन्त रोचक और एक अति मधुर रहस्य का उद्घाटन करने वाली हो सकती है।

"मेरी कोई आन्तरिक इच्छा है। इच्छा सदैव आन्तरिक ही होती है, इसलिए उसके साथ 'आन्तरिक' का विशेषण जोड़ने की भी आवश्यकता नहीं है। उस इच्छा की पूर्ति के लिए मुझे एक साधन सूझता है। अब वह साधन ही मेरी दृष्टि के सामने इतना महत्वपूर्ण बन जाता है कि मैं उसे ही अपनी इच्छा मानने लगता हूँ और मेरी मौलिक इच्छा उसके पीछे ढक जाती है। अधिकतर ऐसा होता है कि जो साधन हमें सूझा है वह अनावश्यक घुमाव-फिराव की राहों, बहुत विलम्ब से लक्ष्य तक पहुँचाने वाला और प्रायः लक्ष्य से भटका देने वाला ही होता है। हमारे चिन्तन की स्थिति अभी ऐसी ही है।

"हमने तय किया था कि हम अपने स्वजन की इच्छाओं और आवश्यकताओं को जानेंगे, लेकिन अब देखते हैं कि उसे स्वयं अपनी इच्छाओं का पता नहीं है। वह अपनी इच्छा-पूर्ति के कुछ अनुमानित साधनों को ही अपनी इच्छाएँ समझता है। अपने उन अनुमानित साधनों की सूची वह आपको दे सकता है। इन साधनों में भी कुछ ऐसे हो सकते हैं जिन्हें वह भय, संकोच या किसी द्विविधा के कारण आपके सामने प्रकट न करे। फिर भी इस प्रकार ऐसी वस्तुओं की एक सूची आपको उससे मिल सकती है जिनमें से कुछ की उपलब्धि कराने में आपको भी सुख मिले। तब क्या आप उसके वैसे अभीष्ट साधनों की पूर्ति करने की दिशा में ही आगे बढ़ेंगे ?

"आपको यह बराबर ध्यान रखना है कि आपके स्वजन की प्रस्तुत इच्छाएँ-आवश्यकताएँ उसकी वास्तविक इच्छाएँ-आवश्यकताएँ नहीं, उनकी पूर्ति के कुछ अनुमानित साधन ही हैं; और आपको उसकी विशुद्ध इच्छाओं-आवश्यकताओं का पता लगाना है। यह खोज जितनी कठिन है, प्रारम्भ कर देने पर उतनी ही रोचक भी है; क्योंकि उसकी आन्तरिक इच्छाएँ-आवश्यकताएँ ज्ञात होने पर वे आपकी इच्छाओं-आवश्यकताओं की सहज पूरक ही निकल सकती हैं—यह आत्मीयता

का एक अनुभव-सिद्ध सत्य है। इसलिए उसकी इच्छाओं-आवश्यकताओं को जानने के लिए आपको पहले एक क़दम पीछे लौटना होगा। अपने स्वजन की ओर से दृष्टि हटाकर आपको स्वयं अपने आपको देखना होगा। अपने को देखकर ही आप वह दृष्टि पा सकेंगे जिससे दूसरे को भी गहराई तक देखा जा सकता है। इच्छा ही मानव-जीवन की परम सार्थक, मधुरतम एवं पवित्रतम वस्तु है और अपने भीतर उसी की खोज हमें करनी है, क्योंकि वही परम रोचक और परम उपयोगी भी है।"

"यह बातचीत आज एक दूसरे रुख पर चल रही है।" दसवें आसन के सज्जन ने कहा, "अभी तक आप मिलन और दूसरों से सम्पर्क की दिशा में बढ़ते आये हैं पर आज उससे पीछे हट कर स्वयं की खोज की ओर अग्रसर हो रहे हैं। क्या यह दिशा का ही परिवर्तन नहीं है?"

"यह दिशा का परिवर्तन नहीं, उसी पथ का एक अनिवार्य मोड़ है। अपनी इच्छाओं को हम इसलिए देखना-जानना चाहते हैं कि अपने स्वजन की इच्छाओं को जान सकें। स्वयं को जानने की सार्थकता इसी में है कि हम दूसरों को जान लें। अद्वैत-चेता ब्रह्मवादियों की स्थिति कुछ भी हो, हमारे लौकिक-सामाजिक जीवन की सरस सार्थकता इसी में है कि हमारा दूसरों के साथ गहरा आदान-प्रदान हो। इस प्रकार हम अपनी पूर्व दिशा में ही आगे बढ़ना चाहते हैं।" वीरभद्र ने कहा।

"इच्छा को शास्त्रों और महापुरुषों ने समस्त दुखों का मूल और इसीलिए सर्वथा त्याज्य बताया है और आप उसे ही परम सार्थक और पवित्रतम कहते हैं। क्या आप उन सब का खंडन करना चाहते हैं?" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा।

"शास्त्रों और महापुरुषों के नहीं, हम अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से अपने जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं। और फिर यह अपना-अपना

अर्थान्तर है। जिसे मैं इच्छा कहता हूँ उसे, जहाँ तक मैंने समझा है, किसी भी शास्त्र या महापुरुष ने दुःख-मूलक या त्याज्य नहीं बताया।" वीरभद्र ने कहा।

"मुझे लगता है कि अपना या अपनी इच्छाओं के अध्ययन का यह नया विषय उतना रोचक नहीं होगा जितना पहले का सामाजिक सम्पर्क, विवाह, प्रेम आदि का विषय था। उस दिशा में ही बहुत बातें सोचने के लिए शेष रह गई हैं।" पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा।

"आटा गूँधने का काम आपको प्रिय लगा, क्योंकि उसमें एक सुगन्ध थी। अब रोटी सेंकने का कार्य आपको रुचिकर नहीं जान पड़ता। लेकिन इस प्रकरण में भी शीघ्र ही रोटी सिकने पर एक नई सुगन्ध आपको मिलेगी और वह कच्चे आटे की सुगन्ध से अधिक रुचिकर होगी। और वास्तविक स्वाद तो आपको तब मिलेगा जब हम मिलकर उस रोटी को खायेंगे। धैर्य रखिए, हमारी बातचीत की प्रगति रोचक से रोचकतर की ओर ही निरन्तर बढ़ेगी।" वीरभद्र ने कहा।

सभा विसर्जित हुई। ★

बीसवीं गोष्ठी

तीसरे आसन की प्रौढ़ा महिला ने कहा :

"हमें दूसरों की इच्छा और इच्छा पूर्ति के मार्ग में बाधक न होना चाहिए, यह बात अभी तक हमारे सामने अच्छी तरह स्पष्ट हो आई थी, लेकिन आपकी अन्तिम बात ने उसमें एक बड़ी उलझन डाल दी है। आपकी पिछली बात के अनुसार अपने स्वजन को स्वतन्त्र करने के पहले हमें यह देखना होगा कि जो कुछ वह चाहता है, वह वास्तव में

उसकी इच्छा है, या इच्छापूर्ति का केवल एक अनुमानित साधन ही है, जोकि ग़लत भी हो सकता है। इस नई शर्त के अनुसार तो आप अपने स्वजन को बराबर बन्धन में रख सकते हैं, यह कह कर कि तुम्हारी अमुक चाह तुम्हारी वास्तविक चाह नहीं, चाह की पूर्ति का एक अनुमानित साधन-मात्र है और उस साधन को प्राप्त करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि वह तुम्हारी आन्तरिक इच्छा की पूर्ति तक ले जाने वाला है भी या नहीं। कौन-सी हमारी वास्तविक इच्छा है और कौन-सा केवल अनुमानित साधन, इसकी पहचान असम्भव नहीं तो कठिन और देर-साध्य अवश्य है। निषेध-नियंत्रण और संयम के सभी विधान क्या आपकी इस नई शर्त में उचित स्थान न पा जायँगे?"

"ऐसा नहीं है" वीरभद्र ने कहा, "सबसे पहली बात यह कि स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता है और वह हर हालत में बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिए। आपका स्वजन जिस वस्तु को चाहता है उसमें आपको कोई रुकावट नहीं डालनी है, भले ही वह उसकी आन्तरिक इच्छा की वस्तु हो या इच्छित वस्तु का केवल एक अनुमानित और ग़लत साधन हो। मेरी नई, इच्छाओं की खोज वाली, बात उस पूर्व-सम्मत स्वतन्त्रता में कोई रोक नहीं लगाती। आपके बच्चे को किसी ने ताज़ा गुलाब का फूल दिया। उसने उसे अपने कोट की जेब में रक्खा और रात भर में वह कोट खुशबू से महक उठा। बच्चे को कोट में बसी वह खुशबू बहुत पसंद आई। अगली सुबह किसी दूसरे बच्चे ने वह फूल ले लिया। आपके बच्चे की प्रबल इच्छा है कि वैसा फूल उसे मिलना ही चाहिए। आप बच्चे को लेकर बाज़ार जाते हैं कि एक ताजा गुलाब का फूल उसे खरीद दें। राह में कागज़ के फूलों की एक दूकान पड़ती है, और बालक उसमें से एक फूल खरीदने के लिए मचल जाता है। इस कागज के फूल का आकार बड़ा और रंग अधिक चटकीला है। आप बच्चे को बताते हैं कि यह नकली फूल है और इसमें खुशबू नहीं है। लेकिन बच्चा इसी को लेने की जिद पर है। अब जिस स्वतन्त्रता

की बात मैं कहता आया हूँ उसके अनुसार आपको चाहिए कि वह कागज़ का फूल ही उसे खरीद दें। यह फूल उसकी इच्छा की पूर्ति का एक अनुमानित और गलत साधन है, फिर भी इसकी प्राप्ति से उसे एक सन्तोष मिलेगा। और जब उस संतोष की विफलता को वह अगली सुबह तक देख लेगा तब वह कुछ अधिक बुद्धिमान हो जायगा। कागज के फूल की माँग उसका एक सही, या ग़लत, प्रयत्न है अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए। प्रयत्न के अन्त में आई हुई असफलता मनुष्य को नया मार्ग दिखाती है, प्रयत्न के आरम्भ में आया हुआ अवरोध उसे निर्जीव कर देता है। इच्छाओं की खोज की बात मैंने एक नये प्रकरण में नये उद्देश्य से कही है और उसका कतई यह अभिप्राय नहीं है कि आप अपने स्वजन की किसी भी माँग में बाधक हों।"

"मेरी पत्नी सोने का एक नया हार चाहती है।" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा, "मैं जानता हूँ कि हार वह केवल इसलिए चाहती है कि अपनी पड़ोसिनों की दृष्टि में वह अधिक आदर पाने लगे। ऐसी स्थिति में मुझे हार बनवाने की चिन्ता करनी चाहिए या उसका आदर-मान बढ़वाने की ? मैं यह भी जानता हूँ कि आदर-मान बढ़वाने के और भी साधन हैं जो सोने के हार की अपेक्षा अधिक कारगर हो सकते हैं।"

"अच्छा हो आप दोनों ही काम करें। हार बनवाने की भी व्यवस्था करें और दूसरे साधनों से—पत्नी द्वारा पड़ोसिनों के दावत-सत्कार के लिए कुछ रुपये खर्च करके या अपने किन्हीं अन्य मित्रों द्वारा उसके किन्हीं गुणों की प्रशंसा करा कर—उसे सम्मानित करने का प्रबन्ध करें। आपने बताया था कि वह वाणी से भिन्न होते हुए भी रूप से सुन्दर है। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करने वाले अनेक मित्र आपकी दावत स्वीकार कर आपके घर जाना पसंद करेंगे। यदि हार बनने से पहले ही उसे यथेष्ट आदर का संतोष मिल जाय तो आप

उसकी गहरी इच्छा की पूर्ति में सस्ते दामों सफल हो जायँगे; और यदि हार ही पहले बन गया तो उसे अपनी एक अभीष्ट वस्तु के लाभ का कुछ समय के लिए संतोष हो ही जायगा और उसकी इच्छा कुचल कर घायल न होने पायेगी।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"दूसरी शंका का उत्तर यह है कि आन्तरिक इच्छा और इच्छा-पूर्ति के अनुमानित साधन की पहचान न असम्भव है और न कठिन या देर-साध्य ही। इसकी एक मोटी पहचान यह है कि जो कुछ आप करना चाहते हैं वह आपकी आन्तरिक इच्छा है और जो कुछ आप पाना चाहते हैं वह आपकी इच्छा-पूर्ति का एक अनुमानित साधन-मात्र है, जो अव्यावहारिक और निष्फल भी हो सकता है। आप मिठाई खाना चाहते हैं, यह एक आन्तरिक इच्छा है। मिठाई खाने के लिए आप चाहते हैं कि आपकी जेब में एक रुपया आ जाय। यह रुपये की चाह इच्छा नहीं, इच्छा-पूर्ति का एक अनुमानित साधन है जो अनावश्यक या ग़लत भी हो सकता है। मिठाई खाने का कोई अधिक सीधा, कारगर और शीघ्र सुलभ मार्ग भी हो सकता है। आप किसी नई देखी हुई सुन्दर स्त्री को प्यार करना चाहते हैं—

"उसे चूमना चाहते हैं, हृदय से लगाना चाहते हैं" बीच में ही पांचवें आसन के पत्रकार बन्धु ने प्रश्न के रूप में योग दिया।

"बिलकुल ठीक! उसे चूमना या उसका आलिंगन करना या और भी जो कुछ चाहते हैं वे सभी आपकी विशुद्ध इच्छाएँ हैं, यद्यपि अपरि-चय की दशा में ज़रा अस्वाभाविक हैं और तभी सम्भव हैं जब कि आपकी पत्नी या किसी प्रेयसि ने पिछली रात अपने पदांगुष्ठ के संकेत द्वारा आपको कमरे के द्वार का मार्ग दिखा दिया हो और आप किसी उत्तेजित अवस्था में ही घर से बाहर निकले हों। मैं कह रहा था कि देखी हुई किसी सुन्दर स्त्री को प्यार करने की चाह आपकी आन्तरिक इच्छा है लेकिन इसके उपाय-स्वरूप उसे अपने धन, प्रभाव, बल या विवाह द्वारा अधिकार में करने की कामना उस इच्छा-पूर्ति के कुछ

अनुमानित साधन मात्र हैं, जो अधिकतर ग़लत ही हो सकते हैं। किसी वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति नहीं, उसके साथ कुछ व्यापार, कुछ करने की चाह ही हमारी वास्तविक इच्छा हो सकती है। आपको आपकी मनोनीत परम सुन्दरी पत्नी दे दी जाय और कह दिया जाय कि आप उसके साथ किसी प्रकार का भी आदान-प्रदान नहीं करेंगे, तो क्या उस पत्नी की प्राप्ति से आपकी आन्तरिक इच्छा की पूर्ति हो जायगी? स्पष्टतया इच्छा और इच्छा के साधन को परखने की कसौटी यही है कि जो आप करना चाहते हैं वह आपकी इच्छा है और जिसे— व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति को—पाना चाहते हैं वह केवल साधन या इच्छापूर्ति का अनुमानित आधार है।

"हमें पारस्परिक मिलन की दृष्टि से ही अपने स्वजनों की इच्छाओं का और उसी की जानकारी के लिए स्वयं अपने भीतर इच्छा नाम की व्यापक मानवीय प्रवृत्ति का अध्ययन करना है। अगली गोष्ठी में हम इस खोज में आगे बढ़ेंगे।" ★

इक्कीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"वर्ष भर के लिए प्रारम्भ की हुई इन गोष्ठियों में हमें केवल दो पग उठाने हैं। पहला यह कि हमें अपने स्वजनों को अपनी सभी माँगों और बन्धनों से मुक्त करना है और दूसरा यह कि हमें उनकी इच्छाओं-आवश्यकताओं को समझना है। इन दो के अतिरिक्त कोई तीसरा पग चलने का अनुरोध मैं आपसे नहीं करूँगा, क्योंकि इन दोनों पगों के भीतर ही हमारे पारस्परिक जीवन की परम रोचक और उपयोगी वस्तु हमें मिल जायगी। अब किसी दूसरे व्यक्ति के साथ आपके मिलन में, या अपने अब तक के निकाले निष्कर्ष की भाषा में कह लीजिए कि

अपने स्वजन की इच्छाओं तक पहुँचने के मार्ग में, ज्ञात और अज्ञात दो प्रकार की रुकावटें आप दोनों के बीच आती हैं। ज्ञात रुकावटों को आप प्रायः भय और संकोच के कारण दूर नहीं कर पाते और अज्ञात रुकावटों को जानने और दूर करने का विचार ही आपके मन में नहीं आता। आपके घर के सामने एक वृक्ष के नीचे कोई परदेशी आकर ठहरता है। वह अपनी गठरी खोलता है और आप देखते हैं कि उसके पास मिठाइयों से भरी एक टोकरी है। वह अकेला उस सब मिठाई को नहीं खा सकता। आप सोचते हैं कि उसमें से कुछ मिठाई आपको मिले तो वह आपके लिए एक प्रिय भेंट होगी। लेकिन आप उसके सामने ऐसा प्रस्ताव नहीं रख पाते। आप सोचते हैं कि ऐसा करने से आप उसकी दृष्टि में गिर जायंगे या वह इनकार कर देगा। उससे सम्पर्क स्थापित करने की राह में यह एक ज्ञात रुकावट आपके सामने है। आप नहीं जानते कि इन मिठाइयों के अतिरिक्त उसके गाँव-घर में और कौन-कौन-सी ऐसी वस्तुएँ हैं जो आपको प्रिय, और सम्भवतः इन मिठाइयों से भी अधिक प्रिय हो सकती हैं; और आपको यह भी ध्यान नहीं आता कि उस व्यक्ति को अपने घर के भीतर निमंत्रित कर आप विश्राम आदि की अधिक सुविधाएँ दे सकते हैं और प्रत्युपहार स्वरूप इन मिठाइयों तथा उसकी कुछ अन्य वस्तुओं में भी सम्मानपूर्ण भाग उसकी ओर से पा सकते हैं। ये आपकी अज्ञात रुकावटें हैं। ज्ञात रुकावटों का कारण दूसरे पर या स्वयं पर लगाये हमारे प्रतिबन्ध हैं और अज्ञात रुकावटों का कारण हमारी इच्छा, खोज तथा जिज्ञासा की प्रवृत्तियों की दुर्बलता है। दूसरे व्यक्ति से मिलने के लिए हमें इन दोनों स्तरों की रुकावटों को दूर करना है। इनमें से किन्हें आप पहले दूर करना चाहेंगे ?"

"स्पष्ट है, ज्ञात रुकावटों को। भय और संकोच से उत्पन्न जो रुकावटें हमारे सामने प्रकट हैं उन्हें ही हम पहले दूर करेंगे।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"लेकिन ज्ञात रुकावटों को पारस्परिक लाभ के किसी समझौते पर यदि आप दूर कर लेंगे तो उससे आगे आपकी प्रगति नहीं होगी। ज्ञात रुकावटों की नर्म मिट्टी को आप भले ही खोदकर अलग डाल देंगे, लेकिन अज्ञात की चट्टान तोड़ने का मार्ग आपको नहीं मिलेगा और उसे देखकर शायद आप उसकी कठोरता से आतंकित होकर अपने हाथ की कुदाल सदा के लिए अलग रख देंगे। इसलिए अधिक ठीक यही है कि आप ज्ञात रुकावटों की मिट्टी को किसी हद तक ढका ही छोड़कर अज्ञात रुकावटों की चट्टान को समझने और तोड़ने का उपक्रम करें। मेरा अभिप्राय यह है कि दूसरे व्यक्ति के साथ कुछ-एक दीखने वाले और इच्छित आदान-प्रदान यदि आप भय या संकोच-वश नहीं करते हैं तो उन्हें वहीं छोड़कर आप उस मोटी मजबूत दीवार को भेदने का प्रयत्न करें जो उसके-आपके बीच अदृश्य बन कर खड़ी है। उस दीवार को भेद लेने पर आप उसकी आन्तरिक इच्छाओं तक पहुँच जायँगे—और इच्छाएँ ही मनुष्य की बहुमूल्य सम्पत्तियां हैं। जब आप उसकी आन्तरिक इच्छाओं तक पहुँच जायेंगे तो बाहर देखी हुई वस्तुओं के आदान-प्रदान का उतना महत्व न रहेगा और उसके लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता न रहेगी, क्योंकि वह स्वयं ही हो जायगा। लम्बा पग लेने पर छोटे पग की दूरी उसमें स्वयं ही आ जायगी।

"आप दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं को जानना चाहते हैं। वह आपके सामने एक दुर्भेद्य, फिर भी बहुत कुछ अदृश्य दीवार खड़ी कर देता है और आप उसके भीतर नहीं जा पाते। इस दीवार को आप कैसे देख और तोड़ सकते हैं? वास्तव में उसे देखने और तोड़ने का कोई आगे जाने वाला मार्ग नहीं है। आप एक पग पीछे लौटिए। देखिए, जब कोई व्यक्ति आपके समीप आना चाहता है तो आप भी उसकी राह में अपने सामने एक वैसी ही दीवार खड़ी कर देते हैं। आपके मार्ग में दूसरों द्वारा खड़ी की हुई दीवार को नहीं, लेकिन दूसरों के मार्ग में

आपके द्वारा खड़ी की हुई अपनी दीवार को आप अवश्य देख और तोड़ सकते हैं। मानव-मानव के बीच खड़ी होने वाली ये दीवारें एक ही तत्व की बनी हुई बिलकुल एक-सी हैं। दूसरा व्यक्ति आपको अपने हृदय के भीतर तक क्यों और कैसे नहीं आने देता इसे जानने के लिए आपको केवल यही जानना होगा कि आप दूसरे व्यक्ति को क्यों और कैसे अपने हृदय तक नहीं आने देते। मानव-हृदय की परम सुन्दर समृद्धियों को अपनी वज्रकाया की ओट छिपाए रखने वाले रहस्य को खोलने की यही एक कुञ्जी है, जिसके कुछ प्रयोग मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। इस रहस्य का उद्घाटन आपकी अब तक की कल्पित और कल्पनातीत मधुर से मधुर कामनाओं की पूर्ति से भी अधिक सरस एवं तृप्तिकर होगा। आइए, आगे बढ़ें।

"मैं, आपके नगर में बाहर से आया हुआ एक चित्र-व्यवसायी, आपके समीप आना चाहता हूँ। यह बात मैं व्याख्या या दृष्टांत के लिए ही नहीं, अपने हृदय के भीतर की, और हृदय के भीतर से आपके सामने कह रहा हूँ। आपने अपने द्वार के बाहर मेरे मार्ग में एक मोटी, दुर्भेद्य दीवार खड़ी करदी है। किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए यह मेरी कल्पना नहीं, एक सदेह सत्य है। आप मुझे अपने समीप, अपने भीतर नहीं आने देना चाहते। आप किसी को अपने भीतर नहीं आने देना चाहते। मेरे और अपने बीच आपने वह दीवार खड़ी करली है। आप स्वयं उस दीवार को नहीं देख पाते लेकिन मैं देखता हूँ। कुछ समय पहले तक मैं भी वैसी ही दीवार दूसरों को रोकने के लिए अपने आगे खड़ी कर लेता था। लेकिन पिछले दिनों मैंने उसे देखा, पहचाना, समझा। मेरी वह दीवार टूट गई और उसके नये उठने का प्रश्न नहीं रह गया। अपनी दीवार मैं तोड़ पाया हूँ। इसीलिए आपकी दीवार को भी देख सकता हूँ। मैं उसे देख रहा हूँ। वह ठीक वैसी ही है, जैसी मेरी थी। अभी स्थिति यह है कि आप मुझे भीतर नहीं आने देना चाहते। मेरे लिए आपके मन में

कोई रुचि, कोई जिज्ञासा, कोई श्रद्धा-स्नेह-सम्मान, रत्तीभर भी ईमानदारी की सहृदयता नहीं है। मैं यह सब देख रहा हूं। फिर भी आप यहाँ आते हैं। इसलिए नहीं कि मुझमें आपकी दिलचस्पी है, बल्कि इसलिए कि मैंने कुछ ऐसी बातें कही हैं जो आपको अपनी कुछ-एक ऊपरी कामनाओं की पूर्ति के लिए अनुकूल और रोचक लगी हैं—सेक्स की, सामाजिक स्वतन्त्रता की और दूसरों से गहरा रस पाने की बातें। उन बातों में और उनसे निकल सकने वाले परिणामों में आपकी दिलचस्पी है, मुझमें नहीं। लेकिन वे बातें और वैसे विचार कुछ भी नहीं है। वे मीठे फल नहीं, उनके ऊपर के छिलके मात्र हैं। मेरे-आपके बीच वास्तविक स्थिति अभी यही है। आपके हृदय में मेरे लिए कुछ नहीं है, लेकिन मेरे मन में आपके लिए कुछ है।"

कुछ क्षणों के लिए वीरभद्र रुका। सभा में निस्तब्धता थी। वह फिर बोला :

"आज मैंने कुछ ऐसी बातें आपसे कह दी हैं जिनके लिए अगली गोष्ठी में मैं आपसे क्षमा मागूँगा और आवश्यकता हुई तो आपको चाय भी पिलाऊँगा। अब अगले वृहस्पतिवार को हम मिलेंगे।"

वीरभद्र की वाणी में इस समय एक नई सम्वेदनामयी गम्भीरता थी, आँखों में एक नई भावना की तरलता थी, मुखमुद्रा में एक नया करुणार्द्र-सा ओज था। उसकी मुखाकृति में इस समय एक स्पष्ट परिवर्तन दीख रहा था। सदैव से विपरीत, आज सभा-विसर्जन के समय उसकी आँखें उपस्थित जनों से फिरी हुई शून्य की ओर थीं।

एक गम्भीर तरलता और मानो आघात द्वारा मुक्त की हुई सहृदयता के वातावरण में सभा विसर्जित हुई। ★

बाईसवीं गोष्ठी

"वीरभद्र जी," तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने आज की गोष्ठी का उद्घाटन किया, "पिछले दिन की आपकी बातों पर हमें पहले आपकी सफाई लेनी है। आप कहते हैं कि हमारे मन में आपके लिए कोई श्रद्धा-सम्मान और प्रेम नहीं है। आपके प्रति हमारे मन में तनिक भी रुचि, रत्तीभर भी ईमानदारी की सहृदयता नहीं है। आपने हमारे हृदय को अच्छी तरह देख लिया है और हम ऐसे हैं कि हमारे भीतर मानवीय अनुराग जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। यह सब आप अपनी किस अन्तर्यामिता के आधार पर कहते हैं? आप कैसे कहते हैं कि आप के मन में हमारे लिए कुछ है लेकिन हमारे मन में आपके लिए कुछ नहीं है?" कहते-कहते वक्ता के स्वर में एक प्रकम्पित आवेश, एक आन्तरिक उपालम्भ, एक मौलिक रोष फूट पड़ा था। उसकी आँखों की तरलता घनी होकर सचमुच ऊपर छलक आई थी। उपालम्भ और रोष ही नहीं, और भी कुछ उन आँखों के पीछे था। पिछली गोष्ठी का समाप्तिकालीन वातावरण एकदम फिर उपस्थित हो गया था।

"मेरा मतलब" वीरभद्र का स्निग्ध और सन्तुलित स्वर मुखरित हुआ, "मेरा मतलब यह नहीं था कि आपमें श्रद्धा-स्नेह या सच्ची सहृदयता का अभाव है या इनकी क्षमता आपमें नहीं है। मेरा अभिप्राय केवल यही था कि इनकी क्षमताएँ रखनेवाली आपकी आन्तरिक चेतना सोई हुई है। यह बात आपके लिए ही नहीं, सर्वसाधारण के लिए मैं कहता हूँ। मैं उस चेतना को जगाने पर ही बल देना चाहता हूँ।"

"तब आपका अर्थ यही रहा कि अभी हमारे मन में कुछ नहीं है और जो कुछ हमें प्रतीत होता है वह कृत्रिम एवं दिखावटी है —उसका आपके निकट कोई मूल्य नहीं है।" पूर्ववक्ता ने कहा।

"नहीं, जो कुछ आपको प्रतीत होता है वह कृत्रिम या दिखावटी नहीं, बल्कि कुछ ऐसे आवरणों में लिपटा हुआ है जो आप के हृदय-तत्व से भिन्न वस्तु के बने हुए हैं। मूल्य उनका भी मेरे निकट है। किन्तु जिस गहराई पर, जिस निरावरण स्थिति में पहुँचकर हम मिलना चाहते हैं उसकी दृष्टि से आपकी प्रस्तुत भावना बहुत हलकी और फीकी है। मैं आपसे आत्मीयता के और भी गहरे, और भी सरस स्तर पर मिलना चाहता हूँ तो क्या यह आपको प्रिय नहीं है? इसमें आपको मेरी ओर से कोई अनादर दीखता है?" वीरभद्र ने कहा।

कुछ क्षण के लिए सभा में निस्तब्धता छा गई। आरोपकर्त्री का सम्भवतः यथेष्ट समाधान हो गया था। दूसरे आसन की महिला ने उस निस्तब्धता को तोड़ा :

"आप कहते हैं कि सेक्स, स्वतन्त्रता और प्रेम के सम्बन्ध में प्रकट किये हुए आपके विचारों में हमारी दिलचस्पी है लेकिन आपमें नहीं है। जिसके विचारों में हमारी दिलचस्पी हो उसके व्यक्तित्व के प्रति कोई आकर्षण न हो, यह बात मेरी समझ में बिलकुल नहीं आती।"

"आपका आक्षेप ठीक है, लेकिन उस सम्बन्ध में मेरा कहना केवल यह है कि किसी के रोचक विचारों के प्रति आकृष्ट होकर हम उन विचारों को ही प्रायः इतना महत्व दे बैठते हैं और उनमें ही इतने अटक जाते हैं कि उस व्यक्ति की ओर से उदासीन हो जाते हैं और उन विचारों के आगे जो वस्तु उसके पास है उससे वंचित रह जाते हैं। प्रगति के इस अवरोध से हमें सावधान रहना चाहिए। यह मैं किन्हीं विशिष्ट दीखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में नहीं, प्रत्येक आकर्षक और अनाकर्षक व्यक्ति के लिए कहता हूँ कि वह अपने अन्तम रूप में संसार के महान् से महान् और रोचक से रोचक विचार की तुलना में कहीं अधिक सरस और मांगलिक है।" वीरभद्र ने कहा।

"लेकिन यह जो आपने कहा कि पिछली गोष्ठियों में आपने जो विचार प्रस्तुत किये हैं—सामाजिक सम्पर्क, सेक्स, प्रेम, स्वतन्त्रता आदि के सम्बन्ध में—वे विचार कुछ भी नहीं हैं; फल नहीं, फल के छिलके मात्र हैं, इसका हम क्या अर्थ लगाएँ? क्या हम समझें कि इन विचारों का व्यावहारिक जीवन में कोई औचित्य या महत्व नहीं है, या इनके निष्कर्ष संदिग्ध हैं, या केवल इन गोष्ठियों की रोचकता बढ़ाने और हमारी उत्सुकता को जगाने के लिए ही आपने ऐसी बातें कहीं हैं?" पांचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने पूछा।

"जो चर्चाएँ हमने अब तक इन गोष्ठियों में की हैं वे सभी महत्वपूर्ण हैं और इसी अभिप्राय से की गईं कि हम उन्हें व्यावहारिक जीवन में उतारने की दृष्टि से उन पर मनन करें। जिस स्तर पर हमारी व्यावहारिक चेतना काम करती है उसके लिए वे विचार मेरी दृष्टि में सामयिक, आवश्यक और इसलिए रोचक भी हैं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं उनके निष्कर्षों में सन्देह का कोई स्थान नहीं देखता। लेकिन जब कोई फल आपके हाथ में आता है और जब तक आपके मुख तक नहीं पहुँचता तब तक आपके पास उसका छिलका ही होता है। हाथ फल के छिलके का ही स्पर्श करते हैं, उसके भीतर नहीं पहुँचते। छिलके के भीतर का भाग आपकी जिह्वा ही ग्रहण करती है। इस दृष्टि से उन विचारों को छिलका कह कर मैंने क्या गलती की है? निस्सन्देह उन विचारों के भीतर सरस फल भी है लेकिन वह तभी आपको प्राप्त माना जायगा जब आप उन्हें व्यवहार में लाएंगे।" वीरभद्र ने कहा।

"आप अपनी हर बात की सुन्दर व्याख्या कर सकते हैं" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा, "इसलिए आपको अपनी पिछले दिन की आशंका से अनुसार आज यहाँ किसी से क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी और चाय पिलाने की भी आवश्—"

"देखिए," वीरभद्र ने बीच में ही बात काटकर कहा, "क्षमा की याचना मैंने एक तरह से पिछले ही दिन आपसे करली थी और आज फिर करूँगा—कर रहा हूँ। आप लोगों में से कुछ की कोमल भावनाओं को मेरी उन बातों से ठेस लगी है और इसके लिए मैं अपने को निर्दोष नहीं मानता। रही बात चाय पिलाने की, तो वह आवश्यकता की शर्त पर थी। यदि आप चाय पीकर ही मुझे क्षमा दे सकते हैं, या वैसे ही चाय पीने की इस समय आपकी इच्छा है तो उसकी अभी व्यवस्था हो सकती है। गोष्ठी के समय के ही चार मिनट अभी बाकी हैं, उसके अतिरिक्त छह मिनट आपके और लग जायंगे।"

"चाय की हम लोगों को तनिक भी आवश्यकता नहीं है" पूर्व वक्ता ने कहा, "और न यह मौसम ही उसके अनुकूल है। यहाँ उपस्थित अपने सभी स्वजनों से मुझे इस समय अपने मन की एक बात कहनी है। मुझे कहना यह है कि पिछले दिन वीरभद्र जी ने हार्दिकता की जिस गहराई पर उतरकर वे बातें कही थीं वहाँ से वे बिलकुल ठीक थीं—यह मेरा ही नहीं, हम सभी का थोड़ा-बहुत अनुभव होगा। उन्होंने उस दिन कुछ नई, फिर भी उघरे रूप में ऐसी बातें कही हैं जो आज तक हमारे किसी भी मित्र या हितैषी ने हमारे सामने नहीं कहीं। हमारे व्यावहारिक जीवन में सचमुच ईमानदारी की सहृदयता का, विशुद्ध स्नेह, श्रद्धा और आत्मीयता का अभाव है। अपने भीतर के भीतर हम सभी किसी हद तक इस अभाव का अनुभव करते हैं, अपनी आडम्बरपरता को पहचानते हैं फिर भी उसका कोई उपाय नहीं करना चाहते। वीरभद्रजी ने पिछले दिन सचमुच हमारी ओर एक असाधारण पग उठाया है। हम स्नेह-रहित, अश्रद्धालु, स्वार्थी और कपटी हैं, यह एक कठोर सत्य है जो वीरभद्र जी ने इतने स्पष्ट, फिर भी मधुर शब्दों में हमारे सामने रक्खा है और वह हमें प्रिय लगा है। मुझे लगता है कि हृदय की गहराइयों में उनकी पहुँच है

और अपने सहज, अकारण स्नेह के आसन में ही उन्होंने ऐसी बातें हमसे कही हैं। उन्होंने हमारे हृदय को छुआ है और हिला दिया है। यह हमारा सौभाग्य है कि उनका इतना सत्कार हमें प्राप्त हुआ है। हमारी कमियाँ, कसरें और उस दीवार की बात, जिसे अपने सामने खड़ा कर हम किसी को अपने हृदय तक नहीं आने देते—ये सब बातें वे हमें बताएँ। हम ध्यान से उन्हें सुनें और समझेंगे। हमें आशा होती है कि इस मार्ग से हम पारस्परिक सम्पर्क के परम रोचक और परम उपयोगी तक अवश्य ही पहुँचेंगे। मेरा विश्वास है कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वे मेरे ही नहीं, यहाँ उपस्थित सभी के इस समय के हार्दिक भाव हैं।"

निस्संदेह, ये उनके भी मन की बातें थीं, दूसरे आसन की महिला और पांचवें आसन के पत्रकार बन्धु ने प्रकट किया। सभी की आँखों में ऐसी सहमति की सूचना थी।

"आपका यह निमन्त्रण मेरे लिए बहुत ही आशाजनक और प्रोत्साहनपूर्ण है। अगली गोष्ठियों में हम इन्हीं दिशाओं में आगे चलेंगे।" वीरभद्र ने नमस्कारपूर्वक कहा और सभा विसर्जित हुई। ★

तेईसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जब कोई व्यक्ति आपके समीप आता है तो आप अपने द्वार पर उसे रोकने के लिए एक दुर्भेद्य दीवार खड़ी कर देते हैं। आपको देखना है कि यह दीवार क्या होती है और आप इसे कैसे बनाते हैं। क्या यह दर्शन आपको रुचिकर होगा और आप इसकी प्रक्रिया में उतरना चाहेंगे ?"

"निस्संदेह हम इसे समझने के लिए उत्सुक हैं" आठवें आसन के वकील साहब ने कहा।

"यदि आप इसे सचमुच समझना चाहते हैं तो आपको अपनी ओर कुछ सख्ती के कदम उठाने पड़ेंगे—बिना रू-रिआयत कुछ बातों की ठीक नाप-जोख करनी होगी। हमारी एक बहुत हानिकर प्रवृत्ति यह है कि हम अपनी शिथिलताओं को अपनी प्रगति के मार्ग में बाधक जानते हुए भी उन्हें कसना नहीं चाहते। अभीष्ट लक्ष्य का सुख त्यागना हमें अपने घोड़े की रास कड़ी करने की अपेक्षा अधिक सुलभ लगता है।" वीरभद्र ने कहा।

"अपनी इस शिथिलता को हम आपके साथ पूरी ईमानदारी से देखने के लिए तैयार हैं।" पहले आसन के सज्जन ने कहा।

"तब हम आगे बढ़ेंगे। आप भीड़-भरी सड़क पर चले जा रहे हैं। कोई व्यक्ति पीछे से कुछ तेज़ी के डग भरता हुआ आपके पास आकर आपके कन्धे का स्पर्श करता है। आपकी पहली प्रतिक्रिया होती है: 'बड़ी भीड़ है; लोग सम्हल कर नहीं चलते, सिर पर ही चढ़े आते हैं।' कोई व्यक्ति आपका स्पर्श करता है तो आपकी पहली प्रतिक्रिया यही होती है। आप किसी व्यक्ति का अपने समीप आना पसंद नहीं करते क्योंकि इससे आपके जंजालों से बुने उस छोटे से संसार को धक्का लगता है जो आपने अपने चारों ओर लपेट रक्खा है।"

"हमने ऐसा अभी तक नहीं सोचा था। हम समझते हैं कि हमें दूसरों का स्पर्श प्रिय लगता है, यदि उसमें कुछ भी कोमलता हो। हम स्वयं दूसरों के पीछे जाकर उनका सम्पर्क पाना चाहते हैं। फिर भी आपकी बात ठीक हो सकती है। आप स्पष्ट कीजिए।" दसवें आसन के सज्जन ने कहा।

"आप वास्तव में दूसरे का स्पर्श या सम्पर्क नहीं चाहते। आप क्या चाहते हैं, यह स्पष्ट हो जायगा। आप मुड़कर उस व्यक्ति की ओर देखते हैं। यदि उसका स्पर्श कठोर नहीं है, उसके चेहरे पर एक

मुस्कान है और आपको यह भरोसा हो जाता है कि वह आपका कोई पूर्व-परिचित शत्रु या ऐसा व्यक्ति नहीं है जो आपका इसी समय कुछ अनिष्ट करने आया है तो आप उसकी ओर देखते हैं। प्रकट वाणी की भाषा में कुछ भी हो, मन की भाषा में आपकी-उसकी बातचीत कुछ इस प्रकार होती है: आप पूछते हैं, 'तुम्हारे पास मुझे देने के लिए कोई ऐसी वस्तु है जो मुझे पसंद आ सके?' वह कहता है, 'है! मैंने तुम्हारे पास कुछ ऐसी वस्तुएँ देखी हैं जिन्हें मैं तुमसे पाना चाहता हूँ। उन्हें पाने के लिए ही मैं तुम्हारे पास आया हूँ। बदले में मुझे भी तुम्हारी पसन्द की कुछ वस्तुएँ तुम्हें देनी पड़ेंगी। ऐसी कुछ वस्तुएँ मेरे पास भी निकलेंगी जिन्हें तुम लेना पसन्द करोगे।' इस पर आप पूछते हैं: 'मेरी वे कौन-सी वस्तुएँ हैं जो तुम मुझसे पाना चाहते हो?' वह आपकी कुछ वस्तुओं की ओर संकेत करता है या उनके नाम गिना देता है। आप फिर पूछते हैं: 'इनके बदले में देने के लिए तुम्हारे पास क्या है?' वह अपनी कुछ वस्तुएँ दिखाता या उनके नाम गिना देता है। अब आप ध्यानस्थ होकर मन ही मन हिसाब लगाते हैं। उसकी मांगी वस्तुओं में से कौन-कौन कितनी मात्रामें आप उसे सुविधा-पूर्वक दे सकते हैं और बदले में उसकी बताई हुई किन-किन वस्तुओं का आदान आपको किस रूप में प्रिय हो सकता है। बहुत कुछ जोड़-बाकी और गुणा-भाग की प्रक्रिया के बाद आप उसके साथ कुछ सौदा तय कर लेते हैं। और आप आपस में मित्र, सहकारी, पति-पत्नी या प्रेमी बन जाते हैं। अपने छोटे-से जंजालों से बुने संसार में आप उसे भी सम्मिलित कर लेते हैं। निस्संदेह आपका मित्रता या पति-पत्नी का वर्तमान् नाता इससे अधिक गहरा नहीं है। आपका यह सम्पर्क केवल उन ऊपरी वस्तुओं का आदान-प्रदान है जो आपने एक-दूसरे के पास उसके बाहरी बैठक के कमरे में देखी हैं। आपके कमरे की कुछ वस्तुओं से उसने अपना कमरा सजा लिया है। और बदले में उसके कमरे का कुछ वस्तुएँ आपने पसंद कर अपने कमरे में रखली हैं। उन

वस्तुओं के सहारे आपका-उसका नाता जुड़ गया है। लेकिन अब भी आपको अपनी वस्तुओं से मोह है। आप चाहते हैं कि आपकी दी हुई वस्तुएँ उसके कमरे में सुरक्षित-सम्मानित रूप में ही रहें; उनका आदर-पूर्वक ही आपकी रुचि के अनुसार उपयोग किया जाय। आप अक्सर उसके कमरे में जाते हैं और देखते हैं कि आपकी वस्तुओं का यथेष्ट आदर नहीं हो रहा। आपके मन को एक ठेस लगती है लेकिन वह भी विवश है। उसके मन में अब आपकी वस्तुओं की उतनी कदर नहीं रह गई है—वे फीकी पड़कर उतर चुकी हैं। बिलकुल यही बात उसकी ओर से भी है। उसे भी शिकायत है कि आप उसकी दी हुई वस्तुओं का यथेष्ट आदर नहीं कर रहे या उनका दुरुपयोग कर रहे हैं। आपके-उसके बीच एक आन्तरिक कटुता और फिर उदासीनता आ जाती है। आपके सम्बन्ध शिथिल हो जाते हैं। जीवन इसी तरह चलता है। या आप में से कोई एक, जो कुछ अधिक बुद्धिमान होता है, अपने भीतर से एक नई चीज निकाल कर दूसरे के सामने रखता है। यह उसे आकृष्ट करती है और दूसरा भी बदले में कोई नई चीज पहले को देता है। कुछ समय के लिए आपके सम्बन्धों में नया जीवन आ जाता है, लेकिन वह भी पूर्ववत् समाप्त हो जाता है। यह क्रम जीवन में कम या अधिक दिनों तक योंही चलता रहता है। आप दोनों के मन में कुछ आन्तरिक शंकाएँ एक-दूसरे के विरुद्ध जमती और बढ़ती रहती हैं। आप सोचते हैं कि आपका साथी आपकी वस्तुओं के बदले जैसी वस्तु आपको दे सकता है उससे कुछ घटिया वस्तु ही आपको देता है, वह छल करता है। और सबसे बड़ी अनिष्टकर आशंका आपके मन में जो आती है वह यह है कि उसके पास आपको देने के लिए कोई अच्छी वस्तु है ही नहीं। यह आपके-उसके सजीव सम्बन्धों को समाप्त कर देती है, भले ही आप जीवन भर एक ही पड़ोस में रहे आएँ। आप उसे अपने भीतर नहीं आने देना चाहते क्योंकि आपको भय है कि वह किसी ऐसी कीमती वस्तु को कौड़ियों के मोल लेने का आग्रह

कर सकता है, जिसका उचित मूल्य चुकाने योग्य उसके पास कुछ भी नहीं है। आप उसे अपने भीतर झांकने नहीं देना चाहते, और उसके भीतर भी कोई बड़ी चीज़ें हो सकती हैं, इसका आपको ध्यान ही नहीं आता। यही वह दीवार है जो आप अपने अन्तर्कक्ष के द्वार पर किसी को भी रोकने के लिए बराबर खड़ी किये रखते हैं—आप इसे जानें या न जानें। आप में से कोई भी दूसरे को अपने भीतर निमंत्रित नहीं करता और प्रायः कोई भी दूसरे के भीतर आने की आज्ञा नहीं मांगता। आपका आदान-प्रदान और सह-निवास कुछ क्षण चले या आयु-पर्यन्त, वह ऊपरी, अल्प-रस और संदेहों से भरा ही होता है। आप में से एक जब पास से या इस संसार से ही उठ जाता है तो दूसरा रोता है—अपने वियुक्त साथी के लिए नहीं, बल्कि अपनी उन वस्तुओं के लिए जो उसने उस साथी को दे रक्खी थीं। उन वस्तुओं का जैसा भी पोषण-संरक्षण वह करता था वह भी अब नहीं होगा और न वे वस्तुएँ लौटकर उसके पास ही आ सकेंगी। उसकी पीड़ा यही है। लेकिन दूसरा देखने वाला और ऊपरी तौर पर वह स्वयं भी यही समझता है कि वह अपने साथी के लिए व्याकुल है। हमारे निकट से निकट सम्पर्कों की स्थिति यही है। जीवन-निर्वाह की कुछ ऊपरी सुविधाओं, संरक्षणों और कुछ थोड़े से छिछले स्वादों का ही आदान-प्रदान हम अपने निकटतम साथी के साथ भी कर पाते हैं। गहरे सम्पर्क की अवरोधक जो दीवार आप दूसरों के लिए खड़ी करते हैं उसका कुछ रूपकात्मक चित्र प्रस्तुत करने का मैंने आज प्रयत्न किया है। यह दीवार दुर्भेद्य, असीम और बहुत कुछ अदृश्य है। इसे तोड़ने का क्या कोई मार्ग हो सकता है? हम अगली गोष्ठी में देखने का प्रयत्न करेंगे।"★

चौबीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जो भी व्यक्ति आपके द्वार पर आता है उसे रोकने के लिए आप किस प्रकार एक अदृश्य दुर्भेद्य दीवार खड़ी कर देते हैं, यह हम पिछली गोष्ठी में देख चुके हैं। हम यह दीवार निरन्तर एक-दूसरे के मार्ग में खड़ी करते रहते हैं। हमारा वास्तविक मिलन किसी से कभी भी नहीं हो पाता, भले ही हम अपना सारा जीवन उसके साथ पति-पत्नी, भाई-भाई या मित्र-मित्र बनकर एक साथ बितादें। तब क्या दूसरे व्यक्ति के साथ वास्तविक मिलन का कोई मार्ग ही नहीं है? मार्ग अवश्य है। अभी हम जिस कोण या रुख से दूसरे से मिलते है वह कोण ही गलत है। उस गलत कोण से भिन्न हमारे मिलने का दूसरा रुख क्या हो सकता है, इसी पर मैं आज आपके साथ कुछ विचार करना चाहता हूँ।

"मैं आपके समीप आना चाहता हूँ। आप भीड़-भरी सड़क पर चले जा रहे हैं। आपके पास आकर मैं आपके कन्धे का स्पर्श करता हूँ। जैसा पिछली बार हमने देखा था, आपकी पहली प्रतिक्रिया के अनुसार मेरा स्पर्श आपको अच्छा नहीं लगता। आप किसी के भी, और इसलिए मेरे भी, स्पर्श से बचे रहना चाहते हैं। किसी भी नये, अपरिचित स्पर्श से आपके स्वनिर्मित संसार में क्षोभ उत्पन्न करने वाला एक धक्का लगता है। फिर भी आप मुड़कर मेरी ओर देखते हैं। मेरे स्पर्श में कोई कठोरता नहीं थी और स्वभावतया मेरे चेहरे पर एक ऐसी मुस्कान है जो हरेक मिलन की चाह रखने वाले व्यक्ति के होठों पर होती है। आप देख लेते हैं कि मैं आपका कोई पूर्व-परिचित शत्रु नहीं हूँ और आपको विश्वास हो जाता है कि मैं आपका कोई तात्का-

हूँ—यही आपके वैसे आश्वासन के लिए पर्याप्त है। आप मुझसे पूछते हैं—उसी मन की भाषा की बात मैं दोहरा रहा हूँ—'तुम्हारे पास मुझे देने के लिए कोई ऐसी वस्तु है जो मुझे पसन्द आ सके?' मैं कहता हूँ: 'मेरे पास आपको देने के लिए कोई वस्तु नहीं है। जब कोई वस्तु ही नहीं है तो आपके पसन्द-नापसन्द आने का प्रश्न भी नहीं उठता।' आप कहते हैं: 'तब तुम मुझसे क्या चाहते हो? क्या तुमने मेरे पास कोई ऐसी वस्तु देखी है जिसे तुम मुझसे पाना चाहते हो? उसे पाने के लिए क्या तुम्हारे पास कोई ऐसी वस्तु है जिसे बदले में देकर तुम मुझे प्रसन्न कर सको?' मैं कहता हूँ: 'नहीं, आपके पास मैंने कोई ऐसी वस्तु नहीं देखी जिसे मैं आपसे पाना चाहूँ। बदले में आपको कुछ देकर प्रसन्न करने का भी प्रश्न मेरे सामने नहीं उठता।' 'तुम्हें मुझसे न कुछ लेना है न मुझे कुछ देना है, तब फिर तुम्हारा यह स्पर्श निरुद्देश्य और इसीलिए विचित्र है।' आप कहते हैं और कुछ तेजी के डग भरते हुए उस भीड़-भरी सड़क पर आगे बढ़ जाते हैं। यह मेरी और आपकी पहली भेंट है।

"मैंने आपके सामने किसी भी आदान-प्रदान का प्रस्ताव नहीं रखा। वाणी द्वारा बोली हुई भाषा में भ्रम, सन्देह या अविश्वास का स्थान हो सकता है, लेकिन मेरी-आपकी जो इतनी बातचीत हुई वह मन की या अनुभव की भाषा में हुई है, इसलिए उसकी सचाई में किसी भी सन्देह का स्थान मेरे-आपके बीच नहीं है। सन्देह का ही नहीं, किसी प्रकार के आदान-प्रदान की आशा का भी अवकाश मेरे-आपके बीच नहीं है। मैंने और आपने ऐसी कोई वस्तुएं एक-दूसरे के पास नहीं देखीं जिनका हम विनियम करना चाहें। इस प्रकार हमारी प्रथम भेंट में मेरी या आपकी कोई भी वस्तु मेरे और आपके बीच नहीं आई।

"भीड़ भरी सड़क पार कर आप अपने घर पहुँचते हैं। आदान-प्रदान के नाते चूँकि कोई भी वस्तु मेरे-आपके बीच नहीं आई इसलिए

मेरा वह स्पर्श ही अब आपके समक्ष हमारी उस भेंट का एकमात्र साक्षी है। आपके कन्धे पर मेरे हाथ का वह स्पर्श। केवल स्पर्श। निरुद्देश्य, प्रस्ताव-रहित और आदान-प्रदान की दृष्टि से आकर्षण-हीन। लेकिन वह एक हाथ का स्पर्श था—नंगे हाथ का। आपको याद आती है कि उस स्पर्श में एक सुखद यद्यपि सूक्ष्म-सी गरमाहट थी। नंगे हाथ का स्पर्श आज की दुनिया में बहुत बिरली बात है। आप रंग-बिरंगे, सस्ते या कीमती दस्तानों से ढके हुए हाथों का ही स्पर्श आज के सामाजिक सम्पर्क में पाते हैं। निरुद्देश्य, प्रस्ताव-रहित नंगे हाथ के स्पर्श का स्वाद भी अमिश्रित और इसीलिए चिर-अंकित ही हो सकता है। वह उस सुन्दर मानवी मूर्ति के होठों के स्पर्श के समान है जो किसी अज्ञात क्षण में, अज्ञात दिशा से आकर, आपके होठों को एक मधुर-मदिर स्पर्श देकर किसी अज्ञात दिशा में विलीन हो जाती है—वह विगत का कोई चिन्ह या भविष्य के लिए कोई अभिप्राय आपके पास नहीं छोड़ जाती। आप चौंक कर सिहर उठते हैं। आप सोचते हैं कि आपने एक बड़ा ही मधुर स्वप्न देखा है। आप उसके पीछे नहीं दौड़ते। उस सुन्दरी का उस चुम्बन-दान में कोई अभिप्राय नहीं था, क्योंकि वह केवल एक स्वप्न था। फिर भी उस अभिप्राय-रहित स्पर्श के स्वाद से आपके होठ दीर्घ काल तक तर रहते हैं। नंगे हाथ का स्पर्श नंगे होठों के स्पर्श से भिन्न नहीं है। ऐसे हाथ का स्पर्श मुझे किसी का मिला है। मैं ऐसे स्पर्श को जानता हूँ और इसीलिए मैंने भी वैसा ही स्पर्श आपको पहली भेंट में दिया है। आज की नहीं तो किसी निकट-दूर की अगली रात आप इसकी सार्थकता को स्वयं देख लेंगे।

"मेरे हाथ के उस स्पर्श की याद आपको अपने घर में रह-रह कर आती है। वह बढ़ती है और उसका एक आकार बन जाता है। आप मेरे उस स्पर्श की याद करते हैं और अगली सुबह मैं आपके द्वार पर पहुँच जाता हूँ—अपनी किसी इच्छा या अभिप्राय से नहीं,

बल्कि आपकी याद के प्रकृति-नियमित, अनिवार्य आकर्षण से खिंचा हुआ। आप मुझे अपने घर के बाहरी कमरे में आने का आदेश देते हैं और मैं उसमें प्रविष्ट होता हूँ। आप कहते हैं : 'इस कमरे में मेरी कुछ वस्तुएं सजी हुई हैं। इनके बारे में आपकी क्या राय है? इनमें से कोई आपको सुन्दर लगती हैं?' मैं कहता हूँ : 'इनमें से अनेक मुझे सुन्दर लगती हैं—बहुत सुन्दर हैं।' आप कहते हैं : 'तब इनमें से किसी को लेना आप पसन्द करेंगे? निःसंदेह आपके घर में भी कुछ ऐसी वस्तुए हो सकती हैं जो मुझे सुन्दर लगें और आप बदले में मुझे दे सकें।' मैं कहता हूँ : 'आपकी अनेक वस्तुएं मुझे बहुत सुन्दर लगती हैं, फिर भी इनमें से किसी को लेने की इच्छा मेरे मन में नहीं है—इनकी मुझे आवश्यकता नहीं है।' इतना कह कर मैं आपसे बिदा लेता हूँ।

"अगले दिन आप मेरे घर आते हैं। मेरे बाहर के कमरे में बैठते हैं। आपकी कद्रदानी है कि वहाँ रक्खी मेरी कुछ वस्तुएँ आपको सुन्दर लगती हैं। उनमें से कुछ को आप लेना चाहते हैं। आपकी पसंद में से जो वस्तुएँ मैं आपको सुविधापूर्वक दे सकता हूँ, दे देता हूँ—बिना किसी शर्त या मूल्य के। अगले दिन अपने घर आने का मुझे निमन्त्रण देकर आप बिदा लेते हैं।

"मैं आपके घर पहुँचता हूँ। अब की बार आप मुझे अपने बाहरी कमरे के आगे एक भीतरी कक्ष तक ले जाते हैं। वहाँ और भी वस्तुएँ हैं, अधिक सुन्दर, अधिक कीमती, लेकिन प्रायः धूल से ढकी और बेतरतीब पड़ी हुई। आप पूछते हैं : 'ये चीजें आपको कैसी लगीं?' मैं कहता हूँ : 'और भी सुन्दर। इनकी धूल पोंछ कर तरतीब से इन्हें सजादें तो यह कक्ष जगमगा उठे।' आप पूछते हैं : 'इनमें से कोई वस्तु आप लेना चाहेंगे?' मैं कहता हूँ : 'नहीं, ऐसी आवश्यकता या इच्छा मुझे नहीं है।' आप कहते हैं : 'मैं अब आपसे कोई बदला नहीं चाहूँगा। आप मेरी धूल-धूसरित सुन्दरताओं को भी देख सकते हैं

तो जो भी वस्तु आप पसंद करें उसे आपको भेंट कर मैं स्वयं को सम्मानित और सुखी मानूँगा।' मैं आपकी कृतज्ञता का धन्यवाद आपको देकर लौट आता हूँ। इस चौथी भेंट में आपने अपनी दीवार पर पहला लौह प्रहार किया है और वह सारी दीवार हिल उठी है।

"पांचवीं भेंट के लिए आप मेरे घर आते हैं। आप अबकी बार मेरे अन्तर्कक्ष में प्रवेश की आज्ञा मांगते हैं और मैं सहर्ष आपको भीतर ले जाता हूँ। आप वस्तुओं को देखते हैं, लेकिन मांगते कुछ नहीं : यद्यपि स्वभावतया वे बाहरी वस्तुओं से कुछ अधिक सुन्दर हैं।

"आपके आदेशानुसार छठी भेंट के लिए मैं आपके घर पहुँचता हूँ। आप मेरा हाथ अपने हाथ में लिये अपने घर के कक्ष के भीतर कक्ष पार करते आगे बढ़ते हैं। उन कक्षों की एक से एक सुन्दर, यद्यपि धूल से ढकी और बिखरी पड़ी वस्तुएँ आप मुझे दिखाते हैं और तब एक द्वार के सामने आकर आप ठिठक जाते हैं। वह बहुत अँधेरा और वस्तुओं से अस्त-व्यस्त भरा है। आप कहते हैं : 'अब इस कोठरी के भीतर जाने के लिए प्रकाश और मार्ग मुझे नहीं दीखता। आप आगे चलना चाहें और चल सकें तो मैं आपके साथ चलकर इसका निरीक्षण करना चाहूँगा।'

"ऐसा कह कर आपने अपनी उठाई हुई उस अदृश्य, दुर्भेद्य दीवार पर, जो वास्तव में अन्धकार और अवरोध के तत्वों की ही बनी हुई है, किसी रहस्यपूर्ण प्रक्रिया द्वारा, सम्भवतः अनजाने ही दूसरा आघात —अब की बार वज्राघात—किया है और वह भीतर से टूट गई है। मैं उस कोठरी के द्वार से ही आपके साथ बाहर लौट आता हूँ। आपकी दीवार का यह टूटना क्या और कैसे हुआ है, हम अगली गोष्ठी में समझने का प्रयत्न करेंगे।" ★

पच्चीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"अन्तस् की खोज में एक अवसर ऐसा आता है जब आपका आगे का मार्ग रुक जाता है। अपने हृदय की गहराई में आप आगे नहीं बढ़ पाते क्योंकि घना अंधकार और उलझन-भरी अड़चनें आपका मार्ग रोक लेती हैं। यह आपके हृदय की दूसरी, मध्यवर्ती मंजिल का द्वार है। पिछली गोष्ठी में आपने मेरे साथ अपने हृदय की पहली मंजिल की यात्रा पूरी की थी। सामाजिक मनुष्य का यह एक प्राकृतिक स्वभाव है कि वह अपने हृदय के भीतर अकेले या अपने लिए कभी भी उतरना नहीं चाहता। जब आप किसी दूसरे को अपने अन्दर की कोई वस्तु देना या दिखाना चाहते हैं तभी भीतर उतरते हैं। आप अपनी किन्हीं वस्तुओं या गुणों का उपयोग किसी दूसरे के लिए करना चाहते हैं या दूसरे से उनका कोई मूल्य या प्रशंसा चाहते हैं तभी उनके स्थान तक उस दूसरे व्यक्ति को साथ लेकर ही अपने भीतर उतरते हैं। आपके हृदय की पहली मंजिल में आपके वे सब गुण या खूबियाँ मौजूद हैं जिन्हें आप जानते हैं लेकिन दुनिया नहीं जानती। दुनिया तो आपकी केवल उन्हीं खूबियों को जानती है जिन्हें आपने अपनी बाहर की बैठक में उसे दिखाने के लिए सजा रक्खा है।

"आप गुणों और खूबियों की ही बात कहते हैं" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने कहा, "लेकिन हमारे भीतर अवगुण और कसरें भी तो हैं और उन्हें हम किसी हद तक जानते भी हैं।"

"हम जानते हैं कि हमारे भीतर कुछ अवगुण और कसरें भी हैं। उनमें से कुछ ऐसी हैं जिन्हें केवल हमीं जानते हैं, दूसरों पर वे प्रकट नहीं है। लेकिन ध्यान से देखें तो अवगुणों का गुणों से बाहर कोई अलग अस्तित्व नहीं है। वास्तव में गुण का अभाव ही अवगुण है, या

यह कहना अधिक ठीक होगा कि गुण की विकृति ही अवगुण है; क्योंकि किसी भी व्यक्ति में किसी भी गुण का नितान्त अभाव नहीं हो सकता। हमारे भीतर का प्रेम जब विकृत हो जाता है तो वह घृणा बन जाता है, साहस जब कुंठित हो जाता है तो वह कायरता बन जाता है; सत्कार की प्रवृत्ति जब कीलित हो जाती है तो वही लोभ और परिग्रह का रूप धारण कर लेती है। जिन्हें हम दुर्गण कहते हैं वे वास्तव में हमारे गुणों की ही ऐसी प्रतिबिम्बाकृतियाँ हैं जैसी विकृत दर्पण के सामने खड़े होने पर आपको अपनी मुखाकृति अनुपात-रहित और कुरूप दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त आपका कोई भी गुण अपनी सम्पूर्ण मात्रा में विकृत भी नहीं हो सकता। प्रेम, साहस, सौजन्य आदि गुण प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी मात्रा में अविकृत भी मौजूद रहते हैं और जब मैं आपके बाहरी और उसके भीतर के भी कुछ कक्षों में विद्यमान सुन्दर वस्तुओं की बात करता हूँ तब उन गुणों की उस अविकृत मात्रा की ओर ही संकेत करता हूँ।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"पहली छह भेंटों के अन्त तक आपने मुझे अपने हृदय की पहली मंज़िल की सैर करा दी है। उसमें कौनसी वस्तुएँ हैं, यह आपको पहले से ही ज्ञात था। लेकिन उसके आगे आप ऐसी कोठरी के द्वार पर पहुँचे थे जिसके भीतर जाने का प्रकाश और मार्ग आपको नहीं सूझता था और हम दोनों वहीं से लौट आये थे। लौटने से पहले आपने एक बात कही थी कि अगर मैं चाहूँ और आगे चल सकूँ तो आप भी मेरे साथ अपनी कोठरी के भीतर चलना पसन्द करेंगे। आपका यह कथन एक महान् मन्त्र का उच्चारण था, जो आपके भीतर से विस्फुटित हुआ था। उसने मेरे मार्ग में उठाई हुई आपकी दीवार पर एक वज्र-प्रहार किया था और उस दीवार में एक अदृश्य द्वार उसी समय बन गया था। आप मेरे साथ अपनी अँधेरी कोठरी के द्वार पर खड़े थे। आप नहीं जानते थे कि उसके भीतर रत्नों-मणियों से भरी सन्दूकें

हैं या विषधर सर्पों का आवास है; उसके भीतर आपका सौन्दर्य और समृद्धियाँ हैं या कलुषता एवं कंगाली ही। आपके मन में मुझसे कुछ छिपाने-दुराने की इच्छा नहीं थी। भीतर पहुँचकर यदि मैं कहूँ कि वह कोठरी बहुत गन्दी और खतरनाक है तो वैसा सुनने में आपको कोई दुःख न होगा, और यदि वहाँ से कोई बहुमूल्य रत्न लेकर मैं बाहर निकलूँ तो उसे दे देने में भी आपको कोई आपत्ति न होगी। अपना कुछ भी छिपाने-दुराने की अनिच्छा ही आपकी आन्तरिक इच्छा का स्रोत-द्वार है और वहाँ पहुँचकर आपने उस द्वार को अपने एक महा-प्रहार द्वारा खोल दिया है। आपने अपने घर की सभी ज्ञात वस्तुएँ देखली हैं। उनमें से किन्हीं भी वस्तुओं के आदान-प्रदान की वैसी कामना अब आपके मन में नहीं रह गई है, क्योंकि वस्तुओं के आदान-प्रदान की अपेक्षा उनकी अधिकाधिक खोज और दर्शन की उत्सुकता आपके मन में तीव्रतर होकर जाग उठी है। स्वल्प और ज्ञात के उपभोग की अपेक्षा अज्ञात और अधिक का दर्शन कहीं अधिक रोचक होता है; क्योंकि अज्ञात ही नवीन और नवीन ही रोचक हो सकता है।

"अगली बार आप मेरे घर आते हैं और मैं आपको अपने घर की पहली मंजिल के आगे, सभी ज्ञात कोठरियों के पार दूसरी मंजिल के भीतर ले जाता हूँ। मेरी इस मंजिल के भीतर इतना अन्धकार नहीं है क्योंकि मैं इसके भीतर अनेक बार आया-गया हूँ। मैं किसी अन्य व्यक्ति की खातिर उसे दिखाने के लिए, उसके साथ ही इस कोठरी में घुस चुका हूँ, इसलिए इसका द्वार अब बहुत-कुछ खुलने लगा है, और प्रकाश इस के भीतर आने लगा है। इस कोठरी और इसके आगे की भी अनेक कोठरियों की मैं आपको सैर कराता हूँ। देखने भर के लिए यथेष्ट प्रकाश इन कोठरियों में है लेकिन ये सभी कोठरियाँ सील, गन्दगी और दुर्गन्ध से भरी हैं तथा इनमें संग्रहीत प्रायः सभी वस्तुएँ बुरी तरह बिखरी हुई और कुरूप हैं। जो कुछ थोड़ी-सी सुन्दर भी हैं वे भी कहीं न कहीं से खंडित और विकृत, धूल-मिट्टी में दबी पड़ी हैं।

दूसरी मंजिल की मेरी इन कोठरियों में कुछ भी प्रेय और वांछनीय नहीं है। यह मंजिल वास्तव में उन वस्तुओं का मेरा गोदाम है जिन्हें मैंने अपने विगत जीवन में बाहर से ला-लाकर अनुपयुक्त और अर्द्ध-उपयुक्त अवस्था में ही अपने घर में भर रक्खा है और जिनके पूरे उपयोग का मुझे कभी अवसर नहीं मिला। मैंने इन कोठरियों के बीच आने-जाने का भी जैसा-तैसा एक मार्ग बना लिया है और उसी पर आपको ले चलकर इतनी सैर मैंने करा दी है।

"अगली भेंट में मैं आपको साथ लेकर आपके घर की उन अँधेरी कोठरियों में प्रविष्ट होता हूँ। उनका नक्शा आपने बहुत कुछ मेरे घर में देख लिया है, इसलिए भीतर जाने में आपको अधिक कठिनाई नहीं होती। हम दोनों इस मंजिल के अन्तिम छोर तक की सैर कर आते हैं। आपकी इस मंजिल में सब वैसा ही है जैसा मेरे घर में था। उसमें कुछ भी वांछनीय नहीं है। इस यात्रा के साथ हमारी आठवीं भेंट सम्पूर्ण होती है और हमारी आज की गोष्ठी भी समाप्त होनी चाहिए।" ★

छब्बीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"अगली बार मैं आपको अपने घर निमन्त्रित करता हूँ। इस बार मैंने अपने घर की ज्ञात और अज्ञात पूरी मंजिलों की राह उनकी अन्तिम कोठरी में लेजाकर आपको खड़ा कर दिया है। यह एक लम्बी यात्रा रही है—इतनी लम्बी कि जिसका आपको अनुमान नहीं था। आप थक गये हैं। राह में कोठरियों के भीतर घुटती हुई गर्मी और वायु के अभाव से आपके शरीर पर पसीना छलछला आया है। प्यास

से आपका गला सूख रहा है। लेकिन इस अन्तिम कोठरी में पहुँचते ही अचानक आपके सामने एक खिड़की खुलती है और उसमें होकर आप खुले, विस्तृत आँगन में पहुँच जाते हैं। ठण्डी वायु का एक झोंका आपके पसीने को सुखाकर एक ऐसा सुखद स्पर्श दे जाता है जैसा आपने जीवन में पहले कभी नहीं पाया। एक ओर आपकी दृष्टि घूमती है और वहीं पर शुद्ध शीतल जल से भरा हुआ कटोरा रखा है। आप उसे उठा कर उसका पानी पी जाते हैं। जल का यह स्वाद आपने जीवन में पहले कभी नहीं पाया। गर्मी और प्यास की वेदनाओं से मुक्त होने पर पेट की भूख आपके सामने आती है। आप वास्तव में बहुत देर से भूखे हैं। पास ही आपको कमल-पत्र में परोसी आपके प्रिय अन्न की दो रोटियाँ दीख पड़ती हैं। आप उनका आहार करते हैं और वह स्वाद आपको उनमें मिलता है जो उस समय तक किसी भोजन में नहीं मिला। शरीर की बढ़ी हुई थकान अब आपका ध्यान एकान्त रूप से अपनी ओर आकृष्ट करती है और एक सघन तरु की वायुमती छाया में एक स्वच्छ दूब की कोमल शय्या आपको निमन्त्रित करती है। उस विश्राम के कुछ क्षण ही आपको नया कर देते हैं और अब आपको ध्यान आता है कि इतनी देर से आप अकेले हैं और इस घर का स्वामी, आपका साथी मैं अदृश्य हूँ। निस्संदेह उस खिड़की की राह इस खुले आँगन में प्रवेश के समय से मैं आपके साथ नहीं हूँ। अधिक ठीक कहना यह होगा कि आपके पूर्व-परिचित रूप में मैं आपके सामने नहीं हूँ। किन्तु यह मेरा घर है और घर का भी अन्ततम प्रदेश। अकेलेपन की भावना और मेरी याद दोनों बातें आपके मन में एक साथ आती हैं। लेकिन इन दोनों में पहली आपकी आन्तरिक अनुभूति है और दूसरी केवल एक बाह्य स्मृति। पहली की पूर्ति ही इस समय आपकी वास्तविक आवश्यकता है। अकेलेपन का भाव आते ही आपके सामने एक असाधारण सौंदर्य-मयी मानवीय मूर्ति प्रकट होती है। आपकी पुकार पर आई हुई उस

मूर्ति की निमन्त्रणमयी स्वीकृति का आकर्षण उन्मुक्त है। आपकी स्मृति एक क्षीण-सा हस्तक्षेप फिर करती है। आप मेरी बात सोचते हैं लेकिन वहाँ मैं नहीं, एक अन्य ही, मुझसे सर्वथा भिन्न अपूर्व-दृष्ट, फिर भी चिर आत्मीय-सा प्रतीत होने वाला व्यक्तित्व आप के सामने है। वह मूर्ति आगे बढ़ती है और एक ही स्पर्श में आप सहस्त्र वक्षों के सहस्र आलिङ्गनों के साथ सहस्र अधरों के सहस्र चुम्बनों का रस एक साथ अपने होठों पर अनुभव करते हैं। यह सदेह सौन्दर्य के महान् चिरन्तन, शाश्वत चुम्बन की आपकी पहली अनुभूति है। इस चुम्बन की मिठास अब आपके होठों से कभी भी दूर नहीं हो सकती।

"यह मेरे घर का सबसे भीतरी अन्तःपुर, मेरे हृदय का अन्तर्तम कक्ष है। यहाँ पहुँचकर आप मेरी इच्छाओं के स्रोत तक पहुंच गये हैं। आपने मेरी आन्तरिक, मौलिक इच्छा को जान लिया है। जान ही नहीं लिया आपने उसकी पूर्ति भी कर दी है। मेरी वह आन्तरिक, मौलिक इच्छा क्या है ? अपने नन्हे क्षुधातुर शिशु के सामने मुक्त, उत्फुल्ल-पयोधरा माता की इच्छा क्या होती है ? पके फलों से भरपूर लदे, भारावनत वृक्ष की इच्छा क्या हो सकती है ? रूप और यौवन के मद से भरी सुन्दरी की सहज कामना किसी समर्थ, याचनाशील पुरुष के समक्ष क्या हो सकती है ?

"जब आप अपने किसी प्रेमी स्वजन के समृद्ध आँगन में उसके अतिथि होते हैं तो उसकी आन्तरिक और एकमात्र इच्छा यही हो सकती है कि वह आपका जी खोलकर सत्कार करे, आपकी सभी अन्तर्वाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति करे और जो विशेष वस्तु उसके पास समृद्धि की सीमा तक है उसकी भेंट से आपकी भी झोली भर दे। प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःपुर के आँगन में समृद्ध होता है और उस आँगन में मानवीय निर्वाह की भी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। उसका वह आँगन उसके घर की ज्ञात और अज्ञात मंजिलों के आगे का अन्तिम प्रदेश है। वह उसका भण्डार-घर नहीं, सृजन-घर है।

देखने में वह रीता है, किन्तु आवश्यकतानुसार सभी वस्तुओं का सृजन वहीं होता है और अनन्त परिमाण में हो सकता है। मानवीय निर्वाह और विकास के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ बीज रूप में वहाँ उपस्थित हैं। वहीं से बनकर वस्तुएँ, एक दूसरे ही मार्ग से मनुष्य के बाहरी कमरे में और फिर घर की पहली मंजिल के अन्य कक्षों में आती हैं और कुछ समय पीछे वहाँ से दूसरी मंजिल की कोठरियों में अन्धाधुन्ध भर दी जाती हैं।

"अपने घर या हृदय के अन्ततम भाग में आपको लेजाकर मैंने इस नवीं भेंट में आपका सत्कार किया है। आपके और मानव मात्र के जीवन-निर्वाह और ऊँचे से ऊँचे सुख-विकास के लिए शुद्ध अमिश्रित अन्न, जल, सुखद वायु, खुले आकाश-प्रकाश तथा प्रियस्पर्शी स्वजन के एक अखण्ड चुम्बन के अतिरिक्त और किस सातवीं वस्तु की आवश्यकता है? सोचकर देखिये। ये वस्तुएँ अमिश्रित और यथेष्ट मात्रा में आपको उपलब्ध हों तो इन्हीं में आपका सम्पूर्ण जीवन-निर्वाह है, और इन्हीं वस्तुओं को आप दूसरों के लिए यथेष्ट सुलभ करदें तो इसी में आपका ऊँचे से ऊँचा—उसे दैविक, पारभौतिक, आध्यात्मिक, किसी भी नाम से आप पुकार लीजिए—आपकी कल्पना और कल्पना से भी ऊपर का सुख और विकास निहित है। जहाँ तक मैंने सुना और समझा है, संसार के किसी भी धर्म और दर्शन के पास इससे बड़ी वस्तु मनुष्य को देने के लिए नहीं है।

"अपने अन्ततम का बड़े से बड़ा सत्कार मैंने आपका कर दिया है। ठंडी हवा का एक झोंका, एक कटोरा जल, अन्न की दो रोटियाँ और किन्हीं मीठे अधरों का एक चुम्बन। ये वस्तुएँ ही नहीं, इनके भीतर का सार तत्व—इनका सहज स्वाद—भी मैंने आपको दिया है। यह स्वाद, और स्वाद लेने की क्षमता ही मेरी और आपकी इच्छाओं का, इच्छाओं की पूर्ति का, हमारे हृदयों की आन्तरिक सम्पन्नता का—एक शब्द में, सम्पूर्ण जीवन का—सबसे बड़ा रहस्य है।

"इन तीन गोष्ठियों में सम्भव है आपको रस कम मिला हो और मानसिक श्रम अधिक करना पड़ा हो, किन्तु आगे की सरसता के लिए यह श्रम-परक खुदाई आवश्यक थी। अगली गोष्ठी में हम स्वाद की ही खोज करेंगे।"

सत्ताईसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"आपके साथ अपनी नौ भेंटों की चर्चा मैंने पिछली तीन गोष्ठियों में की है। उसके आगे एक दसवीं भेंट और आपके घर में हो सकती है और उसमें ठीक वही सत्कार मुझे आपके घर मिल सकता है जो आपको मेरे घर मिला था। मेरे और आपके अन्तर्तम प्रदेशों में कोई मौलिक अन्तर नहीं हो सकता फिर भी उनमें अपनी-अपनी मौलिक विशेषता का होना अनिवार्य है। इस मौलिक विशेषता के कारण ही मैं और आप—संसार के कोई भी दो व्यक्ति—एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं और यह वैयक्तिक विशेषता ही हमारे बीच आकर्षण का सूत्र है।

"लेकिन मेरे-आपके बीच ये नौ-दस भेंटें अभी पूरी नहीं हुई हैं। हमने केवल उनका एक चित्र ही अपने सामने फैलाया है; और उस चित्र के अनुसार वास्तव में मेरी-आपकी अभी तीसरी ही भेंट चल रही है। इन गोष्ठियों के अन्त तक, अर्थात् इनका एक वर्ष पूरा होते-होते, यदि हम चौथी भेंट के स्तर पर पहुँच जायँगे तो मैं इस आयोजन को यथेष्ट सफल मान लूँगा और तब नवीं-दसवीं भेंट की सम्भावना भी अधिक दूर न रह जायगी। उस अन्तिम और सबसे गहरे मिलन की भूमिका पर ही हम जीवन की स्रोतस्विनी, अपनी और अपने किसी भी

स्वजन की उस महती इच्छा का साक्षात्कार कर सकेंगे। मेरी और आपकी महती इच्छा हमारी समझ-बूझ से परे की कोई गुह्य, आध्यात्मिक, अलौकिक वस्तु नहीं, हमारे दैनिक जीवन की ही सरलतम अनुभूति है। हमारी शारीरिक भूख-प्यास और हार्दिक मिलन की अमिश्रित कामनाएँ उस महती इच्छा की ही अम्लान शाखाएँ हैं। लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि हम अपनी इन कामनाओं को अति-मिश्रित करने और अति-मिश्रित ही देखने के आदी हो गये हैं। आप अन्न खाते हैं, जल पीते हैं, प्रियजन का अपने शरीर और हृदय से स्पर्श करते हैं किन्तु इनके वास्तविक, अमिश्रित स्वाद से वंचित हैं। आप अन्न के विविध व्यंजन-पकवानों, शीतल तथा विविध स्वाद के जलों से भरे सोने-चांदी के पात्रों एवं सुसज्जित स्वजनों के स्पर्श से घिरे जीवन-यापन करते हैं। प्रतिदिन छह बार आप आहार करते हैं, दस बार जलपान और सोलह बार स्वजन का स्पर्श करते हैं, किन्तु अन्न, जल और स्वजन के स्पर्श का वास्तविक स्वाद आप नहीं जानते। कारण दो हैं। पहला यह कि इनकी विशुद्ध भूख-प्यास और ललक आपके भीतर कुंठित पड़ी है, और दूसरा यह कि ये वस्तुएँ आपको नग्न, अमिश्रित रूप में प्राप्त नहीं हैं। इनमें पहला कारण ही मुख्य और दूसरा गौण है। आपको इन तीनों वस्तुओं का स्वाद मिला होता तो अन्न का प्रत्येक ग्रास, जल का एक-एक घूँट और स्वजन का प्रत्येक स्पर्श आपके भीतर जीवन का अखण्ड उल्लास भर देता। जिस उपनिषद्कार ने 'अन्न वै ब्रह्म'—अन्न ही ब्रह्म है—की उक्ति कही है उसने अवश्य ही इस अमिश्रित स्वाद को पहचाना होगा।

"अपने अन्तिम, सबसे गहरे सत्कार में मैंने आपको अन्न, जल और प्रियजन का स्पर्श ही नहीं, इनका स्वाद भी दिया है, और वह स्वाद ही तृप्तिकर साधनों के भीतर सबसे बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु है। अपनी प्रचलित जीवन शैली में आप इस स्वाद से वंचित हैं, फिर भी यह बात नहीं है कि आप उसका अनुमान ही न कर सकते हों। लम्बे

दिनों के रोगोपवास के बाद जब चिकित्सक का नियंत्रण टूटने पर आपको गेहूँ की रोटी का पहला ग्रास मिलता है; किसी रोग से विरस हुई जिह्वा जब रोग-मुक्त होने पर जल के पहले घूँट का सहज स्वाद लेती है, और हृदयहीन अभिभावकों के बन्धनों से मुक्त प्रिय-दर्शन स्वजन का पहला चुम्बन जब आपको प्राप्त होता है तब आपको इनके वास्तविक स्वाद का कुछ आभास अवश्य मिलता है क्योंकि आप इन्हें तब पूरी एकाग्रता, तन्मयता और निर्द्वन्द्वता के साथ ग्रहण करते हैं। आप कहते हैं कि ये अमृत के घूँट हैं। किन्तु अगले ही दिन से आप अपने पुरातन रोग में फिर घिर जाते हैं।

"मनुष्य के पारस्परिक सम्पर्क की सबसे बड़ी वस्तु मैंने आपको उस अन्तिम मिलन में दी है। वह कोई विशिष्ट वस्तु नहीं, प्रत्युत किसी भी अभीष्ट वस्तु का अविकृत स्वाद है जो एकाग्रता, तन्मयता और निर्द्वन्द्वता की स्थिति में ही मिल सकता है और अनिवार्य रूप में मिलता है। यही हमारे पारस्परिक जीवन का परम रोचक और परम उपयोगी है। लेकिन इस परम रोचक और उपयोगी की खोज में हम बहुत नीचे उतर आये हैं और इतनी गहराई पर किसी वस्तु को देखना-समझना हमारे लिए उतना सुगम नहीं है। इसलिए हम लौटकर ऊपर चलेंगे और अपने साधारण जीवन के धरातल पर इस 'स्वाद' नाम के परम रोचक एवं परम उपयोगी को चखने-परखने का प्रयत्न करेंगे। इन गोष्ठियों की आधी मंजिल हम पार कर चुके हैं, और इस मध्य विन्दु पर हमने जिस वस्तु की खोज की है उसे शेष मंजिल की यात्रा में, अपने सहज दैनिक जीवन के प्रकाश में पहचानने का प्रयत्न करेंगे। शेष छह महीने की गोष्ठियाँ इसके लिए यथेष्ट होंगी और उनकी संख्या हमारी आवश्यकता से अधिक भी नहीं ठहरेगी। अपनी खोज के इस उतार में हमें सहज चिन्तन से भिन्न क्लिष्ट दर्शन, कविता या रहस्य की सी भाषा का उपयोग करना पड़ा है किन्तु ये भी आखिर तो जीवन के ही अंग हैं और इनका भी यथास्थान उपयोग है।"

"अपनी अन्तिम भेंट के विवरण में आपने जिस मानवी मूर्ति के प्रकट होकर मिलने की बात कही वह कोई पुरुष था या नारी, यह आपने स्पष्ट नहीं किया।" चौथे आसन की कुमारी जी ने पूछा।

"यह प्रश्न आप उसी समय पूछ लेतीं तो मैं इसका सम्भवतः बिल्कुल ठीक उत्तर दे सकता। मेरा अनुमान है कि यदि आप मेरे घर आई हुई वह स्वजन होतीं तो वह मूर्ति किसी सुन्दर पुरुष की ही होती और यदि मेरा अतिथि यहाँ उपस्थित पुरुषों में से कोई होता तो वह कोई नारी ही होती। बहुत सम्भव यह है कि उसके चेहरे पर दृष्टि पड़ते समय आपको उसके स्त्री या पुरुष होने का कोई भान न होता; हां, उसके होंठ और वक्ष का स्पर्श आप लोग अपनी-अपनी स्वाभाविक आवश्यकता और प्रियता के अनुरूप ही किसी स्त्री या किसी पुरुष का अनुभव करते।" वीरभद्र ने कहा।

सभा विसर्जित हुई। ★

अट्ठाईसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"मानव-हृदय के भीतर की जो झांकी मैंने पिछली तीन-चार गोष्ठियों में प्रस्तुत की उससे हमारी व्यावहारिक समस्या हल नहीं हुई। उस झाँकी से यही प्रतीत होता है कि या तो मनुष्य की अपनी कोई इच्छा नहीं है, और यदि है तो वह भूख-प्यास और दूसरों से मिलन की साधारण इच्छाओं तक सीमित है। विविध श्रेणी के सुख-समृद्धियों की तथा दूसरों के साथ भावना और आकांक्षा के विविध स्तरों पर आदान-प्रदान की जो इच्छाएँ हमारे मन में उठती हैं उनका कोई महत्व नहीं है और इसीलिए बीच के किसी इच्छित आदान-

प्रदान में न पड़कर हमें अपने स्वजन को सीधे अपने अन्तर्तम प्रदेश में ले जाकर वहाँ उसका सत्कार करना चाहिए। यदि ये ही परिणाम हमारी इस भीतरी झाँकी से निकलते हैं तो वे हमारे लिए अधिक रोचक और उत्साहवर्धक नहीं हैं। लेकिन उस झाँकी का वास्तविक दर्शन ऐसा नहीं है। उस दर्शन के अभिप्राय को हम तभी समझ सकेंगे जब अपनी दैनिक, विविध-स्तरीय इच्छाओं का उस झाँकी की पृष्ठभूमि पर निरीक्षण करेंगे। ऐसा ही निरीक्षण हमें आगे करना है। उस झाँकी का केवल यही अभिप्राय हमें अपने सामने रखना है कि मनुष्य अपनी आन्तरिक स्थिति में सम्भवतः परम समृद्ध एवं परिपूर्ण है और दूसरों की इच्छाओं की पूर्ति करने अथवा उनका पूरक बनने की इच्छा ही उसकी एकमात्र मौलिक इच्छा है, तथा उसके वाह्य जीवन में दीखने वाली असंख्य इच्छाएँ उस एक इच्छा की ही अनन्त शाखाएँ हैं और इसीलिए वे सभी सम्मान्य हैं। उपर्युक्त मन्तव्य में आत्म-विरोध का आभास स्पष्ट है। जब आपकी अपनी कोई इच्छा नहीं है तो दूसरे की भी कोई अपनी इच्छा नहीं होनी चाहिए। उस दशा में दूसरे की इच्छा-पूर्ति का प्रश्न कहाँ से आया? इस विरोधाभास का निराकरण आगे चलकर स्वयं ही हो जायगा।"

"तो फिर मानव-हृदय की उस भीतरी झाँकी को एक सम्भावित पृष्ठभूमि मानकर हम अपनी और दूसरों की इच्छाओं-आवश्यकताओं का अब निरीक्षण करेंगे। इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता कि भूख-प्यास और शीत-उष्ण से निवृत्ति मनुष्य की मौलिक आवश्यकताएँ हैं और इनसे निवृत्ति पाने के मार्ग में उसे एक विशेष प्रकार का आनन्द भी मिलता है। भोजन करने से क्षुधा की पीड़ा ही शान्त नहीं होती, उसके स्वाद का सुख भी मिलता है। उष्णता से निवृत्ति होने के उपचार में गर्मी का कष्ट ही नहीं मिटता, ठंडी वायु के स्पर्श का आह्लादकारी स्वाद भी मिलता है। पीड़ा से निवृत्ति हमारा ऋणात्मक और स्वाद की अनुभूति हमारा धनात्मक सुख है। लेकिन इस मौलिक

भूख-प्यास और शीत-उष्ण के धनात्मक सुख से आप निन्नानवे प्रतिशत वंचित रहते हैं। आप अपने नव-विकसित मनोजगत् में इतना अधिक रहने लगे हैं कि अपने मुख को भोजन देते समय भी वहीं विचरते रहते हैं और भोजन पर आपका ध्यान नहीं टिकता। जिस वस्तु पर आपका ध्यान नहीं है उसका स्वाद भी आपको नहीं मिल सकता। लेकिन स्वाद—प्रत्येक वस्तु और स्तर का स्वाद—जीवन का रस है, जिसके बिना आपका काम नहीं चलता। अपनी अन्यमनस्कता के—दूसरी चिन्ताओं और आशाओं में घिरे होने के—कारण जब आपको रोटी का स्वाद नहीं मिलता, तब आप उसे अन्यत्र खोजने निकलते हैं। आप रोटी में मक्खन लगाते हैं और जब मक्खन-चुपड़ी रोटी में भी आपको स्वाद नहीं मिलता तो उस पर शकर की पर्त चढ़ाते हैं। इस प्रकार आपका थाल धीरे-धीरे छत्तीस व्यंजनों से भर जाता है, लेकिन वह स्वाद आपकी पकड़ में नहीं आता। इस बात को क्या और भी विस्तार और पुनरावृत्तियों के साथ आपके सामने रखने की आवश्यकता है? भोजन की यह बात आपके प्रत्येक सम्पर्क पर लागू होती है। आप दिन-रात में हजार वस्तुओं का स्पर्श करते हैं, किन्तु स्वाद एक का भी नहीं पाते। पवन का एक शीतल झोंका, चन्द्रमा की शुभ्र चांदनी, सुन्दर शिशु की मुस्कान, किसी मुग्धा तरुणी की लाज-ललक-भरी चितवन, और यदि आपकी आँखें खुली हों तो सम्पूर्ण मानव-हृदयों के स्नेह का आपके बाहर-भीतर लहराता हुआ सागर—इन सभी का स्पर्श आप करते हैं, फिर भी इनके स्वाद से वंचित रहते हैं, क्योंकि आप सदैव 'अन्यत्र' रहते हैं। जिस वस्तु का आपको स्वाद नहीं मिलता उसके पोषण से भी आप वंचित रहते हैं, क्योंकि पोषक तत्व स्वाद में ही होता है। पोषण से वंचित व्यक्ति का क्षीणकाय, और क्षीणकाय का दरिद्र होना अनिवार्य है। और क्षीण एवं दरिद्र व्यक्ति ही संसार के समस्त आत्मिक तथा सामाजिक दुःखों-अपराधों का मूल है, जैसा कि हम आगे स्पष्ट रूप में देखेंगे।

"यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि हमको अपने प्रत्येक सम्पर्क का पूरा स्वाद मिले। प्रत्येक छोटे-बड़े, स्थूल और सूक्ष्म स्वाद की अनुभूति ही सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला है, और रोटी के ग्रास, जल के घूँट तथा प्रियजन के चुम्बन से अधिक मौलिक स्वाद की वस्तुएँ और क्या हो सकती हैं। इन वस्तुओं के अमिश्रित स्वाद का स्वयं आस्वादन हमारी वैयक्तिक समृद्धि का; और इन्हीं वस्तुओं का अमिश्रित स्वाद दूसरों के लिए सुलभ करना हमारे आध्यात्मिक उत्कर्ष का ऊँचे से ऊँचा लक्ष्य हो सकता है।"

"आपका यह कथन हमारी धार्मिक और दार्शनिक मान्यताओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। रोटी, पानी, चुम्बन जैसी वस्तुओं का स्वाद सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला है, आपका यह विचार क्या कट्टर भौतिकवादी नहीं है?" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने कहा।

"और यदि मेरा कोई विचार कट्टर भौतिकवादी है तो आपकी दृष्टि में वह आपत्तिजनक और इसीलिए गलत है। भौतिकवाद के सिद्धान्तों का अध्ययन मैंने नहीं किया, फिर भी यदि मेरे विचार भौतिकवादी हैं तो मैं आपसे पूछूँगा कि इस भौतिक से भिन्न दूसरा कौन-सा आधार आपको अपने जीवन का दिखाई देता है। आपने सम्भवतः धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों में पढ़ा है कि यह जगत् मिथ्या है और इन्द्रियों के भोग त्याज्य हैं। आपको ग्रन्थों का यह उपदेश ठीक प्रतीत होता है, लेकिन आप रहते इस जगत् में ही हैं और इन्द्रियों के भोग आपको बराबर आकृष्ट करते रहते हैं। इस प्रकार आपका जीवन एक अखण्ड द्विविधा में बीतता है। इस द्विविधा के पार हमें पहुँचना चाहिए। इसीलिए हम इस गोष्ठी में धर्म और दर्शन के नहीं, अपनी स्वतन्त्र प्रियताओं के मार्ग से ही जीवन को समझना चाहते हैं। इस मार्ग से चलकर भी यदि वे सब ऊँचे से ऊँचे सुख, जिनका धर्म और दर्शन के ग्रन्थ आश्वासन देते हैं, आपको प्राप्त हो जायँ तो आपकी यह द्विविधा समाप्त हो सकती है। यह सब हमें देखना है।

"इन गोष्ठियों का प्रारम्भ हमने इस बिन्दु से किया था कि हम पारस्परिक सम्पर्क में जीवन के परम रोचक और परम उपयोगी की खोज करना चाहते हैं। बीच में हमने देखा कि हम अपनी ऊपरी रुचियों और आवश्यकताओं के आदान-प्रदान द्वारा नहीं, हृदय की गहराइयों में उतर कर अपनी और दूसरे व्यक्ति की आन्तरिक इच्छाओं को जान-कर ही उस अभीष्ट की खोज कर सकते हैं। और अब हम देख रहे हैं कि जीवन के सम्पर्कों के स्वाद से वंचित हम सभी अत्यन्त क्षीण और दरिद्र हैं। अगली गोष्ठी में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि क्षीण और दरिद्र व्यक्ति किस प्रकार समाज के लिए भी अनन्त अपराधों एवं दुःखों का स्रष्टा बनता है और इन हीनताओं से मुक्त होकर वह कैसे अपने और सभी दूसरों के लिए एक वरदान बन सकता है। इसे देख लेने पर हमें सहज ही वह पृष्ठभूमि मिल जायगी जिस पर हम अपने पारस्परिक सम्बन्धों का सफल निर्माण कर सकेंगे।" ★

उन्तीसवीं गोष्ठी

"पिछली गोष्ठी के क्रम में आज आपने यह बताने का निश्चय किया था कि जीवन के सम्पर्कों के स्वाद से वंचित, क्षीण और दरिद्र व्यक्ति किस प्रकार समाज के दुःखों का कारण बनता है और समर्थ एवं सम्पन्न होकर वह कैसे समाज का हितकारी बन सकता है। आपकी यह विवेचना सम्भवतः हमें वह भेद दिखा सकेगी जिससे जीवन के सम्पर्कों का पूरा रस लेना हम सीख जाएंगे, और इस प्रकार समर्थ और समृद्ध भी हो जाएंगे। लेकिन यदि ऐसा हो सका तो फिर पारस्परिक सम्पर्कों से, एक-दूसरे की गहराइयों में उतर कर आन्तरिक आदान-प्रदान से क्या लेना हमारे लिए शेष रह जायगा? इन गोष्ठियों का प्रारम्भ पारस्परिक सम्पर्कों में ही सर्वाधिक रोचक और उपयोगी की

खोज के अभिप्राय से हुआ था और अब ऐसा प्रतीत होता है कि हम ऊपर ही ऊपर, बिना दूसरों के सम्पर्क का आश्रय लिये सब कुछ पा लेंगे।" आठवें आसन के वकील साहब ने कहा।

"हमें जो खोजना है वह पारस्परिक सम्पर्क में ही खोजना है। वह बिना पारस्परिक सम्पर्क के हमें अन्यत्र मिल भी नहीं सकता। अपनी वैयक्तिक क्षीणता और दरिद्रता को देखने-परखने की बात मैं इसीलिए कहता हूँ कि हम इन हीनताओं से मुक्त होकर दूसरों से मिलने के लिए यथेष्ट स्वस्थ हो जायँ। दीन और दरिद्र रहते हुए हम दूसरों से मिल नहीं सकते, और यदि मिलते भी हैं तो दूसरों पर अपनी हीनता लादने के अतिरिक्त अपना या उनका कोई हित नहीं कर सकते। एक बात मैं यहाँ फिर दोहराये देता हूँ कि कोई व्यक्ति अपने आपमें कितना ही समर्थ और सम्पन्न क्यों न हो जाय, स्वाद के भंडार और अमृत के स्रोत उसके लिए क्यों न खुल जायँ, फिर भी दूसरे के सम्पर्क के बिना उसकी वह स्वतन्त्रता सार्थक नहीं हो सकती। वैयक्तिक सम्पन्नता केवल एक आवश्यक सीढ़ी है, दूसरों के स्वस्थ सम्पर्क में आने और जीवन की रोचकता एवं उपगोगिता की खोज करने के लिए। इस प्रकार हमारी दृष्टि निरन्तर पारस्परिक सम्पर्क पर ही है और बीच-बीच में हम जितनी भी वैयक्तिक चर्चा करते हैं वह उस सम्पर्क की ओर बढ़ने के लिए ही है।" वीरभद्र ने कहा।

"आपने बताया कि प्रत्येक वस्तु का स्वाद ही उसका सर्वोपरि सार है। और उसी क्रम में आपने उपनिषद् की उक्ति 'अन्नं वै ब्रह्म' का भी हवाला दिया। क्या आप कहना चाहते हैं कि उपनिषद्कार ने अन्न को उसके स्वाद के लिए ही ब्रह्म कहा है? इस उक्ति को जहाँ तक हमने समझा है अन्न अपने स्वाद के कारण नहीं, बल्कि उस जीवनदात्री शक्ति के लिए ब्रह्म कहा गया है जिसे अन्न द्वारा ग्रहण कर मनुष्य जीवित रहता है।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"जीवनदात्री शक्ति के लिए नहीं, निस्संदेह अपने स्वाद के लिए ही अन्न ग्राह्य है। जीवनी शक्ति तो मनुष्य बिना अन्न के सीधे सूर्यताप से भी ग्रहण कर लम्बी आयु तक जीवित रह सकता है। अगले युगों में वह बड़े परिमाण में ऐसा करेगा; और आज भी ऐसे कुछ लोग संसार और समाज में हैं जो बिना कुछ भी खाये जी रहे हैं।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"जिस व्यक्ति को वस्तुओं का स्वाद नहीं मिलता वह पोषण के अभाव में क्षीण हो जाता है और क्षीण व्यक्ति सृजन या उपार्जन में अशक्त होने के कारण दरिद्र हो जाता है। आप कहते हैं कि बेचारा दुर्बल व्यक्ति किसी को क्या हानि पहुँचायेगा, लेकिन मनुष्य की दुर्बलताएँ ही संसार के समस्त अत्याचारों की जननी हैं। एक वस्तु में जब उसे स्वाद नहीं मिलता तो वह दूसरी के पीछे दौड़ता है, लेकिन पहली को भी पकड़े रहता है। वह सोचता है कि दूसरी वस्तु पहली में मिला देने से स्वाद आजायगा—रोटी में मक्खन मिला देने से स्वाद आजायगा। लेकिन जब दूसरी में या दूसरी के सम्मिश्रण में भी उसे स्वाद नहीं आता तो वह तीसरी और फिर उसी प्रकार असंख्य वस्तुओं के पीछे दौड़ता और उनका संग्रह करता रहता है। अस्वाद के कारण वह ज्यों-ज्यों दुर्बल होता जाता है त्यों-त्यों अधिकाधिक वस्तुओं का अवलम्ब लेना चाहता है। अनुपयुक्त वस्तुओं को अनावश्यक परिमाण में जोड़-जोड़कर रखता है, इस आशा से कि वे शायद कभी स्वाद दे जायं। दूसरों के आवश्यक भाग का वह अपहरण करता है, अपने संग्रहों को छिपाता है। समाज में चोरी, अपहरण और संग्रह की प्रवृत्तियों को वह जन्म देता है। आरक्षणपरक असंख्य धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं का वह निर्माण करता है, जिनमें वस्तुएं लोगों के लिए आरक्षित या 'रिज़र्व' करदी जाती हैं। यह भूमि, ये भवन, यह सम्पत्ति अमुक व्यक्ति की है और उसके मरने के बाद उसके बेटे और पोते ही इनको अपनी कैद में रक्खेंगे। ये अधिकार, ऐसी श्रद्धा, यह

सुन्दरी अमुक व्यक्ति की आरक्षिता हैं और दूसरों का इनकी ओर दृष्टि उठाना वर्जित है। ऐसी विभाजनशील, अवरोधकारी व्यवस्थाओं को यह अस्वाद का रोगी, क्षीण एवं दरिद्र व्यक्ति ही जन्म देता है। हितकर सृजन के लिए अत्यन्त दुर्बल यह व्यक्ति अहित साधनों के लिए भरपूर समर्थ है, क्योंकि आज के समाज में उसी का बहुमत है। लेकिन यही क्षीण, दरिद्र व्यक्ति सावधान होते ही एक असाधारण चमत्कार का सृजन करता है। ज्योंही वह समीप की वस्तु का स्वाद लेना सीख लेता है, विविध वस्तुओं के पीछे उसकी भाग-दौड़ थम जाती है। जो कुछ उसके पास है उसका ही पूरा स्वाद और पोषण पाकर वह चेत उठता है। जो कुछ उसने अब तक अपनी कोठरियों में संग्रह कर बन्द कर रखा था उसे बाहर निकाल कर उन दूसरों के लिए डाल देता है जिन्हें उसको आवश्यकता है। अब वह बासी या अनुपयुक्त चीज कोई भी अपने पास नहीं रखता क्योंकि ताजे सृजन का प्रयोग उसे मिल गया है। जिन वस्तुओं का वह उपयोग नहीं कर सका वे अब दूसरों की हैं। अपना भंडारघर वह खाली कर देता है क्योंकि अपने सृजनघर की कुंजी उसे मिल गई है। अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं वह प्रतिदिन ताजा तैयार कर सकता है तो बासी जोड़ कर क्यों रक्खे ? ऐसा व्यक्ति ही नये समाज की नई समृद्धियों और नये सम्पर्कों का सृजन करेगा। कल्पना कीजिए ऐसे समाज की जिसके लोग किसी भी ऐसी वस्तु का संग्रह नहीं करते जिसका आज उनके लिए कोई उपयोग नहीं है। ऐसे समाज में आवश्यक वस्तुओं का अभाव किसी के लिए नहीं हो सकता। वस्तुओं का अभाव सृजन की शिथिलता से होता है, सृजन की शिथिलता संग्रह की प्रवृत्ति से आती है; और संग्रह की प्रवृत्ति मनुष्य में तभी आती है जब उसे प्राप्त वस्तु का स्वाद नहीं मिलता। स्वाद न मिलने का कारण, हम पहले देख चुके हैं, किसी भी वस्तु के प्रति हमारी एकाग्रता, तन्मयता और निर्द्वन्द्वता के अभाव में है। आज की बातचीत से यह किसी हद

तक स्पष्ट हो जाता है कि क्षीण-दरिद्र व्यक्ति ही समाज के समस्त दुःखों-अपराधों का स्रष्टा है और अपनी इन हीनताओं से मुक्त होते ही वह बाह्य रूप में कुछ न करते हुए भी समाज के लिए वरदान बन जाता है। पारस्परिक सम्पर्क में प्रविष्ट होने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि हम इन हीनताओं से किसी सीमा तक मुक्त होकर ही मिलें। अपनी आधारभूमि की शिलाओं में इस एक और शिला को भी जमा कर हम आगे बढ़ेंगे।" ★

तीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"हमारी लगभग सभी इच्छाओं और आवश्यकताओं का सम्बन्ध दूसरों से रहता है। दूसरों के साथ हमारे सम्बन्ध और उनके प्रति हमारी धारणाएँ ही उनकी जननी होती हैं। हमारी भोजन, वस्त्र, मकान आदि की गिनी-चुनी आवश्यकताएँ भी, जिन्हें हम अपनी वैयक्तिक आवश्यकताएँ कहते हैं, अधिकतर दूसरों के सम्बन्ध में रँगी होती हैं। अन्न और वस्त्र की जो चिन्ता आपको है वह केवल अपने शरीर के लिए नहीं, अपने आश्रितों के लिए भी है। जो वस्त्र आप अपने तन पर पहनकर बाहर निकलते हैं वह अपने लिए ही नहीं, बल्कि दूसरे देखने वालों का भी ज्ञात या अज्ञात ध्यान रखकर पहनते हैं। आप अपनी कोई भी इच्छा या आवश्यकता ऐसी नहीं बता सकते जिसमें किसी न किसी दूसरे का सम्पर्क सम्मिलित न हो। इस प्रकार दूसरों का ध्यान, दूसरों के साथ आपका सम्पर्क अनिवार्य और इसीलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"हम ग्यारह व्यक्ति लगभग सात महीने से यहाँ इकट्ठे हो रहे हैं। बातचीत के लिए हमने एक ऐसा विषय या कुछ ऐसी चर्चाएँ खोज निकाली हैं जिनमें हम सब की किसी हद तक दिलचस्पी है। हमने जो

खोलकर—किसी हद तक जी खोलकर ही—उन पर बातचीत की है। प्रारम्भ में मुझे दो-चार बार जो संकोच हुआ था वह अब दूर हो गया है। मैंने कहा भी था कि जब-जब मैं ही अकेला बोलता रहता हूँ तो मुझे संकोच होता है। लेकिन इधर बाद की गोष्ठियों में हम सभी ने बातचीत में बराबर का हिस्सा लिया है। हम सभी ने मिलकर साथ-साथ, एकसी उत्सुकता के साथ उन बातों को सोचा है; तब फिर इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि शब्द मैंने अधिक बोले या आपने अधिक सुने। ऐसी गोष्ठियों की सफलता इसी में है कि कहने वाला भले ही एक हो लेकिन सोचने वाले सभी हों। ऐसी स्थिति में कहने वाला जो कुछ कहता है वह सभी के एक साथ सोचने का ही फल होता है। हम सप्ताह में एक बार आध घंटे के लिए यहाँ मिलते हैं। हो सकता है कि सप्ताह के अन्य घंटों में भी हमें कभी एक-दूसरे की याद आ जाती हो। आपके घर, पड़ोस और इस शहर में सैकड़ों ऐसे व्यक्ति होंगे जिनसे आप नित्य प्रति मिलते हैं। ऐसे भी व्यक्ति आपके जीवन में आते हैं जो थोड़े से सम्पर्क में ही लम्बी अवधि के लिए एक गहरी छाप आपके मन पर छोड़ जाते हैं, और ऐसे भी जो लम्बे समय तक आपके साथ रहकर कोई प्रभाव आप पर नहीं डाल पाते। और इन सबसे अधिक संख्या उन लोगों की होती है जिन्हें आप राह चलते सड़क पर, बाजार की दूकान में, बस में, रेल के डिब्बे में या किसी उत्सव-समारोह में अपने बगल या समीप की कुर्सी पर देखते हैं। आपकी-उनकी आँखें मिलती हैं। शायद एक-दो वाक्यों का आदान-प्रदान भी हो जाता है। उनमें से कोई-कोई आपको आकर्षक या आपकी ओर आकृष्ट जान पड़ते हैं। आप उनकी बात सोचते हैं और इतने में ही अगला स्टेशन आ जाता है या उत्सव समाप्त हो जाता है और आप उनसे अलग हो जाते हैं। आप उनकी बात सोचते हैं और आधी-चौथाई सोचकर छोड़ देते हैं। आप उनके सम्बन्ध में पूरी बात नहीं सोचते और इसीलिए उनकी स्मृति को अपने मस्तिष्क के किसी अँधेरे

तहखाने में घुटने के लिए बन्द कर देते हैं। यही वह प्रक्रिया है जिसके अनुसार आप अपने समाज के बहुसंख्यक व्यक्तियों से मिलते हैं। अपनी और समाज की समृद्धि को बढ़ाने वाले असंख्य आदान-प्रदानों से आप वंचित रह जाते हैं।

"एक प्रश्न जो इस समय आपके मन में उठ रहा है उसी का उत्तर मैं स्वयं दे रहा हूँ। मैं इस जगह फिर आदान-प्रदान की बात कह रहा हूँ और आप सोच रहे हैं कि मैंने बीच में कहीं आदान-प्रदानों को वर्जित और निषिद्ध ठहराया है। लेकिन ऐसा नहीं है। आदान-प्रदान हमें अपनी सभी छोटी-बड़ी, हर स्तर की रुचियों और आवश्यकताओं का करना है। प्रारम्भ से ही मैं स्वतन्त्रता का समर्थन करता आया हूँ, फिर किस आधार पर मैं आपके पारस्परिक, प्रिय आदान-प्रदान पर रोक लगाने की बात कह सकता था! उस बात से मेरा अभिप्राय केवल इतना ही था कि पारस्परिक आदान-प्रदान की पूरी सार्थकता और स्थायित्व के लिए जिस सुदृढ़ आधारशिला पर खड़े होना हमारे लिए आवश्यक है उस तक हमारे पाँव पहुँच जायँ। जब आप यह समझ लेते हैं कि आपका कोई भी आदान-प्रदान अन्तिम नहीं होना चाहिए—अर्थात् हर आदान-प्रदान के आगे भी आपको कोई और आदान-प्रदान करना है तब आप इस योग्य हो जाते हैं कि अपनी किन्हीं भी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे को निमन्त्रित करें या उसका निमन्त्रण स्वीकार करें। आप में इतनी दूरदर्शिता होनी चाहिए कि जो वस्तु आप दूसरे से लें उसका अन्त भी पहले से ही आपकी दृष्टि में रहे। अन्त पहले से ही आपकी दृष्टि में रहेगा तो उसका वास्तविक अन्त आने पर आपको क्षोभ या शिकायत नहीं होगी और आप उस व्यक्ति के साथ अगले व्यापार के लिए भी अग्रसर होंगे। मेरी यह बात यथेष्ट स्पष्ट है न?"

"आप एक उदाहरण दें तो अधिक स्पष्ट हो जाय।" चौथे आसन की कुमारी जी ने कहा।

"मैं आपके किसी गुण से प्रभावित होकर आपका प्रशंसक बन जाता हूँ। मेरी प्रशंसा आपको प्रिय लगती है और आप बदले में मुझे अपने घर का एक कमरा देकर अपने साथ रख लेते हैं। अब यदि मैं मानव-सम्पर्क की गहराइयों तक पहुँचा हुआ और इसीलिए दूरदर्शी हूँ तो पहले से ही मुझे यह दीख जाना चाहिए कि मेरी इस प्रशंसा की अवधि किसी दिन समाप्त हो जायगी और उसके साथ ही स्वभावतया आपके घर में मेरे लिए स्थान न रह जायगा। मेरी बुद्धिमत्ता इसी में है कि मैं आपका दिया हुआ आश्रय सहर्ष स्वीकार करूँ, क्योंकि इस समय मुझे उसकी आवश्यकता भी है, लेकिन जिस दिन वह समाप्त हो जाय उस दिन दूसरे आश्रय की खोज भी उसी अम्लान भाव से करलूँ और आपके साथ सम्बन्ध का अगला दौर चलाने के लिए अपनी कोई दूसरी वस्तु आपके सामने रखूँ। स्पष्ट है कि यह तभी हो सकेगा जब मैंने विगत सम्पर्क की सीमितता को पहले से ही जान कर अगले सम्पर्क की बात सोच रखी होगी।" वीरभद्र ने स्पष्ट किया।

"यही तो वे लोग करते हैं जिनका सम्पर्क कुछ अधिक समय तक चलता है, जैसे पति-पत्नी या मित्र-मित्र का। लेकिन ऐसा ही करते उनका जीवन बीत जाता है और वे एक-दूसरे की आन्तरिक गहराइयों में नहीं उतर पाते। इसी आधार पर तो आपने पहले कहा था कि हमें ऊपरी वस्तुओं के आदान-प्रदान में नहीं उतरना चाहिए, क्योंकि वे अटकाने वाली हैं।" सातवें आसन के डाक्टर बन्धु ने कहा।

"एक वस्तु का रस सूखने पर दूसरे का सौदा हम सभी अपने दीर्घ संगी स्वजनों के साथ करते हैं। लेकिन सम्पर्क की गहराइयों को जानने वाला दूरदर्शी उनका व्यापार करने से पहले ही उनका अन्त देख लेता है और अदूरदर्शी उसे ही अनन्त मानकर उसी के सहारे रहता है। दोनों के दृष्टिकोण और इसीलिए व्यावहारिक चिन्तन में यह एक बहुत बड़ा अन्तर है।" वीरभद्र ने कहा और जारी रखा :

"दूसरों से मिलने में हमारी सब से अधिक व्यापक कसर या कठिनाई यह है कि हमारी दूसरे के भीतर घुसने की शक्ति—'पावर ऑव पेनीट्रेशन—बहुत ही कम, नहीं के बराबर है। हम जीवन भर चारों ओर दूसरों से घिरे रहते हैं किन्तु किसी के भीतर प्रवेश नहीं कर पाते! अपनी यह शिथिलता हमें इस रूप में दिखाई पड़ती है कि दूसरों के अन्दर कोई गहराई ही नहीं है या उनकी गहराई में हमारे लिए वांछनीय कोई वस्तु ही नहीं है। अगली गोष्ठी में हम इस शिथिलता को देखने और इसका उपचार खोजने का प्रयत्न करेंगे।" ★

इकतीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"समाज में दो प्रकार के व्यक्ति आपके सामने आते हैं। एक वे जो आपको कुछ आकर्षक और उपयोगी प्रतीत होते हैं और जिनसे आप कुछ आदान-प्रदान करना चाहते हैं; दूसरे वे जिनमें आपको कोई आकर्षण नहीं दीखता और जिन्हें देखते हुए भी आप उनसे अपरिचित रहे आते हैं। आपके लिए समाज में इस दूसरे प्रकार के व्यक्तियों की संख्या ही बहुत बड़ी है और पहले प्रकार के केवल इने-गिने हैं। इस प्रकार जिस समाज में आप रहते हैं उसका बहुत बड़ा भाग आपके लिए अनाकर्षक और अनुपयोगी बना रहता है। यह आपका एक इतना बड़ा और केवल प्रमादजनित घाटा है जिसका आप अनुमान नहीं लगा पाते। यह ऐसा ही है जैसे हजार गायें आपके पास हों और आप केवल उन्हीं दस-पाँच को दुधारू मानकर दुहें जो संयोगवश आपके बाड़े में आ जायँ। सहज हित की बात यह है कि आपकी दृष्टि में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से आपका गहरा और यथासम्भव

अधिक से अधिक आदान-प्रदान हो। लेकिन ऐसा नहीं होता और इसका प्रकट कारण, जैसा हमने पिछली गोष्ठी में देखा, यही है कि आपमें दूसरों के भीतर प्रवेश करने की, वेधने की शक्ति बहुत दुर्बल है। वेधन-शक्ति की दुर्बलता के कारण आपको दूसरों के भीतर कोई गहरी, वांछनीय वस्तु नहीं दीखती। हम एक-दूसरे के समीप नहीं आते। लेकिन इन गोष्ठियों में हमने परस्पर समीप आने का कुछ प्रयास किया है। फलतः जीवन के लिए कुछ रोचक और उपयोगी सामग्री हमें यहाँ दीख पड़ी है। लेकिन वह सामग्री अभी दशमांश भी हमने नहीं देखी है। स्पष्ट कहूँ तो मुझे कहने में संकोच न करना चाहिए कि अभी इस गोष्ठी में एक मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने आप सभी के कुछ समीप आने का प्रयास किया है। स्वभावतया मुझमें आपकी कुछ रुचि जाग आई है। लेकिन मुझे छोड़कर इस गोष्ठी के अन्य सदस्य अभी एक-दूसरे के सम्पर्क में नहीं आये। जो कुछ रोचकता इस गोष्ठी में आपको मिली है वह केवल एक व्यक्ति की प्रारम्भिक समीपता का फल है। कल्पना कीजिए, जब आप और दूसरे व्यक्तियों की भी समीपता की ओर बढ़ेंगे तो यह रोचकता और सम्पन्नता कितनी गुनी न हो जायगी।"

"इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति की रोचकता और उपयोगिता एकसी है। सौन्दर्य और समर्थता की दृष्टि से दो व्यक्तियों में कोई अन्तर नहीं है?" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने पूछा।

"प्रत्येक व्यक्ति की रोचकता और उपयोगिता एक जैसी नहीं तो एक जितनी अवश्य है। प्रत्येक व्यक्ति में अपनी एक विशेषता या अनुपमता है और उसकी अनुपमता उतनी ही भरपूर है जितनी किसी दूसरे की अपनी अनुपमता। आपको हर प्रकार की अनुपमता के सम्पर्क की आवश्यकता है—भले ही अभी आप एक प्रकार की अनुपमता की आवश्यकता का अनुभव करें और दूसरे प्रकार की का न करें। लेकिन एक-एक या अधिक-अधिक करके आपको सभी प्रकार की अनुपमताओं

के सम्पर्क की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि आपकी अपनी अनुपमता या विशेषता भी केवल एक ही है। इस प्रकार संसार का प्रत्येक व्यक्ति आपका पूरक है। जितनी ही जल्द आप इस तथ्य का अनुभव कर लेंगे उतनी ही जल्द आप भरपूर सम्पन्न हो जायंगे। दो व्यक्तियों में अन्तर उनकी वैयक्तिक विशेषताओं के प्रकट या भीतर दबी हुई होने का हो सकता है; और दूसरे की दबी हुई विशेषता तक पहुँचने के लिए ही हमारा यह पारस्परिक सम्पर्क सम्बन्धी प्रयोग है।" वीरभद्र ने कहा और जारी रखा :

"अब आपके सामने दो प्रकार के व्यक्ति हैं। कुछ थोड़े से वे, जो आपको आकर्षक लगते हैं और जिनसे आप कुछ आदान-प्रदान चाहते हैं; और दूसरे बहुसंख्यक वे जिनमें आपको कोई वांछनीय बात नहीं दिखाई देती। हम इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों को अलग-अलग देखेंगे।"

"पहले वर्ग का एक आकर्षक-उपयोगी व्यक्ति आपके सामने है। आपके मन में इच्छा उठती है या आपकी तात्कालिक आवश्यकता है कि आप उसके साथ कुछ आदान-प्रदान करें। चिन्तन और दर्शन की जो पृष्ठभूमि आपने अब तक तैयार करली है उसके आधार पर आप अब भरपूर इस योग्य हैं कि उस आदान-प्रदान की ओर निर्द्वन्द्वभाव से पहला कदम बढ़ायें—जो कुछ आप उससे चाहते हैं उसका प्रस्ताव बेहिचक उसके सामने रखें। कोई भी प्रस्ताव रखने में हिचक उसे होती है जिसे भय होता है कि कहीं उसका प्रस्ताव अस्वीकृत न हो जाय, अभीष्ट वस्तु अप्राप्त ही न रह जाय। लेकिन आपने तो उस वस्तु का पहले से ही अन्त देख लिया है। आप जानते हैं कि प्राप्त हो जाने पर भी उसका या उसकी उपयोगिता का अन्त हो जायगा और तब उसके बिना भी आप यथावत् जीवित रहेंगे। इसलिए यदि उसके लिए अभी से इनकार हो जायगा तो भी आपकी जीवन-गति में कोई विक्षेप नहीं होगा। आप निरवलम्ब, बिना उस वस्तु के भी जीवित

रहना जानते हैं इसलिए प्राप्ति या अप्राप्ति का आपके लिए बहुत बड़ा महत्व नहीं है। यदि वह प्राप्त होती है तो आपको एक अगले सुखद पदार्पण के लिए एक आधार मिल जायगा, नहीं प्राप्त होती तो कोई दूसरा आधार मिलेगा। इस स्पष्ट दर्शन को लेकर आप बेझिझक उसके सामने अपना प्रस्ताव रखेंगे। यदि वह इनकार करता है तो आप वंचित नहीं होते और वह भी आपकी दृष्टि में गिर नहीं जाता। आप जानते हैं कि उसके पास उस याचित वस्तु से भी बड़ी अन्य वस्तुएँ हैं जिनका आदान-प्रदान आगे विशेष सुलझा हुआ समय आने पर आप कर सकेंगे। और इससे भी अधिक आप यह जानते हैं कि उस व्यक्ति की भीतरी गहराइयों तक पहुँचने के पहले किसी भी वस्तु का आदान-प्रदान स्थायी महत्व और उपयोग की बात नहीं है, उसकी आवश्यकता केवल प्रासंगिक और ऐच्छिक है। इस पृष्ठभूमि पर उस प्रस्ताव की सफलता, अर्द्ध सफलता या विफलता आपके लिए किसी प्रकार के क्षोभ, दुःख, विरक्ति या घृणा का कारण नहीं बन सकेगी। साथ ही बहुत अधिक सम्भावना इसी बात की रहेगी कि आपका प्रस्ताव उस व्यक्ति को उल्लासपूर्वक स्वीकार हो। इसलिए कि अपने उस अन्तर्दर्शन की पृष्ठभूमि पर खड़े हुए आप उस व्यक्ति के एक ऐसे समर्थ ग्राहक होंगे जैसे उसे साधारणतया नहीं मिल सकते। मनुष्य मनुष्य के बीच की प्रत्येक याचना और प्रत्येक दान एक भरपूर सन्तुलित व्यापार है, और बिना मूल्य किसी को कोई भी वस्तु नहीं मिलती। जो दानी दान देता है वह याचक से उसका पूरा मूल्य पाता है, और जो याचक पाता है उसका मूल्य तुरन्त अदा करता है। दानी को मिलने वाला आन्तरिक संतोष और याचक के हृदय से निकला कृतज्ञतापूर्ण आशीष उन वस्तुओं का मूल्य नहीं तो और क्या है? फिर आप, जो अपनी पहचानी हुई समृद्धि की भूमि पर खड़े होंगे, और भी अच्छे खरीदार होंगे। समाज में जो मूल्यांकन अभी चल रहा है वह बहुत

ही क्षुद्र और अनीतिकर है। हम दूकानदार से अपनी आवश्यकता की कोई वस्तु एक रुपये में खरीद कर लाते हैं। हमने वस्तु ली और उसे रुपया दिया और समझ लिया कि उससे उऋण हो गये। यह बहुत गलत मूल्यांकन है। आप, जो कि जागरूक हैं, उस रुपये के साथ अपने होठों में एक मुस्कान लेकर दूकानदार को एक हार्दिक धन्यवाद भी देंगे, अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए मन में दूकानदार के कृतज्ञ भी होंगे। अपने पेट के लिए ही नहीं, किसी हद तक आपकी सेवा-सुविधा का ध्यान रखकर भी उसने वह दूकान लगाई है। आप अपने सहायक को भले ही मासिक वेतन देते हैं लेकिन उसकी प्रत्येक सेवा के लिए उसके अनुगृहीत भी होंगे, क्योंकि किसी भी सेवा का मूल्य निश्चित किये हुए पैसों में अदा नहीं किया जा सकता। उसे वेतन से अधिक पैसों की आवश्यकता होने पर आप यह न सोचेंगे कि आप उसकी सेवाओं का मूल्य पहले ही चुका चुके हैं। किसी भी व्यक्ति से आप उसकी कोई भी वस्तु चाहें—उसकी सेवा, सहयोग, उसकी सम्पत्ति का कुछ भाग, उसके प्रेम या सौंदर्य का कोई सत्कार—बहुत बड़ी सम्भावना यही है कि वह आपको अवश्य मिलेगी, क्योंकि आपकी पात्रता और अधिकार का सामर्थ्य उससे छिपा न रहेगा और वह देख लेगा कि आपसे मिलने वाला प्रतिदान उसके लिए बहुमूल्य ही हो सकता है। आकर्षक और उपयोगी दीखने वाले व्यक्ति के साथ आपका पहला प्रस्ताव और भी कुछ दिशाओं से उसके लिए अनिवार्य होगा, यह हम अगली गोष्ठी में देखेंगे।" ★

बत्तीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"इस गोष्ठी की चर्चाओं में यदि आपने ध्यान से, रुचिपूर्वक भाग लिया है तो मानव-हृदय का वह दर्शन आपके हाथ में है जिसके

आधार पर आप किसी भी व्यक्ति के साथ कोई-सा भी आदान-प्रदान करने के लिए स्वतन्त्र हैं। समाज में आज जो असाधारण निर्धनता और अतृप्ति भौतिक और मानसिक दोनों धरातलों पर छाई हुई दीखती हैं उसका कारण वस्तुओं की नहीं, सहज-मुक्त पारस्परिक आदान-प्रदान की ही कमी है। आप वह ठीक व्यक्ति हैं जो इस आदान-प्रदान को बढ़ावा देकर समाज को समृद्धि की ओर ले जा सकते हैं। जब आप किसी व्यक्ति से कुछ चाहेंगे तो आपका रुख साधारण अदर्शीजन की तरह हीनता और आतुरता का न होगा। अदर्शी व्यक्ति जिस वस्तु को चाहता है उसके लिए आतुर होता है और जिससे चाहता है उसके सामने दीन होता है। किन्तु आप जानते हैं कि आप किसी ऐसी वस्तु पर निर्भर नहीं हैं जो स्वयं आपके पास या प्रकृति के सर्व-सुलभ, निष्कपाट भंडार में मौजूद न हो; और दूसरे से जो वस्तु आप चाहते हैं उसका उपयोग सीमित और केवल सामयिक है। अदर्शी व्यक्ति जिससे कुछ चाहता है उसके पैर पकड़ता है, लेकिन आप उसका कंधा थपथपाते हैं। आप जानते हैं कि जो कुछ आप किसी से चाहते हैं उसका भरपूर मूल्य आपको चुकाना है—भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक उपार्जन या श्रम के रूप में जो कुछ भी उस व्यक्ति को आपकी इच्छापूर्ति में व्यय करना पड़ेगा वह सब आप उचित रूप में उसे अदा कर देंगे। और यह आपके लिए अत्यन्त सहज स्वाभाविक होगा कि जिस वस्तु का ऐसा सर्वांगीण मूल्य चुकाने योग्य धन आपकी अपनी जेब में उस समय नहीं होगा उस वस्तु को लेने की इच्छा भी आपके मन में नहीं उठेगी। इन बातों को हम अगली गोष्ठियों में वैयक्तिक उदाहरणों पर घटाकर देखेंगे।

"मनुष्य के पारस्परिक सम्पर्क की सरस सार्थकता इसी में है कि जो जिससे जो कुछ चाहे वही उसे मुक्त रूप में मिले। कोई कारण नहीं कि आप ठीक भूमिका पर स्थित होकर दूसरे से कोई वस्तु चाहें और वह आपको न मिले। एक व्यक्ति दूसरे की माँग या प्रस्ताव को

अस्वीकार क्यों करता है ? निस्संदेह उन दोनों के बीच एक द्रुतचल आन्तरिक संवाद चलता है और उसके अन्त में ही स्वीकृति या अस्वीकृति का निर्णय होता है। इस मनोवैज्ञानिक, मन की भाषा में बोले जाने वाले संवाद को मैं आपके सामने चित्रित करने का प्रयत्न करूँगा और आप देखेंगे कि आपकी ओर से ठीक उत्तर मिलने पर दूसरा व्यक्ति आपके प्रस्ताव को कभी भी अस्वीकार नहीं करना चाहेगा।

"आप दूसरे व्यक्ति से कोई वस्तु चाहते हैं। वह कहता है कि वह वस्तु वह किसी को देना नहीं, अपने पास ही रखना चाहता है। आप कहते हैं कि वस्तु का लाभ पास रखने में नहीं, उसका उपयोग करने में है; आप उसकी वस्तु का कुछ उपयोग ही करनी चाहते हैं। वह कहता है कि वह वस्तु उसके पास थोड़ी मात्रा में ही है। आप कहते हैं कि आप उतनी ही मात्रा में उसे चाहते हैं जितनी उसके पास है, अधिक नहीं। वह कहता है कि वह अपनी वस्तु किसी दूसरे को देना चाहता है। आप कहते हैं कि आप उसकी वस्तु को अपने पास कैद कर नहीं रखना चाहते और उपयोग के बाद आपसे पाकर वह उसे दूसरे को दे सकता है। वह कहता है कि आपके उपयोग से वह वस्तु घट जायगी या समाप्त हो जायगी। आप कहते हैं कि ठीक उपयोग से अधिकांश वस्तुएँ घटती नहीं, बढ़ती और अधिक उपयोगी ही बनती हैं; और जो कुछ वस्तुएँ एक ओर घटती भी हैं उनका दूसरी ओर नया सृजन भी होता है और वह सृजन पहले की अपेक्षा अधिक और श्रेष्ठतर ही होता है। वह कहता है कि दूसरे को देने में उसे अधिक एवं तात्कालिक लाभ की आशा है, इसलिए वह दूसरे के लिए ही आरक्षित रक्खी है। आप उसे बताते हैं कि किसी अगले समय के लिए आरक्षित किन्तु इस समय अनुपयुक्त रखी हुई वस्तु इसी समय उसका एक बड़ा घाटा है—वस्तु का लाभ तभी तक है जब तक उसका उपयोग होता रहे। वह कहता है कि वह वस्तु इस समय दूसरे के उपयोग में है। आप कहते हैं कि आप दूसरे को उसके उप-

योग से वंचित नहीं करना चाहते, आप भी उसका उपयोग ही करना चाहते हैं। वह कहता है कि दो व्यक्ति एक साथ उसका उपयोग नहीं कर सकते। आप कहते हैं कि यदि वह वस्तु दो या अधिक व्यक्तियों के एकसाथ उपयोग करने योग्य न होती तो आप उसकी माँग न करते। वह पूछता है कि आपको वह वस्तु देने में उसका निजी क्या लाभ है। आप बताते हैं कि उसकी वस्तु का सर्वोत्तम उपयोग ही उसका निजी भी लाभ होगा। वह इस लाभ की पहचान जानना चाहता है। आप बताते हैं कि स्वयं उसके लिए अत्यन्त रुचिकर, आपके लिए विशेष प्रिय तथा सम्पूर्ण समाज के लिए हितकर कुछ सृजन ही उस लाभ की पहचान होगी। वह पूछता है कि यह सृजन कब होगा। आप बताते हैं कि उसकी स्वीकृति के दूसरे क्षण से ही वह इस सृजन का प्रारम्भ स्वयं देख लेगा। वह कहता है कि दूसरों के साथ आदान-प्रदान में अक्सर धोखा होता है और जो बातें प्रारम्भ में कही जाती हैं वे प्रपंचपूर्ण निकलती हैं, इसलिए वह आपकी बात की सचाई पर विश्वास कैसे करे। आप कहते हैं कि विश्वास और अविश्वास मनुष्य अपने कुछ अनुमानों और गणनाओं के आधार पर ही खड़े करता है, जो कभी ठीक भी हो सकते हैं और कभी गलत भी। किसी वस्तु के अन्त तक पहुँचे बिना उसके सम्बन्ध में विश्वास और अविश्वास का निराकरण नहीं किया जा सकता। इसलिए अविश्वास का सदुपयोग यही है कि उसे लिये हुए भी मनुष्य दूसरे के साथ आदान-प्रदान में आगे बढ़े। इससे उसकी चाल की आतुरता और दौड़ नियंत्रित रहेगी। और यदि अविश्वास के कारण वह पैर ही आगे नहीं बढ़ायेगा तो यह अविश्वास का बहुत बड़ा दुरुपयोग होगा और वह जीवन की प्रगति से वंचित रह जायगा। आपके द्वारा इस स्पष्टीकरण के बाद उस दूसरे व्यक्ति के पास आपकी माँग को अस्वीकृत करने का अब कौनसा कारण शेष रह जायगा ? अन्तिम बाधा की बात वह आपके सामने सम्भवतः यही रक्खेगा कि अपनी

वस्तु आपको देने में उसकी कुछ धार्मिक, नैतिक, पारिवारिक या सामाजिक रुकावटें हैं। वह कहेगा कि अपनी वस्तु आपको देने में उसे किसी से चोरी करनी पड़ेगी। आप कहेंगे कि ऐसा नहीं होगा। वह कहेगा कि किसी का जी दुखाना पड़ेगा। आप कहेंगे कि ऐसा भी नहीं करना पड़ेगा। वह कहेगा कि किन्हीं नैतिक मर्यादाओं या शास्त्रीय उपदेशों का उल्लंघन करना पड़ेगा; और आप उसे बतायेंगे कि उसका यह दान नैतिक मर्यादाओं के विकास और ऊँचे से ऊँचे शास्त्रीय उपदेशों की भावना के अनुकूल ही होगा। इतने कथोपकथन के पश्चात् या तो वह आपके प्रस्ताव को उसी समय स्वीकार कर लेगा या स्वीकृति की ओर विचार की दिशा में अग्रसर होगा। और यदि इतने पर भी वह आपके प्रस्ताव को अस्वीकार करता है तो बहुत बड़ी सम्भावना यही है कि वह स्वयं या उससे माँगी गई वस्तु अभी विकास और उपयोगिता की दृष्टि से इस स्तर की नहीं है कि आपके मनोनीत उपयोग में आ सके। उस दशा में आप सहज ही अपने ही अनुमान में कोई भूल मान कर अपने प्रस्ताव को निश्चिंत भाव से वापस ले लेंगे। यदि वह आपका समीपवर्ती है तो आप प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष रूप में ही अधिक, उसके विकास में सहायक होने का प्रयत्न करेंगे और उसके साथ फिर कभी किसी दूसरे सम्पर्क की प्रतीक्षा करेंगे।" ★

तैंतीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"एक पुराना, सप्तवर्षीया बालिका का चित्र इस समय मेरी आँखों के सामने घूम गया है। एक शाम उसके माता-पिता ने देवी की पूजा की थी और प्रसाद की बताशों से भरी टोकरी उसके घर में आई थी।

किसी ने उससे कह दिया था कि ये प्रसाद के बताशे एक-एक कर जितने लोगों को बांटे जायँगे उतने ही बच्चे बाँटने वाले के होंगे। बालिका की रात कठिनाई से कटी और सुबह होते ही वह बताशों की टोकरी लिये सड़क पर थी। दोपहर बाद जब वह लड़की दूर की गलियों में से खोजकर लाई गई तब वह फूट-फूट कर रो रही थी, क्योंकि उसकी टोकरी में अब भी कुछ बताशे शेष थे। पता नहीं आगे चलकर उस बच्ची का क्या हुआ! मेरा अनुमान है कि यदि उसकी भावनाओं को ठीक दिशा में पनपने दिया गया होगा तो वह इस समय संसार की एक महान् मां बन गई होगी। बच्चों से उसे बेहद स्नेह था और वह प्रसाद के हज़ार बताशों के प्रताप से हज़ार बच्चों की मां तो कम से कम बन ही जाना चाहती थी। वह आँखों दीखे एक भी व्यक्ति को प्रसाद दिये बिना नहीं छोड़ना चाहती थी और जब उसे उसके घर वाले बर-बस खींच कर ले आये तब उसके मन का व्याकुल क्षोभ यही था कि उसे कुछ और व्यक्तियों को शेष प्रसाद क्यों नहीं बाँट देने दिया गया। उस बालिका को अधिकाधिक व्यक्तियों की खोज थी और वह किसी को भी प्रसाद दिये बिना नहीं छोड़ना चाहती थी।

"इस कथा के भीतर छिपी सार्थकता क्या आप नहीं देख रहे हैं? आपका बहुत बड़ा हित इसी में है कि आपको अधिकाधिक व्यक्तियों की खोज हो और किसी को भी आप कुछ प्रसाद दिये बिना न छोड़ें। उस बालिका की टोकरी में बताशों की संख्या सीमित थी—हज़ार, सवा हज़ार की ही रही होगी—लेकिन आपके भीतर जो प्रसाद है वह असंख्य-असीम है। जब आप एक बार अपने या किसी स्वजन के हृदयतल तक डुबकी लगा आते हैं तो आपके भीतर एक स्रोत फूट पड़ता है। उस स्रोत का दबाव बाहर की ओर इतना अधिक होता है कि आप उसे अपने भीतर साध नहीं पाते और आपको निरन्तर ऐसे पात्रों की खोज रहती है जिनमें आप उस स्रोत का प्रवाह उँडेलते चलें। राह-चलते, आँख-दीखे प्रत्येक घट, कलश और कटोरे को आप अपने स्नेह-

जल से भरते जाते हैं और जितना ही अधिक आप दूसरों को देते हैं उतना ही अधिक प्रवाह भीतर से आता है। यह प्रवाह जितना ही अजस्र और अबाध चलता है उतना ही जीवन का उल्लास आपको मिलता है, क्योंकि प्रवाह ही जीवन की साथकता है।

"पिछली गोष्ठी में आपने उन व्यक्तियों के साथ आदान-प्रदान की बातें देखीं थी जो आपके समीपवर्ती हैं और आपको आकर्षक एवं उपयोगी प्रतीत होते हैं। और आज हम उन बहु-संख्यक व्यक्तियों के साथ आदान-प्रदान की चर्चा कर रहे हैं जिन्हें आप प्रति दिन राह-चलते अपनी आँखों से देखते हैं और जो आपके अपरिचित ही रहे आते हैं। उन अपरिचित, अज्ञातवासी और अधिकतर अनाकर्षक सभी व्यक्तियों के साथ आपका एक आन्तरिक, स्नेह-सिक्त नाता है, जिसे प्रकट रूप में जान लेना आपके लिए आवश्यक है। उस नाते को प्रकट रूप में जान लेने पर आप उसे बरते बिना नहीं रह सकेंगे और उसे बरतते चलने में ही जीवनोल्लास का एक महान् रहस्योद्घाटन है। राह-देखे ऐसे प्रत्येक व्यक्ति से, जो क्षण भर भी आपके पास बैठता है, जिसके साथ आपकी आँखें ही एक बार मिल कर रह जाती हैं—ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के साथ आप कुछ गहरा आदान-प्रदान कर सकते हैं; कर सकते ही नहीं, अपने जीवन की प्रगति के लिए करना ही आपके लिए अनिवार्य है।

"किसान जब बोने निकलता है तो वह खेत का एक इंच भी ऐसा नहीं छोड़ना चाहता जिसमें बीज का दाना न पड़े। इसी प्रकार आप जब मानवीय पारस्परिक सम्पर्क की सार्थकता को देखकर उस सम्पर्क के लिए निकलेंगे तो एक भी व्यक्ति को अछूता नहीं छोड़ना चाहेंगे। राह-चलते अपरिचित व्यक्तियों में से जो आपको कुछ सुन्दर, आकर्षक, या विनयशील लगेंगे उन्हें आप सहज ही एक मुस्कानभरी प्रशंसा या अनुराग की दृष्टि से देख लेंगे; और मानव-सम्पर्क की कला में सिद्ध होने पर आप इस एक दृष्टि में ही उनका पूरा सत्कार भी कर लेंगे। पूर्ण सत्कार की इस संक्षिप्त प्रणाली की चर्चा हम आगे कभी करेंगे।

लेकिन जो व्यक्ति आपको अनाकर्षक और अनुपयोगी दीखेंगे उनके साथ आप क्या करेंगे ?

"आकर्षक एवं उपयोगी और अनाकर्षक एवं अनुपयोगी की पहचान आप कैसे करते हैं ? जिसका चेहरा आपको सुन्दर लगता है, जिसके वस्त्र साफ-सुथरे होते हैं और जो आपके सत्कार की कोई बात कह सकता है वह आपको आकर्षक लगता है और जो इसके विपरीत होता है वह अनाकर्षक लगता है। लेकिन आकर्षक-अनाकर्षक का यह भेद बहुत ऊपरी है और अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण से ही सम्भव है। जब आप साधारण मनोरंजन और मनबहलाव के लिए किसी का सामीप्य चाहते हैं तो उसे इस दृष्टिकोण से आकर्षक पाने की कामना कर सकते हैं किन्तु जब आपका अभिप्राय अधिक गहरा और गम्भीर होता है तब आपकी दृष्टि अधिक व्यापक हो जाती है। यदि आपको अपने कारखाने में काम करने के लिए एक हजार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तो आप उनके ऊपरी चेहरे नहीं देखते और हर सुरूप-कुरूप को स्वीकार कर लेते हैं यदि उसके हाथ पैर ठीक काम करते हों। इसके आगे यदि आपका अभिप्राय और भी व्यापक है—मान लीजिए कि आप किसी चुनाव के लिए एक लाख व्यक्तियों का मतदान चाहते हैं तो आप उनके चेहरों की असुन्दरता की ही नहीं, हाथ-पांव की असमर्थता की भी चिन्ता न करेंगे। और क्या यह स्पष्ट नहीं है कि आपको, जोकि मानवीय सम्पर्क का सम्पूर्ण स्नेह-संचय करने निकले हैं, प्रत्येक व्यक्ति के मतदान और दृष्टिदान की आवश्यकता है ? निस्संदेह उस प्रसादमयी बालिका की तरह आप किसी भी मिल सकने वाले व्यक्ति को अनछुआ नहीं छोड़ सकेंगे।

"दूसरे व्यक्ति का बाह्य आकर्षण केवल उन आंखों के लिए निमन्त्रण का एक संकेत—एक सिगनल—है जो अभी भीतर नहीं देख सकतीं। इसी आधार पर मैंने पहले कहा था कि सेक्स का आकर्षण मानवीय आकर्षण का सब से चौड़ा और इसीलिए सब से सुगम द्वार

है। सुन्दर वस्त्राभूषणों में सजी तरुणी साधारण आंखों को सुन्दर लगती है। लेकिन पारखी आँखें जानती हैं कि उसका यौवन-सौन्दर्य उन वस्त्रों के पार, उनके भीतर ही है। उससे भी आगे चल कर जीवन-दृष्टि से सम्पन्न आँखें जानती हैं कि सौन्दर्य दूसरे व्यक्ति की आकृति में नहीं उसकी चेष्टा में, उसके भीतर से उठने वाले स्पन्दन में है। जिस सुन्दरी की आँखों में निमन्त्रण न हो, स्वीकृति न हो, आपके आह्वान के प्रति कोई प्रतिक्रिया न हो वह कितनी देर तक आपको सुन्दर लग सकती है? अनिन्द्य सौन्दर्य की आकृति में ढली रबर या सेल्यूलाइड की बनी, आन्तरिक स्पन्दन से रहित स्त्री आपको कहाँ तक आकृष्ट कर सकती है? स्पष्ट है कि सौन्दर्य का आसन बाह्य आकृति में नहीं, व्यक्ति के भीतर ही है; और यह देख लेने पर इस बात की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है कि अनाकर्षक दीखने वाले व्यक्ति के भीतर भी वह सौन्दर्य हो जो आपको कृतार्थ कर सकता हो। अगली गोष्ठी में हम इसे और भी स्पष्ट देखने का प्रयत्न करेंगे।" ★

चौंतीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जो व्यक्ति आपको सुन्दर और उपयोगी लगता है उसकी ओर आप आकृष्ट होते हैं और जिसे आप सुन्दर-उपयोगी लगते हैं वह आपकी ओर आकृष्ट होता है। दूसरों की ओर आकृष्ट होने में सुख है तो दूसरों के अपनी ओर आकृष्ट होने में भी एक सुख है, भले ही वह कुछ भिन्न प्रकार का हो। विकास की एक मंज़िल तक मनुष्य उन्हीं के सम्पर्क में सुख पाता है जो उसे अच्छे लगते हैं। उस मंज़िल के भीतर प्रायः ऐसा भी होता है कि वह स्वयं जिन्हें अच्छा लगता है

उनके प्रति उदासीन, विरक्त या कभी कभी असहिष्णु भी हो जाय। आप किसी को सुन्दर लगते हैं, इसलिए वह आपसे प्रेम करता है, किन्तु आप उसका सम्पर्क नहीं चाहते। ऐसा तभी होता है जब आप दूसरे को अपनी तुलना में कुरूप, हीन या अयोग्य गिनते हैं; या तब जब कि आप अपने भीतर उस व्यक्ति का अभीष्ट सत्कार करने का सामर्थ्य नहीं देखते। जब दूसरे व्यक्ति को आप अपने से हीन देखते हैं तो उसके समीप आने और बराबरी से बैठने में आपको चिढ़ लगती है और जब आप देखते हैं कि उसका मांगा हुआ सत्कार आप उसे नहीं दे सकते या वैसा सत्कार कुछ दूसरे अधिक योग्य व्यक्तियों के लिए ही आपने आरक्षित कर दिया है तो भी आप उसे दूर ही रखना चाहते हैं। ये दोनों परिस्थितियाँ आपकी संकीर्णता और अदर्शन का ही परिणाम हैं। ठीक दर्शन और सहज सहृदयता के आधार पर स्थित क्या कोई ऐसी तुला हो सकती है जिस पर तोल कर आप किसी दूसरे व्यक्ति को हीन और अस्पृश्य घोषित कर सकें? यह असम्भव है। और जब दूसरे व्यक्ति का सत्कार करने में आप स्वयं को असम्पन्न पाते हैं तब तो स्पष्ट रूप में ही अपनी अल्पता को स्वीकार करते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी दूसरे को आप हीन, अयोग्य या अपने सत्कार का अनधिकारी तभी तक समझ सकते हैं जब तक आपमें ही वैसी कमी है। जब उस कमी की सीमा के बाहर आप आ जायँगे तब कोई भी आपको कुरूप, हीन या सत्कार का अनधिकारी न प्रतीत होगा और उसके सत्कार के लिए आपके पास यथेष्ट सम्पन्नता भी सदैव विद्यमान होगी।

"अब आप इस दूसरी स्थिति में पहुँच गये हैं। इससे पहले आपको उनका ही सम्पर्क प्रिय लगता था जिनके आप प्रशंसक थे, कृतज्ञ थे, जिनसे आपको कुछ प्रेरणा मिलती थी। लेकिन अब आपके चारों ओर एक बड़ा या छोटा वर्ग ऐसा है जो आपका प्रशंसक और आपका कृतज्ञ है, जिसे आपसे कुछ प्रेरणाएँ मिलती हैं। ऐसे व्यक्तियों के

सम्पर्क का सुख क्या कुछ कम है? वास्तव में प्रशंसित की अपेक्षा प्रशंसक के और प्रेरक की अपेक्षा प्रेरित के सम्पर्क में अधिक सुख है। सुन्दर मूर्ति का शृङ्गार करने में सुख है किन्तु अनगढ़ मूर्ति के भीतर से सौन्दर्य का निखार करने में उससे दूना सुख है। कल्पना कीजिए कि आप एक कुशल मूर्तिकार हैं और गीली मिट्टी को सुन्दर आकारों के रूप दे सकते हैं। उस दशा में क्या आपको मिट्टी का कोई भी पिण्ड—वह कैसा भी टेढ़ा-मेढ़ा क्यों न हो—अप्रिय या अग्राह्य लगेगा? जब कोई व्यक्ति आपके किसी गुण का हृदय से प्रशंसक होता है तो, ऊपर से वह कितना ही कुरूप या हीन हो, उस प्रशंसा या ग्राह्यता के नाते ही उसकी कुरूपता और हीनता का एक पर्त फट जाता है और आपके प्रशंसित गुण की एक हलकी तह उसके भीतर चढ़ जाती है। आपका प्रशंसक होते ही वह कुछ सुन्दर, कुछ समृद्ध हो जाता है और यदि आपकी आँखें देखती हैं तो यह असम्भव है कि वह आपको प्रिय न लगे।

"प्रशंसा प्रत्येक व्यक्ति को प्रिय लगती है। आपका प्रशंसक कुरूप या हीन हो तो भी एक बार आप दृष्टि उठाकर उसे देख लेते हैं और उसकी प्रशंसा में रस लेने का प्रयत्न करते हैं। प्रशंसा-प्रियता ऊपरी धरातलों पर दर्प, आडम्बर और छिछलेपन की द्योतक हो सकती है, लेकिन भीतरी तहों में वह शुद्ध और सृजनात्मक है। भीतरी तहों में प्रशंसा का अर्थ है: आवाहन; और उस आवाहन का उत्तर है: अभिषेक। वहाँ जब कोई व्यक्ति आपकी प्रशंसा करता है तो आपके गुण या सौन्दर्य का अपने भीतर आवाहन करता है और उसके उत्तर में आप तुरन्त अपने गुण या सौन्दर्य में उसे नहला देते हैं। वह स्वयं किसी सीमा तक आप-जैसा हो जाता है। आपके द्वारा अभिषिक्त वह प्रशंसक आपका कृतज्ञ होता है और उसे आपसे और भी प्रेरणा मिलती है। और प्रेरणा मनुष्य की समस्त कुरूपताओं और हीनताओं से मुक्ति का द्वार खोल देती है। प्रशंसा, कृतज्ञता, प्रेरणा, मुक्ति। दूसरों के

साथ आन्तरिक सम्पर्क की इस प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर जो प्रतिस्पंदन आपके पास लौटकर आता है वह उत्तरोत्तर रुचिकर भी होता है और उपयोगी भी; क्योंकि वह सृजनात्मक ही होता है। यदि आपने अपनी सहृदयता की अनुभूति जगा ली है तो आप सदैव अपने सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों के साथ इस प्रक्रिया में व्यस्त हैं। आप कुरूपों और हीनों को निरन्तर सुन्दर और सम्पन्न और फिर सुन्दरतर और सम्पन्नतर बना रहे हैं। मैं निरन्तर ऐसा कर रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि आप सुन्दरतर और सम्पन्नतर होते जा रहे हैं। यदि मैं ऐसा कर सकता हूँ और ऐसा होते देख सकता हूँ तो मेरी दृष्टि में आया हुआ कोई व्यक्ति कुरूप, हीन और अवांछनीय कितनी देर तक रह सकता है? एक पल भी नहीं। मेरा उल्लास उसके रूप को निखारने और उसे एक-एक पग अपने समीप लाने में ही है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि गुण और सौन्दर्य का सृजन करने वाली दृष्टि जागने पर कोई भी आंखों-देखा और कानों-सुना अपरिचित से अपरिचित व्यक्ति ऐसा नहीं हो सकता जिसकी आपको आवश्यकता न हो। दूसरों को कुरूप या हीन तथा अपने को अधिक सत्कार करने में असमर्थ देखने की आप जो कल्पना प्रायः करते हैं वह भ्रमात्मक है और आपके अदर्शन की उपज है। जब तक आप समझते हैं कि आपके घर में केवल एक घड़ा पानी है तब तक आप बाहर वाले प्यासों के लिए अपने द्वार बन्द रखते हैं किन्तु ज्योंही आपको पता लग जाता है कि आपके आँगन में पानी का स्रोत है त्योंही आप अपने द्वार खोल देते हैं और घर की अटारी पर चढ़ कर प्यासों को टेर लगाते हैं। वास्तव में आप संसार के प्रत्येक कुरूप, हीन और तृषित का सत्कार कर सकते हैं, करने में ही आपके जीवन की सार्थकता है और इसीलिए आपको उनमें से प्रत्येक की आवश्यकता है।

"लेकिन हम इन बातों को बिलकुल व्यावहारिक धरातल पर देखना-समझना चाहते हैं, इसलिए आप कह सकते हैं कि ऐसी

गुण-सौन्दर्य का सृजन करने वाली दृष्टि और सबका भरपूर सत्कार करने की क्षमता आप अपने भीतर नहीं देखते। आप ऐसा कहें तो मैं आपकी धारणा बदलने के लिए बहस नहीं करूँगा। मेरे और आपके कथन में अन्तर सम्भवतः यही होगा कि आप अपने को वहाँ तक पहुँचा हुआ मानते हैं जहाँ आपके पैर पहुँच गये है, और मैं आपको वहाँ तक पहुँचा हुआ मानता हूँ, जहाँ आपकी दृष्टि पहुँच गई है। प्रगतिशील व्यक्ति वास्तव में वहाँ है जहाँ उसकी दृष्टि है; पैरों के भी वहाँ पहुँचने में देर नहीं है। दूसरों के साथ आपके गहरे सम्पर्क की क्षमताओं और सम्भावनाओं को लेकर जो कुछ मैंने आपसे कहा है उसकी व्यावहारिक सार्थकता आप शीघ्र ही इन गोष्ठियों का वर्ष पूरा होते-होते देख लेंगे।" ★

पैंतीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"पिछली तीन-चार गोष्ठियों में हमने यह देखने का प्रयत्न किया है कि आकर्षक और चुने हुए तथा अनाकर्षक और सर्वसाधारण दोनों वर्ग के व्यक्तियों के सम्पर्क की आप को आवश्यकता है। पहले वर्ग के चुने हुए व्यक्तियों के साथ आपका सम्पर्क कैसे अधिकाधिक आदान-प्रदान-पूर्ण तथा सफल हो सकता है यह भी आप बहुत कुछ देख चुके हैं। लेकिन अनाकर्षक और सर्वसाधारण के साथ आपका सम्पर्क क्या और कैसे हो, यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुआ। चुने हुए आकर्षक व्यक्तियों के साथ आपका सम्पर्क अधिकाधिक घनिष्ठ और दूर तक चलने वाला हो सकता है, लेकिन क्या अपरिचित, अनन्त-संख्यक सर्वसाधारण के साथ भी ऐसी घनिष्ठता और दूर तक का साथ सम्भव या आवश्यक है ? स्पष्ट है कि उनके साथ ऐसा नाता सम्भव नहीं है और इसीलिए

व्यावहारिक तथा आवश्यक भी नहीं है। इसका अर्थ केवल यही है कि उनके साथ बाह्य वस्तुओं का, ऊपरी रुचियों एवं आवश्यकताओं का आदान-प्रदान नहीं हो सकता, लेकिन गहरा आन्तरिक आदान-प्रदान हो सकता है और वह अत्यन्त आवश्यक है। वैसे आदान-प्रदान के लिए अधिक समय की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तत्क्षण और सम्पूर्ण होता है—उसके आगे लेने-देने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। आवश्यक नहीं कि उसे आपका और आपको उसका नाम-पता या सूरत-शकल याद रहे। आप दोनों के बीच जिस वस्तु का आदान-प्रदान हुआ है उसका ध्यान भी आपको न रहे, यह भी पूर्णतया सम्भव है। किसी के साथ पारस्परिक सम्पर्क की ऐसी अनुभूति एक असाधारण, आश्चर्यजनक अनुभूति है। स्मृति के भार से मुक्त सम्पर्क ही गहरा और पूरा सम्पर्क है। वह आपके हृदय की पूर्वकथित पहली और दूसरी मंजिल से आगे, तीसरे रिक्त किन्तु सृजनशील आँगन का सम्पर्क है और उसका प्रभाव भी अमिट एवं चिरगुणनशील है। ऐसे सम्पर्कों की अनुभूति आप अपने दैनिक जीवन में बराबर करते हैं किन्तु उनकी एक अत्यन्त सार्थक विशेषता यह है कि उनकी स्मृति आपके साथ नहीं रहती। वैसी एक अनुभूति की स्मृति यदि आपके मानस-पटल पर उभरी रह जाय तो दूसरी अनुभूति के लिए वह यथेष्ट स्वच्छ नहीं रह जायगा और कुछ ही समय में वह स्मृति की उभरी रेखाओं से इतना भर जायगा कि अगली अनुभूतियां उसके लिए दुष्कर हो जायँगी। इसीलिए स्मृति का अभाव एक बड़ा वरदान है।"

"हम फिर एक बिलकुल नई बात सुन रहे हैं: जिस सम्पर्क की हमें स्मृति न रहे वह बहुत गहरा और समृद्धिकारक सम्पर्क है। और आप कहते हैं कि ऐसे गहरे सम्पर्क का अनुभव हम अपने दैनिक जीवन में बराबर करते हैं। लेकिन जब उस सम्पर्क की स्मृति ही हमारे पास नहीं रहती तो उसकी उपयोगिता हमारे लिए कैसे रह जाती है?" दूसरे आसन की महिला ने पूछा।

"आप एक बन्द कमरे में सोये हुए हैं। आपका मित्र आता है और कमरे की बन्द खिड़कियाँ खोल देता है। पड़ोस के बगीचे की शुद्ध, सुगन्धित वायु कमरे में आने लगती है। सुबह आप जागते हैं। रात भर जिस शुद्ध, सुगन्धित वायु में आपने साँस ली है उसके सुख-स्पर्श की स्मृति आपको नहीं है। तो क्या उसका कोई सुख-उपयोग भी आपने नहीं किया है? निस्संदेह उस खुली वायु के स्पर्श के कारण आप अधिक स्वस्थ और तरोताज़ा हैं। अचेतन रूप में आपने उस स्पर्श को ग्रहण किया है और ध्यान से देखें तो स्मृति के अभाव में भी वह स्पर्श अचेतन नहीं है। इस अचेतन प्रतीत होने वाले सम्पर्क को हम अपने चेतन की सीमा में लाकर देखने का प्रयत्न करेंगे, यद्यपि ऐसे प्रयत्न की सफलता अधूरी ही हो सकती है।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा;

"दूर नगर के किसी भीड़-भरे मेले में आप एक सुन्दर स्त्री को देखते हैं। सुन्दरता उसके रूप से अधिक उसकी आंखों में है। आप देखते हैं कि उनमें एक प्यास और इसीलिए एक निमन्त्रण है। इस सुन्दरी से दृष्टि मिलते ही आपके भीतर से एक प्रतिकम्पन, एक उत्तर निकलता है। आप में भी कोई ऐसी बात है जिससे प्रेरित होकर उस ने आपको ऐसी दृष्टि से देखा है। आपकी स्मृति कुछ संग्रह करना चाहती है। आप उसके मन की पूरी बात, उसका नाम-पता, उस नगर में उसके डेरे का स्थान जानना चाहते हैं, लेकिन वह भीड़ में अदृश्य हो जाती है; आप उसकी बात सोचते रहते हैं। यह आपकी एक चेतन, एक स्मृतिपूर्ण अनुभूति है। लेकिन इस चेतन और स्मृतिपूर्ण के भीतर एक अचेतन और स्मृतिहीन अनुभूति भी आपकी है और वही वास्तव में सरस, सृजनात्मक और गुणनशील है। अपनी स्मृति की चेष्टाओं के अन्त में जब उस सुन्दरी का नाम-पता और उसके मन की पूरी बात जानने की कोई राह और इसीलिए आशा आपको न रह जायगी तब आप उसका चिन्तन छोड़ देंगे। उस समय आपके मन के भीतरी पटल पर केवल एक अंकन रह जायगा—सौन्दर्य और आकर्षण के पारस्परिक

मिलन का। जब भी आप अपने हृदय की गहराई में उतरकर देख सकेंगे, वह अंकन आपको चिरजीवी और चिरगुणनशील मिलेगा। वह अंकन अब नाम, रूप और स्थान के बन्धनों से मुक्त, अतृप्ति और अपूर्णता की कल्पनाओं से स्वतन्त्र होगा और उसकी मिठास आपके भीतर बसी हुई होगी। आवश्यक नहीं कि उस सुन्दरी का रूप और चितवन आपको याद रहे। उस दिन के सम्पर्क का यही गहरा और स्थायी अंश है। आपने उसके सौन्दर्य को और उसने आपकी अनुराग-क्षमता को प्रोत्साहन देकर जगाने का एक-एक समर्थ प्रयोग उस दिन किया था और वह अपने आपमें पूर्ण था—उसके लिए आपके पुनः मिलन की कोई आवश्यकता शेष नहीं रही थी। फिर भी वह एक अनुभूति थी; और हम किसी अनुभूति की किन्हीं भी शब्दों में चर्चा करके उसे पूरे का पूरा अनुभव में वापस नहीं ला सकते। इस प्रकार के हमारे प्रयत्न स्मृतिपरक और इसलिए अर्द्ध सफल ही हो सकते हैं; लेकिन वैसी अनुभूति हम सबकी, जिनकी सहृदयता कुछ भी जगी हुई है, दैनिक जीवन की ही अनुभूति है।

"ऊपर का उदाहरण एक ऐसे पात्र का उदाहरण प्रतीत होता है जो स्वयं सुन्दर और आकर्षक है। लेकिन वैसी अनुभूति आकर्षक और चुने हुए व्यक्ति के सम्पर्क में ही नहीं, अनाकर्षक और सर्व साधारण के सम्पर्क में भी होती है। सरसता की दृष्टि से आकर्षक और आकृष्ट में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् जो व्यक्ति आपको दान देता है और जो आपसे याचना करता है, वे दोनों ही आपको एक-सा रस देते हैं। जब आपकी सहृदयता भीतर से भरकर ऊपर तक छा जायगी तब आपको अनाकर्षक और सर्वसाधारण कहे जाने वाले वर्ग का भी प्रत्येक व्यक्ति आपका याचक और इसलिए आकृष्ट दिखाई देगा। जैसा मैंने पहले कहा, उसकी यह याचकता बहुत कुछ उसके अचेतन एवं स्मृति-विहीन धरातलों पर होगी और इसीलिए वह अधिक सुपात्र भी होगा और उसके साथ आपकी आदान-प्रदान की क्रिया भी तात्कालिक एवं सम्पूर्ण

होगी। ऐसी सम्पर्कानुभूति, जो सरसता की ही नहीं शक्तिमत्ता की भी अनुभूति होनी चाहिए, यदि हमारे दैनिक जीवन में बराबर होती रहती है और उसकी मिठास भी हमारे भीतर बनी रहती है तो क्या कारण है कि हम अपने जीवन में अनेक अभावों और कटुताओं का भी अनुभव करते हैं? अगली गोष्ठी में हम इसे देखने का प्रयत्न करेंगे।" ✱

छत्तीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"अपनी निश्चित वर्ष भर की गोष्ठियों की दो-तिहाई यात्रा हम पूरी कर चुके हैं। इन गोष्ठियों के प्रारम्भ से लेकर मध्य तक जान पड़ता था कि पारस्परिक सम्पर्क के सम्बन्ध में खोजे हुए कुछ विचारों को लेकर उन्हें एक के ऊपर एक रखते हुए हम एक ऐसी सीढ़ी बना लेंगे जिस पर चढ़ कर मानवीय सम्पर्क की चोटी पर पहुँच जायँगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। रूपक की भाषा में, हमने विचार-रूपी अनेक शिलाओं की खोज की लेकिन वे सभी शिलाएँ ऐसी नहीं हुईं कि उन्हें एक के ऊपर एक रखकर एक ऊँची पहुँच का ज़ीना बनाया जा सके। हमने सोचने, कहने और करने की विविध स्वतन्त्रताओं की बात की लेकिन उनकी दिशा में आगे नहीं बढ़े। हमने जीवन की मौलिक आवश्यकताओं, विवशताओं और उच्चतर रुचियों एवं सुखों की पूर्ति की—रोटी, रोग और राग की—बात की लेकिन उनकी अन्तिम विवेचना और उपलब्धि की सीमा तक नहीं गये। हमने अपनी रुचियों एवं आवश्यकताओं की बात उठा कर अपने पारस्परिक व्यवहार में उनके आदान-प्रदान के अभाव की चर्चा की, फिर वैसे आदान-प्रदान का

अहितकर पक्ष देखकर उससे कुछ दूर रहने की बात भी सोची। उसके आगे हमने मानवीय हृदय की उन गहराइयों की सैर की जहां तक पहुँचने के लिए बाह्य रुचि और आवश्यकता की वस्तुओं का आदान-प्रदान अनावश्यक ही नहीं किसी हद तक बाधक भी था। इन गहराइयों में हमने जीवन की मौलिक इच्छाओं-आवश्यकताओं का साक्षात्कार किया तथा उनकी पूर्ति के साधनों का सहज, अमिश्रित स्वाद भी पाया। इच्छाओं को जीवन का परम पवित्र, सहज प्रवाह मानकर हमने उनके स्रोत को खोजने का प्रयास किया और अनिच्छा को ही उनका मूलाधार पाया। जहाँ पूर्णता है वहाँ अनिच्छा है और पूर्णता में अपूर्णता की कल्पना ही अनिच्छा में इच्छाओं का सृजन कर सकती है; और इच्छाओं की इस सृजनस्थली पर ही जीवन का अभिप्रायपूर्ण खेल हम खेलते हैं। इसलिए अनिच्छा के अतल पर नहीं, इच्छाओं के धरातल पर ही हमें कुछ करना है। हम उलट कर अपनी इच्छाओं के धरातल पर आये और इसी नाते हमने निश्चय किया कि हमारा आदान-प्रदान प्रत्येक स्तर के धरातल पर अधिक से अधिक होना चाहिए। परिचित और आकर्षक के ही नहीं, अपरिचित, अनाकर्षक एव सवसाधारण के साथ भी हमारा आदान-प्रदान अधिक से अधिक होना चाहिए, और हमने देखा कि वह किस प्रकार हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य के पास ऊपर जो कुछ दिखाई देता है उससे कहीं अधिक सुन्दर और बहुमूल्य उसके भीतर विद्यमान है, जिसका आदान-प्रदान ही समाज की समृद्धि का मार्ग है। लेने की इच्छा वास्तव में आपकी देने की इच्छा का ही प्रतिबिम्ब है, इसलिए आदान-प्रदान का व्यापार याचना एवं हीनत्व की भावना से ऊपर उठकर सत्कार एवं सम्पन्नता के धरातल पर ही होना चाहिए। ये सब बातें आपने इन चर्चाओं में देखी हैं। और प्रायः एक के समर्थन में दूसरी का खंडन-सा होता पाया है। किन्तु यह उनका पारस्परिक विरोध नहीं, केवल विरोधाभास है। हमारी किसी चर्चा ने यदि पहली चर्चा का समर्थन या विस्तार

नहीं किया तो उसने उसके ऊपर नहीं बल्कि बगल में एक दूसरी शिला रखने का ही उपक्रम किया है, जिस पर एक दूसरा ज़ीना पहली से कम या अधिक ऊँचाई का उठाया जा सकता है। वास्तव में हमने इन गोष्ठियो में कोई एक ज़ीना नहीं, अनेक ज़ीनों की एक-एक, दो-दो सीढ़ियाँ बनाने का ही प्रयत्न किया है और इनकी भूमिका पर कोई ऊँची सँकरी मीनार नहीं, एक विस्तृत, अनेक अटारियों वाला भवन ही तैयार होना है। इसीलिए मैं आपको यह संकेत देना चाहता हूँ कि आप इन गोष्ठियों में प्रस्तुत विचारों में क्रमिकता या एक दिशान्तक उठान को खोजने का प्रयत्न न करें। एक वर्ष की चर्चाओं के भीतर हम नींव के विविध स्थलों पर शिलाएँ जमाने का कार्य ही कर सकते हैं और वही यथेष्ट भी है। इस वर्ष की चर्चाओं में हम जितना कुछ देख सकेंगे वह हमारे अगले वर्षों के कार्य के लिए सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करेगा। पारस्परिक सम्पर्क के क्षेत्र में जिस परम रोचक एवं परम उपयोगी की हमें खोज है उसका यथेष्ट आभास हमें इस वर्ष के अन्त तक मिल जायगा।

"यह भी सर्वथा स्वाभाविक है कि हार्दिकता की जिन गहराइयों की थाह लेने का हमने इन गोष्ठियों के मध्य-भाग में प्रयत्न किया है उनका कोई स्पष्ट अंकन आपके मन पर न उभरा हो। व्यावहारिक आदान-प्रदान की जो चर्चाएँ हमें अब करनी हैं उनके लिए उसकी अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं है। फिर भी उस चर्चा से अभय, समृद्धि और अन्तिम सफलता का एक स्पष्ट या अर्द्धस्पष्ट आश्वासन आपको अवश्य प्राप्त हुआ है और आपने किसी हद तक अनुभव किया है कि अभीष्ट इच्छाओं की सफलताओं और विफलताओं के पार अन्ततोगत्वा जीवन की रोचकता और तृप्ति आपको मिलनी ही है। अनिच्छा की जिस सबसे निचली शिला को आपने मेरे साथ अपने पांव के अंगूठे से एक बार छूने का उपक्रम किया है उसका स्पर्श भले ही अभी आपको अरोचक लगा हो, लेकिन उससे इतना आश्वासन आपको अवश्य

मिला है कि जीवन की सरिता में तैरते-तैरते जब भी आप थकान या टूटन का अनुभव करें, तुरन्त अपने पांव उस शिला पर टिकाकर दम ले सकते हैं; और वह शिला इतनी नीची नहीं है कि उस पर सीधे खड़े होकर आपकी गर्दन पानी के ऊपर न रह सके।

"अपने जीवन की मौलिक आवश्यकताओं, अपनी विवशताओं और ऊँचे से ऊँचे सम्भावित सुखों की—रोटी, रोग और राग की—चर्चा में हमने देखा था कि इन तीनों में हमारी सबसे बड़ी समस्या रोग या विवशताओं की ही है। इस रोग का सबसे व्यापक रूप यह है कि हम सोचने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इस बात को प्रकारान्तर से मैं यों भी कह सकता हूँ कि हम 'न सोचने के लिए' भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है। मैं आपके सामने एक नया विचार प्रस्तुत करता हूँ और आप उसे सुनकर सिहर उठते हैं। उसे आप अति उग्र, भयानक, अनैतिक या अत्यन्त गूढ़ एवं आध्यात्मिक मानकर उसके भीतर उतरने से इनकार कर देते हैं। यह आपकी सोचने की असमर्थता या परतन्त्रता का उदाहरण है। दूसरे अवसर पर मैं आपके सम्मुख किसी मधुर-मदिर आसव का एक ग्लास प्रस्तुत करता हूँ, और एक हजार तर्क आपके और उस ग्लास के बीच उपस्थित होकर उस रस-पान में आपके लिए बाधा खड़ी कर देते हैं। उन बाधक विचारों को न सोचकर आप उस आसव का स्वाद लेने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं, यह आपकी न सोचने की असमर्थता या परतन्त्रता का उदाहरण है। हम देख चुके हैं कि स्वाद का अभाव हमारे जीवन का एक मौलिक अभाव है और अभिश्रित स्वाद की प्राप्ति में हमारे तर्क-वितर्क एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। अगली गोष्ठी में हम इस स्वाद के प्रश्न को ही दैनिक व्यवहार के धरातल पर यथेष्ट विस्तार के साथ लेंगे।" ★

सैंतीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जीवन में जो वस्तुएँ हमें प्राप्त हैं उनका सहज, अमिश्रित स्वाद हमें प्राप्त नहीं है; और हम देख चुके हैं कि इसीलिए हम अन्तर्बाह्य रूप में क्षीणकाय और दरिद्र हैं। समाज में प्रचलित अतृप्ति, अति संग्रह और अभावों का भी यही कारण है। हमें यह स्वाद क्यों नहीं मिलता और कैसे मिल सकता है, इसी पर आज विचार करना है। पिछली गोष्ठी में इसका एक कारण हमने यह देखा था कि हम वस्तुओं के प्राप्त होने पर उनके सम्बन्ध में उठे अगणित तर्कों-वितर्कों और आशंकाओं में घिर जाते हैं और उनकी चिन्ताओं में प्राप्त वस्तु का स्वाद हमारे लिए खो जाता है। लेकिन स्वाद-हानि का वही एक कारण नहीं है।

"अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए हम उदाहरण स्वरूप बाह्य और मानसिक जगत् की दो वस्तुओं को लेंगे—रोटी को और मनुष्य को। रोटी और दूसरे मनुष्य का सम्पर्क, ये दोनों हमारे जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण, अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, लेकिन इनका सहज-अमिश्रित स्वाद हमें प्राप्त नहीं है। ऐसा क्यों है? मानव-समाज का एक वर्ग, सम्भवतः बहुत बड़ा वर्ग, ऐसा हो सकता है जिसे यथेष्ट मात्रा में रोटी और दूसरे व्यक्ति का सम्पर्क प्राप्त न हो—इन दोनों वस्तुओं की उसके लिए वास्तविक कमी हो। लेकिन एक वर्ग ऐसा भी है जिसे ये वस्तुएँ यथेष्ट मात्रा में प्राप्त हैं, किन्तु वह इनके स्वाद से वंचित है। यहाँ उपस्थित हम ग्यारहों व्यक्ति निस्संदेह इस दूसरे वर्ग के ही व्यक्ति हैं। जिस स्तर के नागरिक समाज में आप रहते और चलते-फिरते हैं उसका सत्तर-अस्सी प्रतिशत इस दूसरे वर्ग का ही अंग है, जिसे इन वस्तुओं का नहीं, इनके स्वाद का ही अभाव है। आपके आसपास किसान और मजदूर वर्ग के अधिकांश गरीब और शोषित कहे जाने वाले

व्यक्ति इसी दूसरे वर्ग में आते हैं। इस प्रसंग में रोटी से मेरा मतलब रोटी से ही है, उसके साथ चलने वाले दाल-साग और घी-शकर से नहीं।

"रोटी के स्वाद से आप वंचित क्यों हैं? पहला कारण यही है कि आप रोटी में कोई स्वाद नहीं मानते या उसे अत्यन्त नगण्य मानते हैं। रोटी जब तक घी चुपड़ी न हो और उसके साथ दाल-साग और शकर की कटोरियां न हों तब तक वह आप की दृष्टि में अरुचिकर और व्यर्थ की वस्तु है। रोटी जब आपके सामने आती है तो आप दाल-साग और घी-शकर की बात सोचते हैं। आज के नव-निर्मित स्वास्थ्य-ग्रन्थों में आप संतुलित भोजन की बात पढ़ते हैं और सोचते हैं कि रोटी के साथ यदि दाल-साग और घी-शकर का निर्दिष्ट अनुपात न रहा तो रोटी आपको नुकसान कर जायगी। लेकिन रोटी में अपना एक अतीव रुचि-कर असाधारण स्वाद है और यदि आप उस स्वाद को निर्द्वन्द्व भाव से ग्रहण कर सकें तो उसमें आपके शारीरिक निर्वाह के लिए आवश्यक सम्पूर्ण पोषण भी विद्यमान है। अलबत्ता उस स्वाद और पोषण को प्राप्त करने के लिए जीवन-निर्वाह की सहज प्राकृतिक शैली की आव-श्यकता है। रोटी का स्वाद न मिलने का कारण अब आपके सामने स्पष्ट है। आप रोटी को नगण्य और स्वादहीन मानकर उसके चारों ओर अनेक वस्तुओं को जोड़-बटोर कर रखना चाहते हैं और आपका चित्त उन दूसरी वस्तुओं के अभाव में चिन्तित या उनके संग्रह में संलग्न रहता है। प्राप्त रोटी के औचित्य-अनौचित्य, उसके उपयोग से होने वाली कल्पित हानियों और अगले दिन सम्भव रोटी के अभाव की बातों में ही आप उलझे रह जाते हैं।

"अब दूसरा प्रश्न लीजिए। रोटी का यह खोया हुआ स्वाद आपको कैसे पुनः प्राप्त हो? सहज स्वाद का स्रोत सच्ची भूख में है, और परि-स्थिति यह है कि हमारी सच्ची भूख कुण्ठित हो गई है और कृत्रिम भूख ने उसका स्थान ले लिया है। उस सच्ची भूख को आप पहले तीव्र करें। कैसे? आपके सामने भोजन के समय अगली बार जो थाल आये,

उसमें रोटी से भिन्न दाल-साग और घी-शकर की जो कटोरियाँ हों उन्हें उठा दें और तब देखें कि रूखी रोटियों को खाना आप पसंद करेंगे या नहीं। यदि रूखी रोटी खाना आपको अरुचिकर जान पड़े तो पूरे थाल को ही अपने पास से उठा दें और दूसरे समय की प्रतीक्षा करें। एक बार भोजन न करने से आप दुबले हो जायँगे, ऐसी चिन्ता न करें और ऐसी चिन्ता आपके पल्ले बँध ही जाय तो उसे बँधी रहने दें, उस चिन्ता की चिन्ता न करें। समय पर उसकी निर्मूलता आप स्वयं ही देख लेंगे। अगले कुछ घंटों बाद जब भूख का तकाज़ा फिर आये तो रूखी रोटियों का थाल मँगवालें। मान लीजिए कि थाल में आपकी प्रचलित खूराक की चार रोटियाँ हैं। बहुत सम्भव है कि चार रोटियाँ आपकी वास्तविक खूराक से अधिक हों और आपका काम तीन में ही चल जाय। थाल की चार रोटियाँ आपको खा ही लेनी हैं, ऐसा कोई पूर्व संकल्प अपने मन में न बँधने दें और उसमें से एक रोटी बच सके तो उसे किसी दूसरे अधिकारी के लिए बच जाने दें। इस प्रयोग द्वारा आप अपनी प्राकृतिक भूख और रोटी के अमिश्रित असाधारण स्वाद की खोज कर लेंगे और उसका पूर्णाङ्ग पोषण भी आपको प्राप्त होगा। रोटी का स्वाद खोजने की सिफारिश करके मैं दाल-साग और घी-शकर के बहिष्कार की बात नहीं कह रहा हूँ। इन वस्तुओं का भी आपके भोजन में उपयोग और स्थान है और जिस मात्रा तक आप इन्हें अपने सहज श्रम द्वारा कमा सकें कमायें और प्रयोग में लायें। लेकिन इन्हें रोटी का स्थान लेकर उसे पदच्युत न करने दें। यदि ये अन्य वस्तुएँ आपको कभी अप्राप्त या कम प्राप्त हों तो इनकी अधिक चिन्ता न करें। आवश्यक अनुपात से बाहर इनका उपार्जन और उपयोग हानिकर भी हो सकता है और इनके अतिरिक्त उपार्जन के बदले आप रोटी का अतिरिक्त उपार्जन करके समाज का अधिक हित कर सकते हैं। उन अतिरिक्त उपार्जित रोटियों से आप समाज की अधिक उपयोगी दावतें कर सकते हैं; दूसरों को भी रोटी

का अमिश्रित, पुष्टिकर स्वाद दे सकते हैं। वास्तव में समाज में अभी घी-शकर की अपेक्षा रोटियों की अधिक कमी है और रोटियों का स्वाद तो और भी अधिक दुर्लभ है। जब आप स्वयं रोटियों का स्वाद पाकर उसके पौष्टिक तत्व से पोषित होंगे तो दूसरों को भी उसका स्वाद और पोषण देने की स्थिति में हो जायँगे। आपके घर पकी हुई कुछ अतिरिक्त रोटियाँ दूसरों को निमंत्रित करने का साधन बनेंगी और मानव-सम्पर्क का एक अत्यन्त उपयुक्त माध्यम आपको उन रोटियों के रूप में मिल जायगा। रोटियों से आगे, और उन्हीं के सहारे आप दूसरे मनुष्यों के सम्पर्क का—एक शब्द में, मनुष्य का—अमिश्रित, असाधारण एवं और भी ऊँचा स्वाद लेने की स्थिति में पहुँच जायँगे। मनुष्य के लिए दूसरे मनुष्य से बढ़कर स्वादिष्ट कोई भी वस्तु नहीं है। हमारी आन्तरिक दरिद्रता यही है कि हम मनुष्य के निरावरण अमिश्रित स्वाद से वंचित हैं। जो बातें मैंने रोटी के स्वाद के सम्बन्ध में कही हैं वे ही मनुष्य के स्वाद पर भी लागू होती हैं। रोटी का स्वाद पाने के लिए जिस प्रकार रोटी को अन्य वस्तुओं की भीड़भाड़ से मुक्त करने तथा उसकी अतिरिक्त मात्रा को भी दूर रखने की आवश्यकता है उसी प्रकार मनुष्य के आवरणों को उतार कर, उसके भी अति सम्पर्क से दूर रहने का प्रयास हमें करना होगा। तभी हम मनुष्य का स्वाद पा सकेंगे। अगली गोष्ठी में हम इसे कुछ विस्तार के साथ देखेंगे।" ★

अड़तीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"रोटी का स्वाद पाने के लिए आवश्यक है कि हम पहले उसे घी-शकर और दाल-मसालों के मिश्रण से, और फिर उसकी अति

मात्रा से भी उसे मुक्त करके खायें। रोटी जब स्वादवर्द्धक कही जाने वाली वस्तुओं से अलग करके और केवल आवश्यक मात्रा के भीतर खाई जायगी तभी उसके स्वाद से आप परिचित हो सकेंगे। इसी प्रकार मनुष्य का स्वाद पाने के लिए भी आवश्यक है कि आप उसे उसके वाह्य आडम्बरों और आवरणों से मुक्त कर उसके अति-सम्पर्क से बचते हुए ही उससे मिलने का अनुष्ठान करें। अति-सम्पर्क और आन्तरिक सम्पर्क दो सर्वथा भिन्न बातें हैं। पकवानशाला में चौबीस घंटे रहकर आप पकवानों का अति-सम्पर्क प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन उनका आन्तरिक सम्पर्क आपको तभी मिलेगा जब आप उनकी कुछ मात्रा लेकर अपने पेट तक पहुँचाएँगे। मित्रों और स्वजनों से मिलना और बातचीत करना आपके जीवन का एक प्रिय व्यापार है। आपके पारस्परिक सम्पर्क का बहुत बड़ा भाग पास बैठने और तरह-तरह की बातचीत करने में समाप्त हो जाता है, किन्तु क्या वह मिलन आपका वास्तविक मिलन है? उस मिलन में क्या आप किसी गहरे आदान-प्रदान, किसी प्रगाढ़ आलिंगन के सुख का अनुभव करते हैं? स्पष्ट है कि आपका यह मिलन अत्यन्त वाह्य, औपचारिक और इसलिए नीरस होकर रह जाता है। मिलन की सरसता और समृद्धि को पाने के लिए आवश्यक है कि आपका यह अनावश्यक, अनान्तरिक मिलन बन्द हो। आप तब तक के लिए उनसे दूर जा बसें जब तक उनके वियोग की वेदना और नवीन सम्पर्क की ललक उनके पास जाने के लिए आपको विवश न करदे, जब तक आपके पास उनसे कहने-सुनने के लिए कोई गहरी बात, लेने-देने के लिए कोई भीतरी वस्तु छलकने न लगे। स्वजनों के सम्पर्क का वास्तविक स्वाद आपको तभी मिलेगा जब आप उनसे कम से कम मिलेंगे और जब मिलेंगे तो भीतर से भरे हुए मिलेंगे। व्यर्थ की गपशप, दुनिया भर के विषयों की चर्चाएँ और पारस्परिक छिछली आलोचनाएँ अथवा प्रशंसाएँ पारस्परिक मिलन की बहुत बड़ी कुण्ठा तथा समाज का एक अतिव्यापक अभिशाप है। इस

कुण्ठा और अभिशाप से मुक्त होकर ही हम सहज पारस्परिक जीवन का रस ले सकते हैं।

"इतना सब सोचने-समझने के बाद अब हम गहरे पारस्परिक सम्पर्क के लिए बहुत कुछ तैयार हैं। हम अपने सम्पर्क में आने वाली सभी वस्तुओं और सभी व्यक्तियों का सहज अमिश्रित स्वाद लेने के लिए प्रस्तुत हैं। हम ग्यारह व्यक्ति यहाँ उपस्थित हैं, और जैसा मैंने प्रारम्भ में संकेत किया था, यदि हम ग्यारह सचमुच हृदय की गहराई में परस्पर मिल सकें तो जीवन की कोई भी सरसता और समृद्धि हमें अप्राप्त नहीं रह सकती। उसके लिए हमें किसी बाहरी बारहवें व्यक्ति की अनुकम्पा माँगने की आवश्यकता न होगी। अलबत्ता, कृपया ध्यान रक्खें, यहाँ उपस्थित हम ग्यारह केवल ग्यारह ही नहीं हैं। हम में से प्रत्येक के कुछ ऐसे स्नेही और स्वजन हैं जो प्रीति की एकता के नाते परोक्ष रूप में पहले से ही हमारे बीच सम्मिलित हैं और इसलिए उनमें से किसी को हम बाहरी बारहवें की संख्या नहीं दे सकते। यदि मेरी इच्छा आपको भोजन कराने की है तो उसकी सूचना पाते ही मेरी पत्नी का भी हार्दिक निमन्त्रण और उसका पाक-कौशल उसमें सम्मिलित है, और यह निश्चित है कि आपको मेरे घर जो भोजन मिलेगा वह मेरे अकेले के पाक-कौशल से कहीं अधिक अच्छा होगा। इस दृष्टि से हमारे स्नेह और प्रभाव के सूत्र में गुँथी हुई स्वजनों की एक बड़ी संख्या पहले से ही हमारे बीच विद्यमान है और उसका सहयोग पाने के लिए हमें कोई नया प्रयत्न नहीं करना है।

"विगत सैंतीस सप्ताहों से हम नियमित रूप से एक साथ मिलते आये हैं, फिर भी यह कहने में मुझे संकोच नहीं है कि हमारा यह मिलन अभी तक गहरा और व्यावहारिक नहीं हुआ। अलबत्ता हमने सैंतीस सप्ताहों का यह समय व्यर्थ नष्ट नहीं किया है और इसे गहरे मिलन की तैयारी में ही लगाया है। क्या आपको स्वीकार है कि हम परस्पर व्यावहारिक गहरे मिलन की ओर अग्रसर हों?"

दो क्षण के लिए रुक कर वीरभद्र ने सभी उपस्थित जनों पर दृष्टि डाली और फिर कहना प्रारम्भ किया :

"पारस्परिक गहरे मिलन का यह व्यापार जितना सरस है उतना ही कठिन भी है। इसके मार्ग में कठोर चट्टानें हैं। पिछली गोष्ठियों में आपने जितना कुछ सुना और सोचा-विचारा है उस सबका ज्ञान और बल समय-समय पर बटोर कर आपको उन रुकावटों के भेदने में लगाना पड़ेगा। चौंकाने, उदासीन, विरक्त, हताश और विरस कर देने वाली अनेक अपूर्व-कल्पित बाधाएँ आपके मार्ग में आयेंगी और उन्हें पार कर लेने पर ही आप जीवन की सरस समृद्धि के क्षेत्र में पहुँच सकेंगे। आज मैं आपकी और उस व्यावहारिक आदान-प्रदान की ओर पहला पग बढ़ाना चाहता हूँ। आप मुझे इसकी आज्ञा दे रहे हैं?"

"हम बराबर इसी की उत्कट प्रतीक्षा में हैं। आप आगे आइये।" दूसरे आसन की महिला ने कहा।

"मेरे मन में आपसे कुछ वस्तुएँ पाने की इच्छा है। आपसे सामूहिक रूप में भी और आपमें से प्रत्येक से अलग-अलग भी। उसी प्रकार आपको कुछ देने की भी मेरी इच्छा है। विकास की उस श्रेणी पर हमारा मानव-समाज अभी नहीं पहुंचा है जहाँ आपको स्वजनों की इच्छाओं और आवश्यकताओं का स्वयं ही आभास मिलना स्वाभाविक है; इसलिए आवश्यक है कि मैं अपनी इच्छाएँ शब्दों में खोलकर आपसे कहूँ। बहुत सुन्दर और सुविधाजनक होता यदि मेरी इच्छाओं-आवश्यकताओं का ज्ञान मेरे कहे बिना आपको स्वयं ही हो जाता। किन्तु इतनी चेतना हममें अभी नहीं है। इच्छा और आवश्यकता की माँग जब दूसरे के सामने की जाती है तो उससे दूसरे को कुछ असुविधा और कभी कभी पीड़ा भी हो सकती है। किन्तु अपनी इस विकासगत विवशता को हमें सहना ही होगा। मैं आपसे कुछ पाना चाहता हूँ। सम्भव है कि उसे जान लेने पर आपको कुछ असुविधा या पीड़ा भी हो। मैं यह कर सकता हूँ कि अपनी उस चाह

को अपने मन में ही लिये रहूँ और आप पर प्रकट न करूँ। लेकिन यदि मैं ऐसा करूँ तो इससे आपकी ओर बढ़ने वाला मेरा एक पग रुक जायगा और साथ ही मेरे हृदय का एक द्वार भी, जो आपके लिए खुलना चाहिए था, बन्द हो जायगा। उस छिपाव से मेरा और आपका ही नहीं, सारे समाज का एक व्यापक अहित होगा क्योंकि मेरे मन में रुकी हुई एक इच्छा सारे समाज में संकोच और घुटन की प्रवृत्ति बढ़ायेगी। अपनी इच्छा का प्रकाशन सर्व साधारण के लिए ही नहीं, नीच से नीच पतित और ऊँचे से ऊँचे संत के लिए भी परमावश्यक है क्योंकि वही आत्म-प्रकाशन—सेल्फ़-एक्सप्रेशन—की अदम्य दैवी और मानवीय प्रवृत्ति है। ऊँचे से ऊँचा प्रेम-व्यापार, त्याग अथवा ज्ञानोपदेश क्या महापुरुषों की इच्छाओं के ही प्रकाशन—उनके सहज 'सेल्फ़-एक्सप्रेशन'—नहीं हैं? स्पष्ट है कि वैसा किये बिना वे रह नहीं सकते। इसलिए मैं भी—विकास की शृंखला में मेरा स्तर कुछ भी हो—आपके प्रति अपनी इच्छा का निवेदन उचित मानता हूँ। लेकिन अपनी वह माँग आपके सामने रखने से पहले मुझे एक क्षण का अवकाश और लेना चाहिए। मेरे अवकाश का वह क्षण आपके एक सप्ताह के बराबर लम्बा प्रतीत हो तो कृपया आपत्ति न करें। अगले सप्ताह में अपनी चाह आपके सामने रखने का प्रयत्न करूँगा। तब तक आप भी उसे सुनने के लिए कुछ और तैयार हो जायंगे।" ★

उन्तालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"मेरे मन में आपसे कोई वस्तु पाने की इच्छा है। मेरी उस इच्छा को जानने के लिए आप उत्सुक हैं। आप अभी सोचते हैं कि मेरी उस इच्छा को जानते ही आप पूरा कर देंगे और वैसा ही करने में आपको सुख मिलेगा। इतने दिनों के सम्पर्क से मेरे प्रति आपके मन में कुछ सत्कारपूर्ण धारणाएं बन गई हैं। इसीलिए आप ऐसा सोचते हैं। लेकिन जान लेने पर बहुत सम्भव है कि मेरी वह इच्छा आपके लिए असुविधाजनक निकले और मेरे सम्बन्ध में बनी हुई आपकी धारणाओं में कुछ परिवर्तन हो जाय। इसीलिए अपनी इच्छा आपके सामने रखने के पूर्व मुझे आवश्यक भूमिका तैयार करनी पड़ेगी।"

"एक स्पष्टीकरण कृपया आप करदें," दूसरे आसन की महिला ने कहा, "अपनी जिस इच्छा की बात आप कहने जा रहे हैं वह सच-मुच आपकी कोई वास्तविक इच्छा है या आप केवल विचार-दर्शन के लिए उदाहरण-स्वरूप उसे रख रहे हैं? यदि वह आपकी वास्तविक इच्छा है तो वह आपकी बिलकुल व्यक्तिगत है या सर्व साधारण की, अथवा यहाँ उपस्थित हम लोगों की किसी आवश्यकता से प्रेरित होकर आपके मन में आई है?"

"अपनी जो इच्छा मैं आपके सामने रखने जा रहा हूँ वह मेरी वास्तविक व्यक्तिगत इच्छा है, लेकिन जो चर्चाएँ हमने यहाँ उठाई हैं उनके स्पष्टीकरण के लिए वह एक अच्छे उदाहरण का भी काम करेगी। वह मेरी निजी इच्छा है, साथ ही यह भी ठीक है कि वह आप सबकी आवश्यकता-पूर्ति का मार्ग खोलने वाली है और इस प्रकार आपकी आवश्यकताओं से प्रेरित भी है।" वीरभद्र ने कहा।

"आपने कहा था कि आपकी इच्छा हम लोगों से कुछ पाने की ही नहीं, हमें कुछ देने की भी है। आपकी लेने और देने की इच्छाओं में क्या एक को आप प्रमुख और दूसरी को गौण ठहरा सकते हैं? इन दो प्रकार की इच्छाओं में किसे आप पहले रखना पसन्द करेंगे?" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने पूछा।

"लेने और देने की इच्छाओं में कौन प्रमुख और कौन गौण है, यह कहना कठिन है। वास्तव में लेने की इच्छा देने की भी इच्छा है, और देने की इच्छा लेने की भी इच्छा है। लेन और देन के बीच तात्विक रूप में कोई भेद नहीं किया जा सकता। फिर भी हम पहले व्यापार के रूप में जो कुछ दूसरे के सामने रख सकते हैं वह देने की नहीं, हमारी लेने की इच्छा ही हो सकती है—कम से कम बाह्य रूप में वह लेने की इच्छा ही प्रतीत हो सकती है। यदि मैं आपको कुछ देना ही चाहता हूँ तो भी उसके लिए मुझे आपसे पहले कुछ मांगना ही पड़ेगा। यदि मैं आपकी प्यास बुझाना चाहता हूँ तो उसके लिए मुझे पहले आपसे मांग ही करनी पड़ेगी कि आप अपना लोटा या हाथों की बँधी हुई अञ्जलि लेकर मेरे पास आयें। यदि मैं आपको कोई मीठी बात या हित की सलाह देना चाहता हूँ तो मुझे आपसे याचना करनी पड़ेगी कि आप कृपया अपना कुछ समय, कान और ध्यान मेरी बात के लिए दें। इस प्रकार अपनी जो इच्छा मैं आपके सामने रखूँगा वह पहले आपसे कुछ पाने की ही इच्छा होगी।" वीरभद्र ने कहा।

"अभी तक परदे में रखी हुई आपकी उस इच्छा के सम्बन्ध में यह सब विवेचन उपयोगी है, फिर भी हम आपकी उस इच्छा को अविलम्ब जानने के लिए उत्सुक हैं।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"इस पूर्व विवेचन के बिना मेरी उस इच्छा को आपके हृदयों में यथेष्ट स्थान मिलना संदिग्ध ही रहेगा, इसलिए इसकी विशेष आव-

श्यकता है। मेरी इच्छा आपके सामने आने से पहले मेरे समक्ष भी स्पष्ट होनी चाहिए। आपके सामने आपके भोजन का थाल है। उस पर एक कपड़ा पड़ा हुआ है। मेरी इच्छा है कि मुझे भी उसमें से कुछ भोजन मिले। लेकिन जब तक वह थाल ढका हुआ है, मैं नहीं कह सकता कि उसकी प्रत्येक वस्तु को मैं पसन्द ही करूँगा। उसे खुला देखने पर ही मैं निश्चय कर सकता हूँ कि उसमें से किन पदार्थों की मुझे आवश्यकता है और किन की नहीं है। इसलिए मेरी प्राथमिक आवश्यकता यह होगी कि आप उस थाल पर से कपड़ा हटा दें—तभी मैं अपनी इच्छित मांग आपके सामने रख सकूँगा।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"मेरी वह इच्छा व्यापक रूप में यही हो सकती है कि आप अपने थाल का वस्त्र हटादें और फिर उसमें से जो पकवान मैं चाहूँ उसमें मेरा भी भाग लगायें। यह सहज स्वाभाविक है कि मैं आपसे वे ही पदार्थ और उनकी केवल उतनी ही मात्रा चाहूँगा जिन्हें और जितना आप मुझे सुविधापूर्वक स्वयं भूखे रहे बिना दे सकेंगे। जिस दान में आपको असुविधा होगी वह मुझे भी पूर्ण आनन्ददायक और इसीलिए स्वीकार्य नहीं होगा—इतना भरोसा आप बराबर रख सकते हैं। मान लीजिए कि मेरी मांग पर आप अपने थाल का वस्त्र हटा देते हैं—अपने घर का दरवाज़ा मेरे लिए खोल देते हैं। आपके थाल में विविध मिठाइयाँ, फल और पकवान हैं; आपके घर में आपकी सुन्दर पत्नी, एक सुन्दर बहिन और कमरे की तिजोरी में दस हजार के नोट हैं। बहुत सम्भव है कि आपके थाल में से जो-जो वस्तु जितनी भी मात्रा में मैं चाहूँ आप मुझे सहर्ष, बिना किसी असुविधा के दे सकें। आप जानते हैं कि अपनी आवश्यकता के लिए आप तुरन्त ही अपनी रसोई से या कुछ पैसे खर्च करके बाजार से उन वस्तुओं की और भी मात्रा मंगा सकते हैं। आपकी बहिन के प्रति यदि मैं आकृष्ट हो जाऊँ तो सम्भव है आपको मेरे-उसके मिलने-जुलने में अधिक आपत्ति न हो।

लेकिन यदि आपकी पत्नी के प्रति मुग्ध होकर मैं उस रात तीन-चार घंटे उससे एकान्त में बात करने की इच्छा प्रकट करूँ तो आपको कैसा लगेगा ? यदि आपकी पत्नी पहले से ही मेरी कुछ प्रशंसिका हो और इस समय वह भी मेरे प्रति कुछ आकृष्ट दीखे तो सम्भवतः मेरी यह माँग आपके सामने और भी गम्भीर समस्या बन जायगी। ऐसी स्थिति में आप क्या सोचेंगे और क्या कहेंगे, यह एक बहुत ही महत्व पूर्ण प्रश्न है।"

"और तिजोरी में रखे वे दस हजार रुपये ! उनके सम्बन्ध में क्या आप कुछ नहीं चाहेंगे ?" नवें आसन के युवक ने कहा।

"रुपयों की बात तो मैं भूल ही गया। निस्संदेह उन रुपयों में से भी दो-चार हजार की मुझे आवश्यकता हो सकती है और मैं उनकी भी माँग आपके सामने रख सकता हूँ। यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने की बात है। किसी व्यक्ति को बहुत कुछ सत्कार की भावना से ही आप अपने घर निमन्त्रित करते हैं और उसके सामने अपना घर खोल देते हैं। जब उसमें से कुछ वस्तुओं की वह माँग करता है तो आप कुछ देने और कुछ न देने की ही नहीं, उस अतिथि के सम्बन्ध में अपनी धारणाएँ घटाने, बढ़ाने और बदलने की भी बात सोचते हैं। उससे आपकी सत्कार-प्रवृत्ति को प्रायः एक बड़ा आघात भी लगता है। अगली गोष्ठी में हम इसे आगे देखने का प्रयत्न करेंगे।" ★

चालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"दूसरे व्यक्ति की कुछ इच्छाओं को पूरा कर देना और कुछ की पूर्ति से इनकार कर देना सुगम है, लेकिन उसकी माँगों का सामना

करना अत्यन्त कठिन है। दूसरे की माँग का सामना करने से मेरा अभिप्राय यह है कि उसे सुन लेने पर भी आपका स्नेह और सदाशयता उस व्यक्ति के प्रति पूर्ववत् अविचलित बनी रहे। फिर आप उसकी किसी माँग को पूरा करें या न करें यह सर्वथा गौण बात है। मेरी किसी भी माँग की पूर्ति, अपूर्ति अथवा आंशिक पूर्ति पूर्णतया आपकी सुविधा और रुचि पर ही निर्भर होनी चाहिए। लेकिन उस माँग से आपके मन में उत्पन्न होने वाला क्षोभ विशेष महत्वपूर्ण और इसीलिए विशेष रूप से विचारणीय है। दो व्यक्तियों के बीच माँग और पूर्ति के सिलसिले में उठने वाला यह क्षोभ का प्रश्न मेरा या आपका वैयक्तिक ही नहीं सम्पूर्ण मानव-समाज का एक व्यापक प्रश्न है। इन गोष्ठियों में हम जो चर्चाएँ कर रहे हैं वे मित्रता या सद्व्यवहार के कुछ फ़ालतू अथवा कभी कभी काम आने वाले सिद्धान्तों की खोज करने के लिए नहीं हैं, बल्कि उनका सम्बन्ध मनुष्य की मौलिक सामाजिक अर्थात् दूसरों से सम्पर्क स्थापित करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति से है और इस तरह हमारे अध्ययन के राजनीति, व्यवसाय, धर्म आदि के समस्त विषयों से उनका गहरा सम्बन्ध है। इस बात को आप कृपया स्पष्ट रूप में अपने सामने रखलें कि हम जो चर्चाएँ यहाँ कर रहे हैं वे कुछेक नैतिक या मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए नहीं, प्रत्युत समाज के सर्वाङ्ग जीवन की मौलिक समस्या का हल खोजने के लिए कर रहे हैं। ग्राहक और विक्रेता के बीच, शासक और शासित के अथवा उपदेशक और अनुयायी के बीच किसी भी माँग और पूर्ति के सिलसिले में जो आन्तरिक क्षोभ उत्पन्न होता है वह संसार के व्यवसाय, राजनीति और धर्म को असाधारण रूप में प्रभावित, बल्कि संचालित करता है। उस क्षोभ से ही हमारी मनोवृत्ति का, उस मनोवृत्ति से हमारी व्यावहारिक प्रवृत्तियों का और उन प्रवृत्तियों से ही समाज के इस विराट् ढाँचे का, संसार की परिस्थितियों का निर्माण होता है। यह क्षोभ भली दिशाओं में जाने वाला भी हो सकता है और बुरी दिशाओं में भी।

क्षोभ की जगह यहाँ प्रतिक्रिया शब्द का भी उपयोग आप कर सकते हैं। मेरी किसी माँग पर यदि आपके मन में सत्कार, उदारता, त्याग, अनुकम्पा, उत्साह, कृतज्ञता अथवा किसी स्वस्थ आशा का भाव उठता है तो आपका वह क्षोभ या प्रतिक्रिया भली है; और यदि रोष, घृणा, भय, भर्त्सना, विविध प्रकार की आशंकाएँ अथवा मेरे साथ किसी कुटिल व्यापार की कामनाएँ उठती हैं तो वह बुरी मानी जा सकती है।

"अभी समाज में मनुष्य-मनुष्य का जितना कुछ मिलन होता है वह पर्दों में रह कर ही होता है। मैं अपनी पूरी माँग आपके सामने खुल कर नहीं रखता क्योंकि आपके प्रति मेरे मन में कुछ आशंकाएँ हैं। आपके सामने अपनी माँग का जो अधूरा अंश मैं प्रकट करता हूँ उसके आधार पर आप मेरी शेष माँग का भी मन ही मन अनुमान करके मेरा पूरा चित्र अपनी कल्पना में बना लेते हैं। मेरी अधूरी माँग का आप भी कुछ अधूरा-सा ही उत्तर देते हैं और उस अधूरे उत्तर के आधार पर मैं भी आपका एक कल्पित, पूरा चित्र अपने मन में बना लेता हूँ। अब मेरे-आपके बीच व्यवहार मेरे-आपके वास्तविक व्यक्तियों की भूमिका पर नहीं, मेरे-आपके कल्पित चित्रों की भूमिका पर ही चलता है। हम पर्दों में रहकर एक-दूसरे से सम्पर्क चलाते हैं। ऐसा सम्पर्क भी क्या सफल और सार्थक हो सकता है? यह स्पष्ट से भी अधिक है। ऐसे पर्दों में रहकर व्यवहार करना कुछ सुविधाजनक हो सकता है, लेकिन सरस और सार्थक रूप में सफल कदापि नहीं। कपट, दुराव और आशंकाओं के पर्दों में घिरे रह कर आप जीवन का मुक्त व्यापार कभी नहीं कर सकते। और जीवन की समृद्धि जीवन के मुक्त व्यापार में ही हो सकती है। यदि आप किसी दूसरे से भरपूर, उसके व्यक्तित्व की गहराई तक, उसके आन्तरिक समृद्धि-विन्दु तक मिलना चाहते हैं तो उसके पूरे व्यक्तित्व से मिलिए। उसकी दुर्बलताओं और कुरूपताओं से भी मिलिए। प्रत्येक व्यक्ति की कुछेक बीच की मानसिक सतहों में उनका निवास अनिवार्य रूप में रहता है। देखिए, आप उनका

कुछ समाधान, अनुद्विग्न भाव से उनकी कहीं स्थापना कर सकते हैं या नहीं। अपने स्वजन की दुर्बलताओं और कुरूपताओं को भी यथासम्भव स्थान देकर आप उनके आगे उससे मिलने के लिए अग्रसर हों। आगे चलने पर सम्भव है, आपको दीख पड़े कि उसकी दुर्बलताओं-कुरूपताओं में से कुछ-एक या अधिकांश का आधार आपकी ही कुछ-एक अक्षमताओं और दृष्टि-दोषों में था।

"मानवीय पारस्परिक सम्पर्क के एक बहुत गहरे प्रयोग की तैयारी हमने इस गोष्ठी की इन चालीस बैठकों में करली है, और अब शेष दस-बारह में उससे उत्पन्न किसी आश्चर्यजनक फल की आशा कर सकते हैं। इन शेष गोष्ठियों में अब हमें बड़ी सावधानी और गम्भीरता के साथ गहरे मिलन और आदान-प्रदान का प्रयोग करना है, लेकिन वस्तु के नहीं, केवल विचार के धरातल पर। इस सम्बन्ध में आपको अपना पूर्व निश्चय याद होगा। इन शेष गोष्ठियों में हम पारस्परिक आदान-प्रदान की सम्भावनाओं, उनके रूपों, उनके निर्माता साधनों और फिर उनकी रोचक उपयोगिताओं को चित्रित करके देखेंगे और यदि वह चित्र आकर्षक, उपयोगी एव व्यवहार-सुलभ प्रतीत हुआ तो उन्हें भौतिक धरातल पर वस्तु-व्यवहार के साँचे में ढालने के लिए आगे बढ़ेंगे। अभी कुछ समय के लिए अपने प्रयोग द्वारा सुलभ इस चित्र को हम अपने और संसार के निरीक्षण के लिए खुला छोड़ देंगे। हमारा यह शेष प्रयोग यदि यथेष्ट सावधानी और गम्भीरता के साथ पूरा हुआ तो इस गोष्ठी के हम ग्यारहों सदस्यों के लिए वह समृद्धि का एक समर्थ अंकुर और सम्पूर्ण समाज के लिए असंख्य बीजों वाले एक समृद्धि-वट के रूप में हमारी एक महान् देन सिद्ध होगा। आज की चर्चा एक तरह से क्षेपक, फिर भी एक आवश्यक प्रकरण के रूप में बीच में आई है। अगली गोष्ठी में हमारी बात वहीं से उठेगी जहाँ हमने उसे पिछली गोष्ठी में छोड़ा था।" ★

इकतालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"आपके घर रखे हुए दस हजार रुपयों में से चार हजार मैं लेना चाहता हूँ, आपकी नवयुवा बहिन से प्रेम करना चाहता हूँ और आपकी सुन्दर पत्नी से एकान्त में कुछ बातचीत करना चाहता हूँ। जब तक अपनी ये चाहें मैं अपने मन में रखता हूँ, आपको कोई आपत्ति या असुविधा नहीं होती। लेकिन ज्योंही मैं आपके सामने इन्हें प्रकट करता हूँ, मेरे-आपके बीच मित्रता और सौजन्य की कठिन परीक्षा आ खड़ी होती है। यह आपकी ही नहीं मेरी भी, याचित की ही नहीं याचक की भी कठिन परीक्षा का अवसर है। मेरी माँग सुनकर आप माँगी हुई वस्तु को देने के अपने सामर्थ्य को ही नहीं तोलते, मेरी मान्यता के, अपनी मान्यताओं के अनुसार, सामाजिक और नैतिक औचित्य को तथा माँग की जड़ में समाये हुए मेरे समस्त अभिप्रायों को एकदम जान लेने की बात भी सोचते हैं। मैं ये वस्तुएँ क्यों चाहता हूँ और इनके भीतर छिपा हुआ मेरा और क्या अभिप्राय हो सकता है, इस सम्बन्ध में आप अविलम्ब अपनी कुछ धारणाएँ बना लेते हैं। आप मेरी माँगों को स्वीकृत, आंशिक रूप में स्वीकृत या अस्वीकृत कर देते हैं; साथ ही उसी क्षण से मैं आपकी दृष्टि में कुछ बदला हुआ मनुष्य बन जाता हूँ। आपकी स्वीकृति या अस्वीकृति के आधार पर मैं भी आपके प्रति अपनी धारणाओं में कुछ परिवर्तन करता हूँ। जिस प्रक्रिया से मेरे और आपके मन में धारणाओं का यह परिवर्तन होता है वह हम दोनों की ही एक कठिन एवं महत्वपूर्ण परीक्षा है। प्रयोग और परीक्षण का पारस्परिक नाता अटूट है, इसलिए हमें इस परीक्षा का स्वागत ही करना पड़ेगा।

"इस प्रयोग के सम्बन्ध में मेरा प्रस्ताव यह है : आप मुझे अनु-

मति दें कि मैं अपने मन की कोई भी बात, अपनी कोई भी मांग निस्संकोच आपके सामने रक्खूँ। मेरी उस मांग पर आप शान्तिपूर्वक स्वतन्त्र मन से विचार करें और फिर अपनी निस्संकोच सुविधा के अनुसार उसे स्वीकृत या अस्वीकृत करें। आपका प्रयत्न यह हो कि मेरी मांग सुनने पर मैं आपकी दृष्टि में गिरने या बदलने न पाऊँ, मेरा प्रयत्न यह हो कि आपकी अस्वीकृत्ति पाने पर भी आप मेरी दृष्टि में गिरने या बदलने न पायें। इस गोष्ठी में की हुई अपनी पिछली खोजों को यदि हम ध्यान में रक्खें तो यह प्रयोग हमारे लिए कठिन न होना चाहिए। हम देख चुके हैं कि हमारी लेने की इच्छाएँ वास्तव में कुछ देने की ही इच्छाएँ हैं। हमारी कोई भी चाह ऐसी नहीं है जिसकी पूर्ति के बिना हम स्वस्थ और समृद्ध न रह सकते हों और इसीलिए हम किसी भी इच्छित वस्तु के आश्रित नहीं हैं। हमारी समस्त इच्छाओं की जड़ में एक महती अनिच्छा ही हमारे जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि है। अनिच्छा की पृष्ठभूमि से हमारे मन में उठने वाली इच्छाओं की मांग और अ-मांग, उनकी पूर्ति और अपूर्ति का क्षेत्र बाह्य और बहुत सीमित है, इसलिए उनका महत्व भी सीमित है। हम यह देख चुके हैं। इसलिए मांगों और अ-मांगों, स्वीकृतियों और अस्वीकृतियों के सामने हम अविचलित रूप में स्निग्ध बने रह सकते हैं, यद्यपि ऐसा करना उतना सुगम नहीं है। मैंने पहले कहा था कि आवश्यकताओं और रुचियों का आदान-प्रदान हमारे पारस्परिक मिलन के प्रयोग में बहुत बाधक होगा, और इसीलिए वैसे आदान-प्रदान से हमें अलग रहना चाहिए। लेकिन अब, जबकि हमने जीवन को काफी गहराई तक देख लिया है, मेरा निमंत्रण है कि आप उस आदान-प्रदान के लिए ही आगे आयें। इस प्रयोग द्वारा आप देखेंगे कि आपका साथी, जिसे अभी तक आपने उसके वस्त्रों के ऊपर से ही देखा था, अपने वस्त्रों के भीतर कैसा है। और साथी के रूप से अधिक आप अपनी दृष्टि को देखेंगे कि वह कहाँ और कैसी है। यह दूसरा

दर्शन आपके लिए अधिक महत्वपूर्ण होगा। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि आप सभी मुझे और इस गोष्ठी के अन्य सदस्यों को यह अनुमति दें कि हम अपनी अभीष्ट कोई भी वस्तु आपसे निस्संकोच मांग सकें, कोई भी बात पूछ सकें। उस मांग की स्वीकृति-अस्वीकृति का, उस प्रश्न के उत्तर में अपनी कोई बात प्रकट करने या गुप्त रखने का आपको पूरा अधिकार हो और आपका यह अधिकार व्यवहार में आने पर हममें से प्रत्येक को सहज, सादर भाव से स्वीकार हो। निस्संकोच मांग या प्रश्न से मेरा यह अभिप्राय नहीं कि हम अशिष्ट, छिछले, भद्दे या उच्छृंखल रूप में अपनी बात दूसरे के सामने रक्खें। अपनी मांगों और प्रश्नों में हम दूसरे व्यक्ति की सुरुचि और सम्मान का तथा अपने शब्दों की शालीनता, गम्भीरता और सदाशयता का बराबर ध्यान रक्खें। यह हमारा एक महान् प्रयोग होगा जिसमें हम अपने को व्यक्त करने की समर्थ कला का भी उपार्जन करेंगे। यह प्रयोग ऊपर से जितना सरल और सुगम प्रतीत हो सकता है वास्तव में उतना नहीं है और इसीलिए इसका फल भी हमारी वर्तमान कल्पना से कहीं अधिक मीठा और पुष्टिकर हो सकता है।

"तब फिर क्या अगली बैठक के लिए आप इस गोष्ठी के सदस्यों के प्रति अपनी मांगों की सूची बनाने का ही काम इस सप्ताह में करेंगे ? नहीं, इसकी इतनी जल्दी नहीं की जा सकती। यह इस वर्ष की गोष्ठियों के बाहर की, सम्भवतः नये वर्ष के पहले सम्मेलन की कार्यवाही का अंग हो सकता है, इन बावन गोष्ठियों के भीतर का नहीं। ऐसे आदान-प्रदान की सम्भावनाओं, जटिलताओं और फलित परिणामों पर, कल्पना और विचार के धरातल पर ही, हमें अभी कुछ और देखना है। अगली गोष्ठियों में हम उस दर्शन को ही सम्पूर्ण करेंगे।" ★

बयालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"जीवन के जिस परम रोचक और उपयोगी की खोज हम पारस्परिक मिलन के माध्यम से करना चाहते हैं उसके लिए मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने दैनिक आदान-प्रदान के कुछ प्रयोग इस स्थल पर करें। अपने इस प्रस्ताव को मैं कुछ विस्तार के साथ पिछली गोष्ठी में रख चुका हूँ। क्या वह आप सभी को स्वीकार है?"

"निस्संदेह यह एक बड़ा रोचक प्रयोग होगा। जबकि हमें किसी भी माँग को निस्संकोच अस्वीकृत करने की छूट होगी और यह भी आशा होगी कि हमारी अस्वीकृति से माँगने वाले को असन्तुष्ट न होने का कि अभ्यास करना होगा तब हममें से किसी को भी दूसरे की माँगें सुनने में आपत्ति नहीं हो सकती। हमारी अपनी माँग की दूसरे पर क्या प्रतिक्रिया होती है, यह भी अध्ययन का एक रोचक विषय होगा।" दूसरे आसन की महिला ने कहा।

"मेरा विश्वास है कि हम सभी का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में ऐसा ही है और इस प्रयोग में जहाँ तक कोई खतरे की बात न दीखे वहाँ तक हम बढ़ना ही चाहेंगे।" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"ऐसा कोई बिरला ही व्यक्ति समाज में होगा जो यह न जानना चाहता हो कि दूसरे लोग उससे क्या चाहते हैं। यदि हमें विश्वास हो जाय कि माँगने वाला अस्वीकृति का संकेत पाते ही अपनी माँग वापस ले लेगा और अपनी माँग का दूसरों के सामने प्रदर्शन कर हमें किसी प्रकार भी लज्जित या अपमानित करने की चेष्टा नहीं करेगा तो हम अवश्य ही उसकी माँग को जानना चाहेंगे।- बल्कि यह जानना तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए गौरव और उत्सुकता की बात है कि कौन-कौन से व्यक्ति उससे क्या-क्या चाहते हैं। साध्वी से साध्वी स्त्री भी, यदि वह सुन्दर और आकर्षक है और किन्हीं रूढ़ मान्यताओं में ग्रस्त

नहीं है, साधन मिले तो एक बार यह अवश्य जानना चाहेगी कि उसके परिचित और राह चलते देखने वालों में से कौन-कौन उसके रूप और आकर्षण के सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं और किस रूप में उसका सामीप्य पाना चाहते हैं। स्वयं माँगने की नहीं तो दूसरों की माँग जानने की लालसा तो हम सभी की होनी अत्यन्त स्वाभाविक है।" चौथे आसन की कुमारी जी ने कहा।

"मेरी नवयुवा पड़ोसिन ने मानव हृदय की बहुत गहरी और वास्तव में बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात इस समय कह दी है। आपने स्वयं जिस प्रयोग का प्रस्ताव उठाया है वह वास्तव में गहरे उपयोग का भी सिद्ध होगा। रोचक तो वह हमें ऊपर से भी प्रतीत होता है। मैं समझती हूँ कि यदि मेरे घर में कोई संदिग्ध व्यक्ति घुस आये और मैं उसे पुलिस में दे दूँ तो भी यदि वह बताने का प्रस्ताव रक्खे तो मैं एक बार अवश्य उसे रोक कर सुनना चाहूँगी कि वह मेरे घर में क्या लेने आया था।" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने कहा।

"तो फिर तय है कि इस प्रयोग के लिए हम सभी उत्सुकतापूर्वक तैयार हैं," वीरभद्र ने कहा। "हम इसमें आगे बढ़ेंगे। मान लीजिए कि इस स्वीकृति के आधार पर मैंने आपसे—या अधिक अच्छा हो, इसे उलट कर रक्खें, आपने मुझसे, मेरे घर में मेरी सुन्दर पत्नी, नवयुवा बहिन और दस हजार की थैली देखकर पूर्वोक्त माँगें मेरे सामने रख दी हैं। आपकी माँग पर मेरे जो उत्तर हो सकते हैं उन्हें साधारणतया इन चार धाराओं में मैं रख सकता हूँ—एक: मैं आपकी माँग को पूर्णतया स्वीकार कर दूँ; दो: उन्हें पूर्णतया अस्वीकृत कर दूँ; तीन: उन्हें कुछ घटाकर आंशिक रूप में स्वीकार कर लूँ; चार: उन्हें पूर्ण या आंशिक रूप में स्वीकार कर लूँ लेकिन अपनी ओर से कुछ शर्तों या बदले की कुछ माँगों के साथ। मेरे उत्तर की इन चार धाराओं में से पहली तीन सरल और चौथी जटिल है। पहली तीन के सम्बन्ध में हमारी सिफारिश यही हो सकती है कि आप उन्हें मेरी

तत्सामयिक सुविधा और रुचि के अनुकूल मान कर मेरी उस स्वीकृति, या आंशिक स्वीकृति को सहज भाव से ग्रहण करलें और हमारे आदान-प्रदान का वह एक प्रकरण सौजन्यपूर्वक पूरा हो जाय। मैं आपको आपकी माँग के लिए नीचा न समझूँ और आप मुझे मेरी स्वीकृति-अस्वीकृति के लिए सदोष न ठहरायें। लेकिन चौथी धारा का उत्तर अधिक लचीला और नाजुक है और इसलिए उसमें खतरे की भी सम्भावनाएँ अधिक हैं। मैं आपको चार हजार रुपये देना स्वीकार करता हूँ, लेकिन इस शर्त पर कि आप अमुक व्यक्ति से मेरी अमुक सिफ़ारिश करदें, भले ही वह सिफ़ारिश आपकी दृष्टि में गलत हो। मैं अपनी बहिन से आपको प्रेम-सम्पर्क की सुविधाएँ देना स्वीकार करता हूँ, लेकिन इस शर्त पर कि आप भी अपनी पत्नी से प्रेम-निवेदन, बल्कि प्रेम-कनवेसिंग की स्वतन्त्रता मुझे देदें। स्पष्ट है कि मेरी ऐसी स्वीकृति स्वीकृति नहीं है। यह अस्वीकृति भी नहीं है। यह अपने आपमें पूर्ण नहीं है क्योंकि इसकी पूर्ति किसी बदले पर निर्भर है। बदलों और शर्तों पर आधारित स्वीकृतियाँ वे गुत्थियाँ हैं जो पारस्परिक आदान-प्रदान को जटिल और जटिलतर बनाती जाती हैं और उसे आगे चलकर कहीं न कहीं अवरुद्ध हो जाना पड़ता है। बदलों और शर्तों के आधार पर ली और दी जाने वाली स्वीकृतियाँ नीरस, अरुचिकर, अस्वाभाविक आस्वादनों की ओर हमें ले जाती हैं और बहुधा छिछले पानियों में हमारे डूबने का कारण बनती हैं। कितने ही अन्तरंग समाज और प्राचीन शताब्दियों से चली आने वाली गोष्ठियाँ और क्लब, जो प्रारम्भ में भले आशय को लेकर आदान-प्रदान के इस मार्ग पर चले थे, इसके कृत्रिम प्रलोभनों का आखेट बन गये—ऐतिहासिक साहित्य इसका साक्षी है। इसलिए जहाँ स्वीकृति में बदलों या शर्तों की बात आये वहाँ हमें सावधान होना पड़ेगा। समाज में अति प्रचलित स्वीकृति की इस धारा को हम अगली गोष्ठी में कुछ और विस्तार के साथ देखेंगे।" ★

तैंतालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"यदि आपकी मांग को मैं किसी शर्त पर स्वीकार करता हूँ तो स्पष्ट है कि आपकी इच्छा पूरी करने में मुझे कोई आन्तरिक सुख नहीं है और मैं अपने किसी नव-कल्पित सुख के बदले में उसे स्वीकार करने के लिए तैयार होता हूँ। आपकी एक मांग है : आप मेरी पत्नी से मन की कुछ बात कहना चाहते हैं। आपकी इस मांग को स्वीकार करने की मैं यह शर्त रखता हूँ कि मैं भी आपकी पत्नी से वैसी ही बातचीत कर सकूँ। आपकी मांग स्वाभाविक, मौलिक है। वह आपके मन के भीतर से उठी है क्योंकि मेरी पत्नी के प्रति आपका कुछ आकर्षण हुआ है। लेकिन आपकी पत्नी के प्रति तो मेरा कोई आकर्षण नहीं था। मैं केवल बदले की भावना से, शर्त के रूप में उसकी मांग करता हूँ। मैंने केवल कल्पना की है कि शायद मुझे भी आपकी पत्नी के सम्पर्क में कुछ नया रस मिल जाय। मेरी मांग कृत्रिम है। साथ ही उसमें दूसरी, आपकी पत्नी की ओर से कोई प्रस्ताव नहीं है। यह मेरी एक तरह से जबर्दस्ती की मांग है। मैं अपने मन में एक कृत्रिम अनुराग पैदा करना चाहता हूँ और फिर उस अनुराग को आपकी पत्नी पर लादना चाहता हूँ, उसके सामने अपने अस्वाभाविक रूप में जगाये हुए 'प्रेम' का 'कनवेसिंग' करना चाहता हूँ। स्पष्ट है कि यह बदले का आदान-प्रदान यदि कुछ हो भी सका तो उसमें सहज स्वाभाविक रस और स्वस्थता नहीं होगी। शर्तों और बदलों के आधार पर किया हुआ आदान-प्रदान हमारी नीरस कृत्रिमताओं का, अनावश्यक रूप में उत्पन्न हुई दुर्बलताओं और कुरूपताओं का ही सौदा हो सकता है। इसलिए उसकी ओर से हमें विशेष सावधान रहना चाहिए। ऐसा सौदा हमारे स्वस्थ और अधिकाधिक सरस एवं गहरे होने वाले आदान-प्रदान का मार्ग रोकने वाला ही हो सकता है, क्योंकि उसकी उलझनों में हमें

विरस बनाकर थका देने की यथेष्ट सामग्री है। धर्म और सदाचार के उपदेशकों की भाषा में प्रचलित नैतिक-आचारिक 'पतन' शब्द की भी मानवीय व्यवहार में कहीं न कहीं सार्थकता है; और यह सार्थकता वहीं है जहाँ हम छिछले, कृत्रिम रसों में उलझकर सहज स्वाभाविक रस-पान की क्षमता से वंचित हो जाते हैं।

"लेकिन माँग की स्वीकृति के सम्बन्ध में इस बदले और शर्त के प्रस्ताव का एक दूसरा, उजला पक्ष भी है। आप मेरे सामने अपनी कोई माँग रखते हैं। अपनी सुविधा के अनुसार मैं उसे स्वीकृत या अस्वीकृत कुछ भी करूँ, लेकिन उस माँग के लिए मैं आपका कृतज्ञ ही होता हूँ, क्योंकि आपने अपना हृदय मेरे सामने खोलकर मेरी ओर एक नया पग बढ़ाया है। आपकी उस माँग से मेरा भी दिल खुलता है और मैं भी अपनी कोई माँग, उससे मिलती-जुलती या भिन्न, जो मेरे मन में थी, आपके सामने रखता हूँ। आपके पहले प्रयास से प्रोत्साहन पाकर ही मैं भी यह एक पग आपकी ओर उठाता हूँ। मेरी यह माँग शर्त या बदले की नहीं, फिर भी आपकी माँग से प्रोत्साहित और स्वतन्त्र माँग है।"

"एक व्यक्ति की माँग के बाद दूसरे व्यक्ति की ओर से आने वाली कौनसी माँग शर्त या बदले की है और कौनसी स्वतन्त्र, इसकी पहचान आप कैसे करेंगे?" पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने पूछा।

"यह पहचान कठिन नहीं है। आपकी माँग का स्वीकृति या अस्वीकृति में फैसला करने के बाद अगर मैं अपनी माँग आपसे करता हूँ तो वह स्वतन्त्र है, और यदि आपके सम्बन्ध में अपना निर्णय अटकाकर मैं बीच में ही अपनी माँग रखता हूँ तो वह बदले की है। आपका माँगा हुआ पकवान मैं अपनी थाली में से उठाकर तुरन्त अलग रख दूँ और कहूँ कि यह लीजिए, आप जब चाहें इसका उपयोग कर लीजिएगा; और ऐसा करने के बाद मैं आपसे आपकी कोई वस्तु माँगूँ तो मेरी वह माँग स्वतन्त्र माँग होगी। और यदि 'एक हाथ ले और दूसरे हाथ दे'

वाली बात रही तो स्पष्टतया वह बदले का ही छिछला व्यापार होगा।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"पारस्परिक सम्पर्क के प्रयोग में किसी माँग की स्वीकृति या अस्वीकृति के सम्बन्ध में यह अन्तिम, चौथी धारा की प्रतिक्रिया—जिसमें हम माँगने वाले से स्वयं भी कुछ माँगने के लिए आगे बढ़ते हैं—जहाँ एक ओर इतनी नाजुक और खतरे से भरी है वहाँ दूसरी ओर समृद्धि की सम्भावनाओं से भी परिपूर्ण है। इसमें माँगों और पारस्परिक आदान-प्रदान की वृद्धि की सबसे अधिक सम्भावना है। आप ही यदि मुझसे माँगते रहें और मैं आपसे कभी कुछ न माँगूँ तो इससे एक दिन आपका मन छोटा पड़ जायगा और आप भी मुझसे माँगना बन्द कर देंगे। इससे पारस्परिक आदान-प्रदान में कमी आयेगी, जब कि समाज में उसके अधिकाधिक बढ़ने की आवश्यकता है। दूसरे को देकर ही नहीं, दूसरे से माँग कर भी बहुधा आप उसे सुखी और अपना कृतज्ञ बना सकते हैं। मैं अपने लिए आप सब का स्नेह और अनुराग माँगूं तो उससे आपको प्रसन्नता ही होगी। किसी दिन मैं आपके घर भोजन करने पहुँच जाऊँ तो सम्भवतः आप मेरे कृतज्ञ ही होंगे; और यदि मैं आपके घर की महिलाओं से मिलना चाहूँ तो असम्भव नहीं, आप और वे इसमें अपना कुछ गौरव ही मानें। आप मुझे भला और सुलझा हुआ व्यक्ति समझते हैं इसलिए मेरी ऐसी मांगें स्वीकार करने में आपको सुख ही होगा। जो व्यक्ति दूसरों को देता है लेकिन मांगता नहीं वह समाज में विषमता को बढ़ाता है। वह अहंकारी कहा जाय तो किसी हद तक ठीक ही है। इसलिए वह माँग जो दूसरे व्यक्ति को भी कुछ मांगने के लिए प्रोत्साहित करे समाज के लिए परम अभीष्ट है। अतएव मेरा अनुरोध है कि इस गोष्ठी में हम लोग एक-दूसरे से खुलकर अधिक से अधिक मांगने का प्रयोग करें। लेकिन उन माँगों में शालीनता, सौजन्य और गम्भीरता का यथासम्भव ऊँचे से ऊँचा पुट रहे, इसका ध्यान रक्खें और यह भी सावधानी रक्खें कि उन माँगों के फलस्वरूप

हम एक-दूसरे से एक इंच भी दूर न हटने पायें, बल्कि समीपतर आने का ही प्रयत्न करें। लेकिन ऐसे प्रयोग में अवरोध और फिसलन के अनेक स्थल हैं; उनका भी हमें पहले कुछ आभास पा लेना चाहिए। अगली गोष्ठी में हम उन्हें देखने का प्रयत्न करेंगे।"★

चवालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"हम, इस गोष्ठी के ग्यारह सदस्य, परस्पर आदान-प्रदान का प्रयोग करना चाहते हैं। लेकिन हमारे मार्ग में कुछ रुकावटें हैं। वे रुकावटें क्या हैं? सबसे पहली यही कि हमें पता नहीं कि किससे क्या मांगना चाहिए। क्या आप दस ऐसी वस्तुओं के नाम गिना सकते हैं जिन्हें आप यहाँ उपस्थित अन्य दस व्यक्तियों से पाना चाहें? ऐसी सूची यदि आप बना भी लें तो आप निश्चित नहीं हो सकते कि आपने हममें से प्रत्येक से ठीक वही वस्तु मांगी है जो आपके, और जिससे आप मांग रहे हैं उसके लिए सर्वथा उपयुक्त है और उसके देने में देने वाले को और पाने में आपको पूरा संतोष ही होगा। किसी व्यक्ति को अमीर देखकर आप उससे कुछ धन की और किसी को सुन्दर देखकर उसके रूप-स्पर्श की ही साधारणतया कुछ मांग करना चाहेंगे, लेकिन बहुत सम्भव है कि याच्य वस्तुओं का आपका यह चुनाव बहुत छिछला और गलत हो। वास्तव में आप अपने परिचितों से बाह्य रूप में इतना सटकर और आन्तरिक रूप में उनसे उतनी ही दूर रहने के आदी हो गये हैं कि आपको उनके भीतर की सहज देय वस्तुएँ दीख ही नहीं पड़तीं। आप उनसे बहुत अधिक मिलते हैं, बहुत अधिक बात करते हैं और इस बाह्याचार की अधिकता में उनके साथ आपका

कोई गहरा आदान-प्रदान नहीं होता। इस प्रकार हमारी पहली रुकावट यही है कि पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए हम याच्य और देय वस्तुओं का निश्चय नहीं कर पाते। हम अपनी जेब में याच्य और देय वस्तुओं का एक गलत, कृत्रिम और दूसरों को भुलावे में डालने वाला सूचीपत्र लिये फिरते हैं, और उनसे मिलने पर वही उनके सामने प्रस्तुत कर देते हैं। समाज में ऐसे व्यक्ति आपको बहुत मिलेंगे जो अपने आपको बहुत आकर्षक, समृद्ध, आपके लिए अत्यन्त उपयोगी तथा हितैषी जताने का प्रयत्न करेंगे। वे आपकी अत्यधिक प्रशंसा करेंगे या ऐसा संकेत करेंगे मानों आपको कोई बहुत बड़ा पुरस्कार दे सकते हैं और देने के लिए उत्सुक हैं। जब कोई व्यक्ति आपसे ऐसी बातें कहे तो उससे, और जब आप स्वयं किसी से ऐसी बातें कहने के लिए लालायित हों तो आप स्वयं अपने आपसे सावधान रहें। ऐसी लम्बी-चौड़ी बात कोई व्यक्ति तभी कहता है जब उसके पास आपको देने के लिए कोई निश्चित वस्तु नहीं होती या जब वह अपने किसी क्षुद्र स्वार्थ की कोई ओछी-सी वस्तु आपसे पाना चाहता है।"

"इसका मतलब यह हुआ कि यदि मैं किसी के किसी गुण का प्रशंसक हूँ तो उसकी प्रशंसा न करूँ, उसकी कोई विशेष सेवा कर सकता हूँ और करना चाहता हूँ तो उसकी चर्चा न करूँ?" पांचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा।

"अधिक अच्छा ही नहीं, यह अत्यन्त आवश्यक भी है कि आप उसके सामने ऐसी चर्चा न करें। जब आप सचमुच किसी के बहुत अधिक प्रशंसक हों, या उसके लिए कोई बहुत बड़ा कार्य करने की स्थिति में हों तब भी आवश्यक है कि आप शब्दों में उसकी पूरी चर्चा न करें। यदि आप उसे कोई असाधारण उपहार दे सकते हैं तो उसकी चर्चा को कुछ थाम कर रखिये और उपहार को ही आगे आने दीजिए। यदि आप चर्चा को ही आगे आने देंगे तो उस उपहार की असाधारणता के कारण आपका साथी उस चर्चा से चौंकेगा। वह कह

कर प्रकट करे या न करे, उस वस्तु के सम्बन्ध में उसके मन में कुछ आतुरतापूर्ण लोभ के साथ साथ सन्देह और अविश्वास के भाव भी उठेंगे, और बहुत सम्भव है कि उसमें अविश्वास और विभ्रम की मात्रा ही अधिक होगी। कोई भी बात जो क्षण भर के लिए भी अविश्वास और सन्देह को जाग्रत करे, पारस्परिक सम्बन्धों के लिए अत्यन्त हानिकर है, भले ही वह आगे चलकर सच ही प्रमाणित हो। यह स्पष्ट है। अतएव हमें सन्देह और अविश्वास का छोटे से छोटा अवसर भी अपने स्वजन को नहीं देना चाहिए; क्योंकि ऐसे अवसर ही गुणित होकर समाज में इन हानिकर भावों को पुष्ट करते हैं। और फिर यदि आप वास्तव में किसी के गहरे प्रशंसक हैं तो आपकी प्रशंसा शब्दों में सीमित नहीं होगी, बल्कि शब्दों में वह बहुत ही कम आना चाहेगी। यदि आप किसी को कोई बड़ी भेंट दे सकते हैं तो उसकी पूर्व-चर्चा करने में आपकी स्वयं ही कोई रुचि न होगी क्योंकि आप तो साक्षात् उस भेंट का ही परिणाम देखना चाहेंगे। हाँ, उसका पूर्व संकेत सूचनार्थ किसी बात में आ जाय तो वह स्वाभाविक है। इस गोष्ठी के सदस्यों के लिए तो यह विशेष रूप से आवश्यक है—और मैं विशेष बल देकर यह अनुरोध आपके सामने रखना चाहता हूँ—कि वे शाब्दिक प्रशंसा और मौखिक प्रतिज्ञाओं से यथासम्भव दूर ही रहें। यदि आप किसी को कोई बड़ी वस्तु दे सकते हैं तो उसकी पूर्व-चर्चा उसकी सरसता और उसके औपयोगिक महत्व के लिए हानिकर ही होगी। यदि आप किसी के रूप के प्रशंसक हैं तो यह स्वाभाविक है कि आप अपनी मुग्धता का कुछ परिचय उसे अपनी दृष्टि द्वारा भी दे दें, लेकिन उसे घूर घूर कर देखना अशोभन ही नहीं, सामाजिक सौन्दर्य-समृद्धि की दृष्टि से अपराध-मूलक भी होगा।"

"आप ठीक कहते हैं—आपने ठीक ही कहा है।" पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन मुस्कराते हुए कुछ अन्यमनस्क भाव से कह गये।

"आप मेरी इस बात का कोई बड़ा शास्त्रीय समर्थन करना चाहते

हैं शायद ! कहिए, कह डालिए ।" वीरभद्र ने भी वैसे ही अनुरोध किया ।

"किसी शायर का एक शेर मुझे याद आ गया था । उसने कहा है—

देखलें तुमको कनखियों से तो मजबूरी है
आँख भर कर के जो देखें तो गुनहगार आखें ।"

"बहुत खूब !" सभा की मंद गुञ्जरित हँसी के बीच वीरभद्र ने कहा, "यद्यपि आपके उस शायर का अभिप्राय मेरी बात से कुछ भिन्न जान पड़ता है, फिर भी सम्भव है वही मेरी गद्य-भाषी जिह्वा पर इस समय आ बैठा हो । सचमुच उस तरह आँख भर कर किसी को देखना, मुँह भर कर किसी के सामने उसकी खूबियों या अपने वादों का बखान करना एक गुनाह है; क्योंकि यह एक ऐसा छिछलापन है जिसमें गन्दगी का ही निवास सुगम है । आपके पास यदि फलों-फूलों से भरा, हराभरा बगीचा है तो अवश्य आप उसमें दूसरों को निमन्त्रित करें, लेकिन बातों का सब्ज़बाग़ दिखाने की प्रवृत्ति से सावधान रहें ।"

"लेकिन यह आप कैसे कहते हैं कि प्रशंसा या प्रतिज्ञा की लम्बी बातें करने वाले व्यक्ति के पास देने के लिए कोई निश्चित वस्तु नहीं होती और वह अपने किसी क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति ही दूसरे से चाहता है ? क्या यह सम्भव नहीं कि उसके पास कहने के साथ साथ देने के लिए भी वह वस्तु मौजूद हो ?" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा ।

वीरभद्र ने कहा :

"समाज में जितना छिछला, आडम्बरपूर्ण और सन्देहजनक वाक्-दान आजकल चलता है उसे हम सभी देखते हैं । समाज में वास्तविक आदान-प्रदान की कमी और प्रशंसा तथा प्रतिज्ञा के शब्दों की अत्यधिकता है, यह बात आपसे छिपी नहीं है । ऐसी दशा में शब्दों

के तिव्ययी के वस्तुओं के निर्धन होने का निष्कर्ष निकालना साधारणतया गलत नहीं है, जबकि हम देख चुके हैं कि वास्तव में वस्तु-सम्पन्न देने वाले के लिए शब्दों का व्यापार बहुत कुछ अस्वाभाविक और फीका है। इस प्रकार याच्य और देय वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारा अनिश्चय-परक अज्ञान पारस्परिक आदान-प्रदान में हमारी सबसे पहली बाधा है; और शब्दों का अति-व्यापार उस अज्ञान को बढ़ाने और आडम्बरपूर्ण बनाने में और भी सहायक होता है। अतः शब्दाचार से यथासम्भव अवकाश लेकर स्वतः चिन्तन और मौन कामना का आश्रय हमें कुछ अधिक लेना पड़ेगा। अगली गोष्ठी में हम और भी बाधाओं को ढूँढ़ कर उनका उपचार खोजने का प्रयत्न करेंगे।"★

पैंतालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"दूसरों के सामने लम्बी बात कहने और सब्ज़बाग़ दिखाने की प्रवृत्ति के पीछे भले ही कभी कुछ वास्तविक तथ्य हो, यह प्रवृत्ति स्वयं में ही एक छिछलापन है। जब कोई ऐसी बात आपसे कहता है तो वह इतना मूर्ख होता है कि आपके मन में उठने वाली सन्देह-अविश्वास-मिश्रित प्रतिक्रिया की ओर से अनजान रहता है या फिर जानबूझ कर अपने आप को भी धोखा देता है। उन शब्द-मोदकों से क्या लाभ जो द्वार आये अतिथि की झोली में पहुँचते-पहुँचते चूर-चूर होकर धूल के कण बन जायँ? और सत्कार की उस पूर्व-चर्चा से क्या लाभ जो दूसरे के मन में सन्देह और अविश्वास उत्पन्न करे? स्पष्ट है कि दूसरे के मन में हमारी बात से उठने वाली प्रतिक्रिया का ध्यान और अनुमान हमें न रहना हमारी एक ऐसी क्षुद्रतापूर्ण मूर्खता है जिससे हमें सदैव सावधान रहना चाहिए। ये बातें मैं इस गोष्ठी में परस्पर व्यव-

हार के लिए कुछ उपयोगी सिद्धान्तों के रूप में आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

"पारस्परिक आदान-प्रदान में बाधक कुछ प्रारम्भिक रुकावटों की ही हम अभी चर्चा कर रहे हैं। अब अगली बात लीजिए। आप मुझसे कुछ चाहते हैं लेकिन जो वस्तु आप मुझसे चाहते हैं उससे बड़ी वस्तु मैं आपको देना चाहता हूँ। इस स्थिति में स्वाभाविक है कि आपकी माँगी वस्तु देने में मुझे कोई उत्साह नहीं होगा। जो वस्तु आप मुझसे चाहते हैं वह मेरी हैसियत से नीची है और सम्भवतः मात्रा में भी मेरे पास कम है। उसे देकर मैं आपको जितना सुखी और अपना कृतज्ञ एवं प्रशंसक बना सकता हूँ उससे कहीं अधिक सुखी और अनुगृहीत एक दूसरी वस्तु देकर बना सकता हूँ। मान लीजिए, आप मुझसे एक दिन का भोजन चाहते हैं, लेकिन मैं आपको अपने व्यापार में साझेदार बनाकर आजीवन आपको अपने साथ रखना और सदैव के लिए आपके भोजन की व्यवस्था कर देना चाहता हूँ। स्पष्ट है कि आपकी ओर से वह माँग और अपनी ओर से उसकी पूर्ति मुझे बहुत ओछी लगेगी। जिस सुन्दरी की दृष्टि में आप आजीवन संग के लिए वरण योग्य हों उससे पहली ही भेंट में यदि आप केवल एक चुम्बन की माँग करें तो यह उसे प्रिय नहीं हो सकती—बल्कि इससे आपके प्रति उसकी भावनाओं और कल्पनाओं को एक आघात ही पहुँच सकता है। इस प्रकार आपकी किसी माँग के प्रति मेरी उदासीनता या अस्वीकृति का यह भी अर्थ हो सकता है कि मैं आपको उससे बड़ी कोई वस्तु देना चाहता हूँ। निष्कर्ष यह कि मेरे किसी उत्तर से असंतुष्ट होने से पहले आपको ऐसी अधिक बड़ी भेंट की सम्भावना की भी टोह ले लेनी पड़ेगी।"

"आप इस समय बाधाओं की चर्चा कर रहे हैं। मैं आपसे एक छोटी वस्तु चाहता हूँ और आप उससे बड़ी मुझे देना चाहते हैं। इस दशा में बड़ी वस्तु देने की आपकी इच्छा ही मेरी माँग की पूर्ति में

बाधक है या आप मेरी उस छोटी माँग को ही किसी प्रकार 'बाधक' ठहराना चाहते हैं?" आठवें आसन के वकील साहब ने कहा।

"हमारी माँगों की राह में कुछ अन्य बातें बाधक होती हैं, और कभी कभी हमारी माँगें स्वयं ही अपनी राह में या हमारी किन्हीं और बड़ी समृद्धियों की राह में बाधक बन जाती हैं। इस जगह मेरा अभिप्राय यही है कि हमारी कुछ माँगें हमारी किन्हीं अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के मार्ग में बाधक होती हैं और इसीलिए उन्हें छोड़ने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।" वीरभद्र ने कहा और जारी रक्खा :

"मनुष्य के भीतर लेने की अपेक्षा देने की इच्छा अधिक सबल और व्यापक है। वास्तव में लेने की इच्छा अधिकतर देने की इच्छा की ही प्रतिक्रिया या प्रतिकृति है। देने की इच्छा प्रायः लेने की इच्छा के रूप में ही आपकी बाह्य चेतना में प्रस्फुटित होती है। जब आप अपने महाजनसे कुछ धन पाने के इच्छुक होते हैं तब वास्तव में अपने आश्रितों के लिए भोजन, अतिथियों को कुछ सत्कार और संभवतः पत्नी और बच्चों के लिए कोई मनचाही पोशाक देने की इच्छा ही आपके भीतर क्रियाशील होती है। लेने की अपेक्षा देने की इच्छा की पूर्ति अधिक कठिन और पेचीदा है। अपनी माँग मैं सीधे तौर पर आपके सामने रख सकता हूँ, लेकिन यदि मैं आपको कुछ देना चाहता हूँ तो मुझे दोहरा काम करना पड़ेगा। आपकी प्रस्तुत की हुई माँग में मुझे पहले अपनी अरुचि जतानी पड़ेगी और फिर आपके असन्तोष को सम्हालते हुए अपनी प्रस्तुत भेंट के लिए आपको तैयार करना पड़ेगा। आप मुझसे अपने किसी गुण की लोक-प्रचलित जैसी प्रशंसा चाहते हैं, लेकिन मैं आपके उस गुण की तह में जाकर आपको कोई उपयोगी सन्देश देना चाहता हूँ। स्वभावतया मुझसे आपकी वैसी प्रशंसा न बन पड़ेगी। आप एक सुन्दर कवि और मधुर गायक हैं। आप चाहते हैं कि मैं आपके गीत और स्वर की प्रशंसा करूँ—जब भी आप मिलें, आपको एक गीत सुनाने का निमन्त्रण दूँ। लेकिन मैं ऐसा नहीं करता। मैं आपके किसी औ

भीतरी गुण का मूक प्रशंसक हूँ और आपकी प्रेरणा की स्रोतस्थली पर ही आपका ग्राहक बनना चाहता हूँ। आपमें मेरे भाव को परखने का धैर्य नहीं है और अपने गीत-स्वर के प्रति मेरी उदासीनता से आप परिणाम निकालते हैं कि मैं अपारखी, अनुदार या अहंकारी हूँ। जब मैं चेतावनी या परामर्श की बात कहने के लिए मुँह खोलता हूँ तब उसमें आपको मेरे अहंकार या कभी-कभी ईर्ष्या की भी गन्ध आती है। यह एक और अत्यन्त गम्भीर स्थल है जहाँ हमें, जोकि परस्पर हार्दिक आदान-प्रदान का गहरा प्रयोग करना चाहते हैं, अपनी प्रतिक्रिया की ओर से सावधान रहना चाहिए। जब कोई व्यक्ति आपको अहंकारी या ईर्ष्यालु प्रतीत हो और उसकी बात सुनने में आपको अरुचि हो तो अपने प्रति ही सतर्क हो जायँ। ध्यान देने पर आप देखेंगे कि आपका हृदय-द्वार विकाराक्रान्त होकर संकीर्ण हो उठा है और उसके कपाट उस व्यक्ति के शब्दों के प्रति स्वतः ही बन्द हुए जा रहे हैं। दोष उसका नहीं, आपका है। अहंकार और ईर्ष्या मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलताएँ हैं और यदि कोई व्यक्ति उनके माध्यम से ही बोल रहा है तो जो कुछ वह बोल रहा है उसे सुनने का सामर्थ्य और सौजन्य आपमें होना ही चाहिए। यह असम्भव है कि अहंकारी और ईर्ष्यालु व्यक्ति के पास आपसे कहने के लिए, आपके काम की कोई बात ही न हो। उसके पास भी आपको देने के लिए कोई परामर्श, सूचना या संदेश है। आप उस तक पहुँचने के लिए स्वयं को खुला रखें। उपदेशक बेचारा पेड़ की ऊँची, अत्यन्त असुविधाजनक डाल पर बैठ कर अपनी बात कहता है और आप धरती के चौड़े समतल सुखासन पर बैठ कर सुनते हैं। वह स्वय को अशोभन स्थिति में रखकर जाने-अनजाने आपके लिए कुछ त्याग ही करता है और बड़ी या छोटी कोई वस्तु आपको देना ही चाहता है। और फिर किसी को उपदेशक या अहंकारी अधिकतर हम स्वयं ही अपनी वक्र कल्पना द्वारा बनाते हैं। यदि हम अपनी कल्पनाओं को सरल रखना सीख लें तो कोई भी व्यक्ति हमें कुछ थोड़े से दौर्बल्य-

स्थलों के आगे अहंकारी और ईर्ष्यालु नहीं दीख सकता; क्योंकि एक ही महती इच्छा की प्रेरणा विविध स्तरों पर सभी मनुष्यों में काम करती है। ये सब बातें हमारे लिए ध्यानपूर्वक सोच रखने की हैं; क्योंकि आदान-प्रदान के व्यावहारिक प्रयोग में हमें बड़ी सावधानी के साथ इन्हीं से काम लेना होगा।" ★

छयालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"इस गोष्ठी के हम ग्यारह सदस्य परस्पर आदान-प्रदान का एक असाधारण प्रयोग करने जा रहे हैं। इस आदान-प्रदान के लिए हमने यथेष्ट भूमिका तैयार करली है; और प्रयोग से पहले पिछली दो गोष्ठियों में उन बाधाओं को भी समझ लिया है जिनकी ओर से हमें पग पग पर सावधान रहना पड़ेगा। आगे बढ़ने से पहले उन बाधाओं के नाम संक्षेप में यहाँ दोहरा देना लाभदायक होगा। पहली बाधा यह है कि दूसरे से माँगने योग्य ठीक वस्तु की खोज हमारे लिए कठिन है; और इसे दूर करने का उपाय यही हो सकता है कि हम माँगने से पहले दूसरे व्यक्ति की अधिकाधिक वस्तुओं को देखने की सुविधा प्राप्त करें। जब आप दूसरे व्यक्ति की सभी या अधिक से अधिक वस्तुओं को देख लेंगे तभी अपने लिए सर्वाधिक उपयोगी और दूसरे के लिए भी सहर्ष एवं सुविधापूर्वक देय वस्तु आसानी से चुन सकेंगे। दूसरों की दृष्टि में अधिक आकर्षक और उपयोगी दीखने की, दूसरों को भुलावे में डाल कर रस या कोई स्वार्थ साधन प्राप्त करने की प्रवृत्ति हमारी दूसरी बाधा है। शब्दों का अधिक व्यापार, दूसरों की अत्यधिक प्रशंसा या अपने प्रस्तावित सत्कारों की चर्चा भी इसी के अन्तर्गत

आजाती है। दूसरे व्यक्ति की अस्वीकृति या अपनी माँग के प्रति उदासीनता से आपके मन में उत्पन्न होने वाला क्षोभ तीसरी बाधा है। हम देख चुके हैं कि यह अस्वीकृति अधिकतर इसीलिए होती है कि हमारी माँगी हुई वस्तु दूसरे की दृष्टि में बहुत छोटी होती है और वह हमें उससे बड़ी वस्तु बड़ी प्रसन्नता से दे सकता है। चौथी बाधा यह है कि हम अपनी माँगें अथवा भेंट इतनी आतुरता के साथ दूसरे पर थोपना चाहते हैं कि दूसरे व्यक्ति को अपनी सहज स्वाभाविक भेंट अथवा माँग हमारे सामने रखने का अवसर नहीं मिलता। हम अपनी ही वस्तु देने या अपनी ही माँग माँगने के लिए इतने उतावले हो जाते हैं कि पारस्परिक सहज आदान-प्रदान कठिन हो जाता है। दूसरे से माँगने के लिए ही नहीं, उसकी स्वेच्छा से दी हुई वस्तु को ग्रहण करने के लिए भी हमें तैयार रहना चाहिए। दूसरे को अहंकारी या कभी कभी ईर्ष्यालु मान कर भी हम पारस्परिक आदान प्रदान का मार्ग स्वतः ही बन्द कर देते हैं। इस पांचवीं और अपेक्षाकृत सूक्ष्म बाधा से भी हमें निरन्तर सावधान रहना चाहिए।

"इतना कर लेने के पश्चात् अब हम गहरे, मुक्त आदान-प्रदान के लिए तैयार हो जाते हैं। पहली बाधा को दूर करने के लिए हमें अपना हृदय, अपनी कामनाएँ और अपने वैयक्तिक जीवन के वे भेद, जिनके लिए हमें दूसरे के सहारे की आवश्यकता तो है लेकिन जिन्हें किसी के सामने रखते हुए हम डरते हैं—ऐसे भेद भी हमें सावधानी के साथ एक दूसरे के सामने खोलने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। आपकी आवश्यकताएं और इच्छाएँ क्या क्या हैं—उनमें कौनसी भली हैं और कौनसी बुरी, इसका भी संकोच छोड़कर—हमारे सामने आनी चाहिएँ। एक दूसरे के प्रति हमारे संदेह और अविश्वास क्या हैं, वे भी पर्दे से बाहर आने चाहिएँ। यह सुगम कार्य नहीं है क्योंकि यह पेनी शल्य-क्रिया का प्रयोग है। हम अभी पारस्परिक उदासीनता और अविश्वास से आमूल-चूल भरे हैं। हुए आन्तरिक अनुरक्ति और विश्वास से रीते

हम घोर कृत्रिमता के वातावरण में ही एक दूसरे से मिलते हैं। अपने इस प्रयोग में हम सहज ही इस कृत्रिमता को खोज निकालेंगे और तब देखेंगे कि हम अपने स्वजनों के साथ स्नेह-सत्कार के नातों में कितने पानी में हैं। इस प्रयोग से हमारे पारस्परिक सम्बन्ध उघरने पर आप देखेंगे कि आपके साथी कितने छिछले हैं; और उससे भी गहरी दृष्टि गड़ाने पर देखेंगे कि आप स्वयं उनसे भी अधिक छिछले हैं। यह प्रयोग दूसरों की और आपकी भी दुर्बलताएँ आपके सामने खोलेगा, और उस खुले प्रदर्शन में ही आप अपने पैरों पर स्थिर रहने का और दूसरों का भी हाथ पकड़े रहने का अभ्यास कर पायेंगे।

"शब्दों में कहने के लिए हमारा यह प्रयोग बहुत सरल है। आप मुझसे कोई भी वस्तु मांगिए, कोई भी भेंट प्रस्तुत कीजिए, कोई सा भी प्रश्न पूछिए। मेरी प्रतिक्रिया को—वह स्वीकृति के रूप में हो या अस्वीकृति के—आप सहज भाव से स्वीकार कीजिए। मेरे उत्तर पर किसी भी दशा में आप मुझे अपनी नजरों में न गिराइए और स्वयं भी इतने तन कर खड़े रहिए कि आप मेरी दृष्टि में झुके न दीखें। यह प्रयोग आपकी सर्व-सम्मति से इस गोष्ठी में हम ग्यारह सदस्य परस्पर करेंगे। लेकिन ऐसा करने में हमारे सामने इसके विकसित रूप का एक नक्शा भी है। हम कहाँ पहुँचेंगे, इसका कुछ पूर्वाभास हम पा चुके हैं। रोटी का ग्रास, निर्मल जल का घूँट और प्रिय का चुम्बन हम सभी को सुलभ हो जायगा। ये वस्तुएं हमें यथेष्ट मात्रा में सुलभ होंगी। सबसे बड़ी बात यह होगी कि इनका असाधारण, अमिश्रित स्वाद भी हमें प्राप्त होगा। अपने लिए ही नहीं, अगणित दूसरों के लिए भी हम ये वस्तुएँ यथेष्ट मात्रा में सुलभ कर देंगे। मनुष्य के सामाजिक जीवन के लिए इससे बड़ा और कौन-सा वरदान अभीष्ट हो सकता है? मनुष्य के समस्त लोक-मंगलकारी राज्यों और सामाजिक विधानों का ऊँचे से ऊँचा ध्येय यही है कि मनुष्य की भूख-प्यास को यथेष्ट आहार मिल जाय। यह ध्येय अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। संसार में

रोटी का ही अभाव अभी दूर नहीं हुआ। क्या रोटियों के केन्द्रित अथवा विशालकाय उत्पादन इस अभाव को दूर कर सकेंगे ? अति सुलभ प्रेम-विवाह अथवा स्वच्छन्द प्रेमाचार की व्यवस्थाएँ क्या आपकी चुम्बन की प्यास को तृप्त कर सकेंगी ? कभी नहीं, कभी नहीं ! क्योंकि इन भूखों-प्यासों की जड़ में तृप्ति के साधनों का अभाव नहीं, स्वाद लेने की हमारी अक्षमता का रोग ही बसा हुआ है। इसलिए विशाल-वर्गीय औद्योगिक उत्पादनों और सामाजिक-व्यावसायिक वितरणों से नहीं, इस गोष्ठी-जैसे छोटे-छोटे वर्गों के पारस्परिक सहृदय मिलन और सहज आदान-प्रदानों के द्वारा ही इस ध्येय की ऊँची से ऊँची पूर्ति सम्भव है; क्योंकि ऐसा करके ही हम अपनी और दूसरों की भूख-प्यास को पहचान सकते हैं और अपनी तथा दूसरों की गहराइयों में उतर कर, उनकी तृप्ति के समर्थ साधनों को खोज कर ऊपर ला सकते हैं। इस खोज और प्राप्ति में स्वतन्त्रता का ऊँचे से ऊँचा उल्लास और जीवन की निर्द्वन्द्व सरलता के बीच सुख की ऊँची से ऊँची सम्भावनाएँ समाविष्ट हैं, जैसा कि हम इन गोष्ठियों के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते कुछ और स्पष्ट रूप में देख सकेंगे।" ★

सैंतालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"मैं आपसे कुछ पाना और आपको कुछ देना चाहता हूँ। पारस्परिक आदान-प्रदान के माध्यम से ही जीवन के परम रोचक और परम उपयोगी की खोज के लिए हम इस गोष्ठी में मिले हैं। इसकी किसी प्रारम्भिक बैठक में हम सभी ने अपने अन्तरंग सम्पर्क में आये हुए कुछ रोचक व्यक्तियों की तथा अपनी कुछ रुचियों और वैसी ही परिस्थितियों की चर्चा की थी। यह सहज सम्भव था कि उन व्यक्तियों

को भी इस गोष्ठी में तभी से निमन्त्रित कर लिया जाता और हमारी यह सभा सौन्दर्य और समृद्धि की विविधताओं से सम्पन्न हो जाती। उस दशा में व्यावहारिक आदान-प्रदान के लिए बहुत सी रुचिकर सामग्री हमारी आँखों के सामने होती। मैंने ही अपने अन्तरंग सम्पर्क के दो ऐसे व्यक्तियों की चर्चा उससे भी पहले की एक गोष्ठी में की थी। आपको ध्यान होगा, मैंने एक अत्यन्त सहृदय करोड़पति व्यवसायी सुन्दर युवक और एक अनिन्द्य रूप-शील-वती तरुणी की बात आपसे कही थी कि ये दोनों आपके निकट सम्पर्क में आकर अपने धन और रूप से आपका मुँहमाँगा सत्कार करना चाहते हैं। यह आपके धैर्य और गम्भीर महाशयता का सूचक है कि आपने इतने दिनों तक इन दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध में कोई माँग नहीं उठाई और इस गोष्ठी की चर्चाओं में ही रुचिपूर्वक तन्मय रहे। अब फिर मैं स्वयं इन दोनों व्यक्तियों की बात आपके सामने लाता हूँ। अब समय समीप आ गया है कि हम इन दो, और इस गोष्ठी के सदस्यों के सम्पर्कगत अनेक अन्य रोचक एवं उपयोगी व्यक्तियों को भी अपने बीच निमन्त्रित कर उनके साथ यथेच्छ आदान-प्रदान करें। हमारी तिरपनवीं—दूसरे वर्ष की पहली—गोष्ठी से इस नये व्यावहारिक दौर के प्रकरण का प्रारम्भ होगा। इस वर्ष की बावन गोष्ठियों को मैं इन्हीं ग्यारह चेहरों और उनके मौलिक विचार-विनिमय तक ही सीमित रखना आवश्यक समझता हूँ। तिरपनवीं गोष्ठी में हम अपने उन सभी स्वजनों का स्वागत करेंगे, जो हमारे बीच आना चाहते हैं।"

"आज इतने दिनों बाद जाकर" पाँचवें आसन के पत्रकार सज्जन ने कहा, "आपने वह बात कही है जिसकी बहुतों को बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी और जिसकी आशा हम छोड़-से बैठे थे। मेरे अनेक मित्र और विशेष रूप से मेरी पत्नी—"

"और मेरी वह सहेली—" चौथे आसन की कुमारी जी पूर्ववक्ता की बात काट कर बोल उठीं।

"इन सभी का हम अपनी उस गोष्ठी में स्वागत करेंगे" वीरभद्र ने कहा, "और उनके उपयुक्त स्वागत-व्यवहार के लिए हमें कुछ योजना पहले से बना लेनी है। जिन दो व्यक्तियों की बात मैंने कही यदि वे उसी दिन से हमारे बीच आजाते तो उनका कितना सदुपयोग आप करते, इसकी कुछ कल्पना आप कर सकते हैं? पहले आप उनका जो उपयोग करते और अब जैसा करेंगे, उनमें आप कोई अन्तर देख सकते हैं?" वीरभद्र ने प्रश्न की दृष्टि से उपस्थित जनों को देखा।

"मैं उसकी कल्पना कर सकती हूँ" दूसरे आसन की महिला ने कहा। "मैंने इन गोष्ठियों के नोट्स लिये हैं और इसीलिए मुझे याद है कि उन दो व्यक्तियों की बात आपने पाँचवीं गोष्ठी में कही थी। यदि वे दोनों व्यक्ति अगली गोष्ठी से हमारे बीच आगये होते तो यह सैंतालीसवीं गोष्ठी इस रूप में हमें यहाँ देखने-बैठने को सम्भवतः न मिलती। वह उदार-हृदया सुन्दरी इस सभा के आठ पुरुष-रत्नों की—क्षमा कीजिए, वीरभद्र जी की गिनती मैं उनमें नहीं कर सकती तो सात पुरुष-रत्नों की—सार्वजनिक उपपत्नी होती। कुछ समय तक वही इस महफ़िल की रानी होती और अगले पांच-सात सप्ताहों के भीतर हम सभी उस दानशील समृद्ध युवक से अपनी अपनी अभीष्ट आवश्यकतानुसार रकमों का एक एक चेक पाकर अलग अलग व्यवसायों में जा लगे होते। हो सकता है कि उस आकर्षक युवक को लेकर इस गोष्ठी की महिलाओं में कुछ पारस्परिक मनोमालिन्य भी हो जाता —इस अनुमान के लिए मैं स्वयं को भी यहाँ उपस्थित अपनी दो बहिनों से अलग नहीं रख रही हूँ। इतने दिनों की गम्भीर और रोचक विवेचनाओं के बाद आज हम वीरभद्र जी को जितने आत्मीय और समर्थ रूप में पा सके हैं, उस रूप में हम उन्हें निश्चय ही खो चुके होते। और सच तो यह है कि इन महत्वपूर्ण चर्चाओं से उन्हें ही नहीं, अपने भी समर्थ एवं सम्पन्न रूप को हम खोज सके हैं। अपने और अपने स्वजन के भीतर तक देखने का जो नवीन दर्शन हमें इन

गोष्ठियों में मिला है उसके बिना वह सुन्दरी कुछ व्यक्तियों को सन्तुष्ट करने वाली एक वेश्या, और वह युवक एक मूर्ख, विवेकहीन धनिक से अधिक और कुछ हमारे लिए न हो पाते; और हमारी यह विचार-गोष्ठी कभी की पथ-भ्रष्ट और छिन्न-भिन्न हो गई होती।"

"मेरी युवा सहेली ने" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने कहा, "जो बात कही है वह मेरी दृष्टि में बिलकुल ठीक है, यद्यपि वह अत्यन्त उग्र शब्दों में कही गई है। आकर्षक से आकर्षक व्यक्ति के साथ आदान-प्रदान करके हम कोई गहरी सरसता और स्थायित्व की वस्तु नहीं प्राप्त कर सकते, जब तक अपने और दूसरों के भीतर तक, मानवीय सम्पर्क की गहराइयों तक की दृष्टि हमें प्राप्त न हो। ऐसा दर्शन हमें इस गोष्ठी की चर्चाओं में मिला है। हम हीनत्व और दरिद्रता की भावना से मुक्त हो कर अब माँग सकते हैं; और उसी प्रकार दे सकते हैं। धनी और सुन्दर व्यक्ति को अब हम उतना अधिक महत्व नहीं दे सकते जितना पहले, अपनी अल्पज्ञता और हीनतापूर्ण आतुरता की दशा में देते। वीरभद्र जी से उनके हार्दिक स्नेह और बौद्धिक आत्मीयता की जो भेंट मिली है वह किसी धनी सेठ और उदार सुन्दरी की बड़ी से बड़ी सम्भावित भेंट से हमारे लिए कम नहीं है। यह हमारा सौभाग्य है कि वैसे दो व्यक्ति हमारे और वीरभद्र जी के बीच अभी तक नहीं आये, नहीं तो हम मानवीय सम्पर्क के इस गहरे दर्शन से वंचित ही रह जाते। वीरभद्रजी ने नारी की स्वतन्त्रता की बात कही है। सहज स्वस्थ दृष्टि से देखने पर वह सर्वथा विचारणीय और अनुकरणीय प्रतीत होती है। एक सुन्दरी स्त्री अपने शरीर से कुछ पुरुषों का व्यक्तिगत सत्कार कर सकती है; दूसरी उन्हें अगणित नारियों को स्वस्थ सौन्दर्य-दृष्टि से देखने की प्रेरणा दे सकती है। पहली नारी से यह दूसरी कहीं अधिक महत्वमयी है। पहली की उपयोगिता और सरसता अति सीमित और विकृति-सम्भव है; दूसरी की व्यापक एवं चिर स्वच्छ है। अपनी जिन दो नवयुवा बहिनों के बीच में इस

गोष्ठी में प्रायः बैठती हूँ उनकी ओर से, विशेषकर अपने दाहने हाथ की विवाहिता बहिन की ओर से, मैंने अक्सर ऐसे चुम्बकीय कम्पनों को उठते अनुभव किया है, जिनसे मेरा अनुमान हुआ है कि वे समाज में ऐसी प्रेरणाओं को जगाने का कोई बड़ा काम करेंगी। मुझे आश्चर्य नहीं होगा यदि किसी नवागता असाधारण सुन्दरी की अपेक्षा मेरी इस बहिन का कार्य ही अधिक समर्थ निकले। धन का महत्व मेरी दृष्टि में पहले ही विशेष नहीं रहा, इसलिए उस धनिक युवक की बात मैंने अधिक नहीं सोची। वीरभद्र जी से जैसी प्रेरणाएँ हमें मिली हैं, उनसे यह सब सम्भव दीखता है। वे स्वयं हमें इतने प्रिय और मुक्त रूप में मिले हैं, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता का शब्द नहीं कहूँगी, क्योंकि हम भी तो उन्हें उसी रूप में प्राप्त हो रहे हैं। हो सकता है, उनका हृदय अधिक खुला हो और हमारा अभी कम, लेकिन हम भी मुक्त-हृदयता और सौन्दर्य-समृद्धि के उसी पथ पर आ गये हैं। जिन दो आकर्षक व्यक्तियों की चर्चा उन्होंने आज फिर उठाई है, वे उनके सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों में सर्वश्रेष्ठ नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है। उनके सम्पर्कगत स्वजनों में और भी महान् व्यक्ति होंगे, उनके पास हमें देने के लिए कुछ और भी बड़ी वस्तुएँ होंगी। इसलिए हम उनकी किसी भेंट की ओर आतुरता-पूर्वक लपकने की अपेक्षा पहले उनके हृदय और स्वजनों से भरे 'आँगन' को ही अच्छी तरह देखना चाहते हैं।"

"आपकी यह चाह अत्यन्त सार्थक और मेरे लिए उत्साह-प्रद है। आज का समय हो गया है। अगली गोष्ठी में मैं इसी की पूर्ति करूँगा—स्वयं भी करना ही चाहता था।" वीरभद्र ने कहा और सभा विसर्जित हुई। ★

अड़तालीसवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"तो आज मुझे अपनी हार्दिक भेंट की कुछ और सामग्री आपके सामने रखनी है—भेंट की सामग्री नहीं, आपके आदेशानुसार अपना हृदय ही खोलकर रखना है। लेकिन क्या वह मेरे लिए कोई आसान काम है? आपने बचपन में अंग्रेजी की किसी प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तक में पिंडोरा नाम की एक लड़की की कहानी पढ़ी होगी। वह संसार की एक अति प्रसिद्ध और अत्यन्त सारगर्भित कहानी है। अपनी सरलता और रोचकता के कारण वह कहानी बच्चों की पुस्तकों में छाप दी जाती है लेकिन उसका पूरा अर्थ प्रायः सुशिक्षित बूढ़े भी नहीं समझ पाते। पिंडोरा के घर में एक बक्स था, जिसे खोलने की अनुमति नहीं थी। पिंडोरा अपने कुतूहल को न रोक सकी और एक दिन उसने उस बक्स का ढक्कन उठा ही दिया। उस समय तक संसार बड़ा सुखी था और लोग दुःख-क्लेश का नाम भी न जानते थे। लेकिन उस बक्स के खुलते ही भयंकर विषैले कीड़ों और पशुओं के रूप में संसार की समस्त व्याधियाँ उसमें से निकल पड़ीं। उस दिन से दुनिया उन क्लेशों में आज तक ग्रस्त है। उस बक्स का ढक्कन यद्यपि तुरन्त ही बन्द कर दिया गया, लेकिन उसमें से जो निकल चुका था वह निकल कर मानव-संसार के आकाश में व्याप्त हो चुका था और वह अमिट था। वह बक्स और कुछ नहीं, मनुष्य का हृदय ही था। संसार के समस्त दुःख-क्लेश मनुष्य के हृदय से ही निकले हैं, क्योंकि उसके ऊपरी खाने में इन्हीं का संग्रह है। भूल यह हुई कि लोगों ने घबरा कर उस ढक्कन को तुरन्त ही बन्द कर दिया। उसे खुला रहने दिया जाता तो ऊपरी खाने के विष-जन्तुओं के निकल आने के बाद भीतरी खाने की अमृत-परियाँ भी उसमें से निकलतीं और पृथ्वी के आकाश में कुछ समय तक विष और अमृत का

युद्ध होने के बाद यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाती। लेकिन उस समय ऐसा नहीं होना था और संसार के क्रमिक विकास की दृष्टि से सम्भवतः होना भी नहीं चाहिए था। अब समय आ गया है कि हृदयों को खोलने और खुला रहने देने का प्रयोग कुछ समझदार लोग करें। संसार के सुखद परिवर्तन का यही मार्ग है। ऐसा ही एक छोटा-सा प्रयोग हम भी इस गोष्ठी में करने जा रहे हैं। मैं अपना हृदय आपके सामने खोलने की बात सोच रहा हूँ। उसमें से पहले कुछ विष-पदार्थ ही निकलेगा। कुछ ही निकलेगा, क्योंकि बहुतकुछ पिंडोरा की कृपा से पहले ही निकल चुका है। उस विष के बाद शीघ्र ही सरस अमृत भी उसमें से निकलेगा। ऐसे हृदयवान् व्यक्तियों की एक काफी बड़ी संख्या अब संसार में हो गई है, जिनके हृदयों का विष पूर्णतया निकल गया है और अब अमृत ही अमृत निकलता है। मेरे हृदय के आँगन में आपका मेरे ऐसे भी कुछ स्वजनों से परिचय होगा। मेरे हृदय में उनका निवास है, लेकिन वे उस आवास में सीमित नहीं हैं। वे उससे बाहर भी असंख्य हृदयों और हृदयेतर वस्तुओं में रहते हैं। वे मानव जाति के सुन्दरतम, समर्थतम और सोद्देश्यतम व्यक्तियों में हैं। मानव-जीवन के समस्त विभागों—शिक्षा, संस्कृति, कला, आचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति, युद्ध, सन्धि, उद्योग, व्यवसाय, विज्ञान, ज्ञान आदि सभी विभागों—में उनकी गहरी, क्रियात्मक रुचि है। उनके पेशे के आधार पर उनका जातिवाचक नामकरण करते हुए किसी ने ठीक ही उन्हें मछवाहों - मछली पकड़ने वालों—का नाम दिया है। उनका काम है मनुष्य के मछली-रूपी हृदय को पकड़ना और उसे ग्रीष्मऋतु में सूख जाने वाले ओछे पोखरों से निकाल कर सतत प्रवाहशील समुद्र से मिले हुए नदों में ले जाना। 'मेरे पीछे आओ और मैं तुम्हें मनुष्यों का मछवाहा बना दूँगा'—'*Follow me and I will make you fishers of men*'.—यह एक ऐसे ही लोक-परिचित, समर्थ मछवाहे की लगभग दो हज़ार वर्ष पहले कही हुई प्रसिद्ध उक्ति है।

मैंने उस मछवाहे का कुछ अनुगमन किया है और अब मैं भी उसी की जाति का हूँ। आज का विकसित युग जाति-वाद से ऊपर का युग है, इसलिए आपको मेरी इस जातीयता से शंकित या चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति, जिसमें शक्ति या सौन्दर्य कर कोई-सा भी आकर्षण है और जो दूसरों के प्रति चाव रखता हुआ उन्हें अपने भीतर की कोई भेंट देना चाहता है, अपने उस आकर्षण के अभिप्राय को समझते ही इस मछवाहों की जाति में सम्मिलित हो जाता है। यह एक सार्वभौमिक जाति है और काले, गोरे, हरे, पील, नीले सभी वर्णों और सभी प्रकार के रीति-रिवाज और विविध विश्वासों और अविश्वासो के व्यक्ति इसमें सम्मिलित हैं। आप दस व्यक्तियों को मैंने अपनी मित्रता और उपासना के लिए मुख्यतया इसी आधार पर चुना है कि आपमें भी मछवाहों के गुणों के अंकुर मैंने देखे हैं। मेरे 'उपासना' शब्द का कृपया कोई ग़लत या आडम्बरपूर्ण अर्थ न लगायें।

"अपने हृदय के आँगन की, उसमें विद्यमान् कुछ व्यक्तियों की बात मैंने आज और आपके सामने रक्खी है। लेकिन यह अभी केवल मौखिक सूचना है। हमारा व्यावहारिक कार्यक्रम तो तिरपनवीं गोष्ठी से प्रारम्भ होगा। तभी से उसकी वास्तविकता का कुछ आभास आपको मिल सकेगा। जिन व्यक्तियों की बात मैंने आज कही है वे निस्संदेह आपके लिए पहले के दो व्यक्तियों—धनी युवक और सुन्दरी तरुणी—से अधिक रोचक और उपयोगी हो सकते हैं। मेरे हृदय के आँगन में प्रवेश करने पर उन सबका परिचय आपको मिलेगा। क्या ऐसे समर्थ, सरस जनों की मैत्री का श्रेय आप मुझे ही नहीं देंगे? उनसे आपकी पहली भेंट यदि मेरे आँगन में हो तो उसका श्रेय मुझे ही मिलना चाहिए। आप मेरे अन्तरङ्ग परिवार के रूप में ही पहले उनसे मिलेंगे और इस प्रकार वे इस गोष्ठी से बाहर के नहीं, इसके भीतर के ही व्यक्ति होंगे। यह हम ग्यारह में से केवल एक व्यक्ति के—मेरे—खुले आँगन की भेंट होगी। तब आप कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि हम

ग्यारहों व्यक्तियों के खुले हृदयाङ्गणों की सम्मिलित सम्पत्ति कितनी बड़ी हो सकती है। आज मैंने अपने हृदय-गत कुछ व्यक्तियों की चर्चा की है, और अगली गोष्ठी में अपने हृदय-गत उस महान् गुण की चर्चा करूँगा जो आपके लिए मेरी सम्भवतः सबसे बड़ी देन हो सकती है। उसके बाद इस वर्ष की अवशिष्ट दो-तीन गोष्ठियों में हमें अगले वर्ष के क्रियात्मक कार्यक्रम की ही तैयारी करनी होगी।" ★

उन्चासवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"वह कौन-सा रंग है जिसमें आपकी आँखों को दीखने और न दीखने वाले सात श्रेणियों के सैकड़ों रंग सम्मिलित हैं? विज्ञान बताता है कि सभी रंगों के सन्तुलित मिश्रण से जो रंग बनेगा वह उज्वल श्वेत होगा। जिस प्रकार सफेद रंग में सभी रंग सम्मिलित हैं उसी तरह एक मानवीय गुण ऐसा है जिसमें मनुष्य के दूसरे सभी गुण आ जाते हैं। उस गुण को कोई एक नाम देना कठिन है, फिर भी आप उसे परिवर्तन-क्षमता, अरूढ़ता या सर्वग्राहकता की संज्ञा दे सकते हैं। इस गुण को प्रारम्भिक अवस्था में कभी कभी शुद्ध अविश्वास और विशुद्ध अनिश्चय के रूप में भी देखा जा सकता है। शुद्ध अविश्वास वह है जिसमें विपरीत पक्ष के प्रति भी कोई विश्वास न जमने दिया जाय। मैंने पहले भी कहा था कि अविश्वास हमारा सबसे पवित्र गुण है, लेकिन वह अपवित्र तब हो जाता है जब हम किसी प्रस्तुत की हुई बात के विरुद्ध अपना मत बना लेते हैं और प्रस्तुत वस्तु की वास्तविकता में नहीं उतरना चाहते। इस प्रकार अनिश्चय ही अविश्वास का शुद्ध रूप है। हो सकता है यह बात हो, हो सकता है न भी हो—ऐसी धारणा ही हमारी जागरूक मनोवृत्ति का लक्षण है। लेकिन

यह उस गुण का केवल ऋणात्मक पक्ष है। जब आप किसी प्रस्तुत बात के सम्बन्ध में कह सकें--'हो सकता है यह बात ठीक हो, हो सकता है यह सुन्दर भी हो, उपयोगी भी हो, हो सकता है यह ग्राह्य भी हो, इसके लिए मेरे पास स्थान भी हो'—तभी आप इस गुण के उभयांश में गुणी कहे जा सकते हैं। यह ऐसा गुण है जो आपके जीवन के प्रत्येक स्तर में, प्रत्येक व्यक्ति के साथ छोटे-बड़े सभी लेन-देनों में प्रति पल काम में आता है। मनुष्य इसका प्रायः अति सीमित-संकुचित या विकृत उपयोग करता है और धोखे तथा घाटे में ही रहता है। यही वह गुण है जिसकी मैं आज चर्चा करना चाहता हूँ, क्योंकि इसका यथेष्ट उपयोग किये बिना हम अपनी अभीष्ट दिशा में नहीं बढ़ सकते।

"भारत के एक महान् तत्वदर्शी से चीन के सम्राट् ने पूछा था : 'धर्म का पहला सिद्धान्त क्या है?' उसने उत्तर दिया था : 'एक व्यापक रिक्तता, जिसमें कोई भी भली वस्तु शेष न हो।' व्यापक रिक्तता यानी खालीपन, और ऐसा खालीपन जिसमें कोई भली वस्तु भी शेष न हो, फिर बुरी का तो प्रश्न ही नहीं रहता। अभिप्राय यह है कि आपका हृदय और मस्तिष्क किसी भी नई वस्तु को ग्रहण करने के लिए सर्वथा रिक्त हों और जो भी वस्तु उनमें आये उसे अमिश्रित रूप में ग्रहण कर सकें। आपका हृदय स्वच्छ दर्पण के समान हो जो किसी भी सामने आई वस्तु को प्रतिबिम्बित करने से इनकार नहीं करता और पूरी ईमानदारी के साथ किसी भी रंग और आकार की छोटी-से छोटी वस्तु को भी अपने भीतर अवस्थित करता है और सामने से उसके हट जाने पर पुनः रिक्त का रिक्त रह जाता है। दर्शन और योग की क्रियाओं के लिए नहीं, दैनिक जीवन की सरसता के लिए ही इस प्रवृत्ति का उपयोग है और इसीलिए मैं यहाँ इसकी चर्चा कर रहा हूँ।

"जब आप मेरे हृदय-गृह के अतिथि होंगे तब कुछ नये व्यक्तियों के साथ साथ कुछ नई वस्तुओं का भी वहाँ आपको परिचय मिलेगा और उन वस्तुओं में एक विशिष्ट, यह रिक्तता, परिवर्तन-क्षमता,

अरूढ़ता या सर्व-ग्राहकता का गुण भी आपको मिलेगा। पहले जहाँ मैंने मानसिक स्वतन्त्रता की बात कही है वहां इसी गुण की ओर संकेत किया है। यह गुण मुझमें है, किसी सीमा तक विकसित मात्रा में; और यह आप में भी है। यह गुण आप में है और इसके पूर्ण विकास की सम्भावनाएँ भी मैंने आप में स्पष्ट देखी हैं। यही एक गुण है जिसके आधार पर मैंने आपको अपनी अन्तरङ्ग मित्रता और इस गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया है। इस गोष्ठी के हम ग्यारह सदस्यों में और हज़ार बुराइयाँ या कमजोरियां हों लेकिन यह एक गुण अवश्य है, किसी में कुछ कम, किसी में कुछ अधिक। यह एक गुण सभी गुणों का गुण है और जीवन के समस्त नव निर्माणों की भाँति हमारे पारस्परिक सम्बन्धों के सुखद निर्माण के लिए भी इसी की आवश्यकता है। इसी के सहारे हम पारस्परिक द्वन्द्व-संघर्ष की दुर्धर्ष आंधियों में एक दूसरे के साथ टिके रह सकेंगे।

"अपने हृदय-गत जिन कुछ असाधारण व्यक्तियों से परिचय की बात मैंने कही है उनके प्रति आपका रुख क्या रहेगा? उनकी बात कह कर मैं आपको किसी प्रलोभन में नहीं डालना चाहता। आवश्यक नहीं कि वे सब आपको बहुत पसन्द ही आयें, उनमें मेरे गिनाये सभी गुण ज्यों के त्यों ही निकलें। आप अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार उनसे तटस्थ रहने के लिए स्वतन्त्र हैं और इसमें आपका कोई घाटा नहीं है। मेरी या आपकी उपार्जित कोई वस्तु ऐसी नहीं हो सकती, और मेरा या आपका सम्पर्क-गत कोई स्वजन ऐसा नहीं हो सकता जिसकी आवश्यकता दूसरे के लिए अनिवार्य हो। महत्व मेरे और आपके घरों में बसने वाले व्यक्तियों और वस्तुओं का उतना नहीं, बल्कि मेरे-आपके बीच मुक्त-द्वार आवागमन और मुक्त-हस्त आदान-प्रदान का ही है। बल्कि यदि मेरे किसी सुन्दर या समर्थ संगी से आप अत्यधिक आशाएँ बाँध कर उससे ही चिपट रहेंगे तो सम्भवतः एक मौलिक भूल करेंगे। कोई भी दूसरा व्यक्ति आपको आपके रस

और उपयोग की सबसे बड़ी वस्तु नहीं दे सकता, क्योंकि वैसी वस्तु तो स्वयं आपके ही पास है। मानवीय आदान-प्रदान का क्षेत्र बहुत बड़ा है, फिर भी उसकी एक सीमा है। जहां तक इस आदान-प्रदान के क्षेत्र की बात है, अभीष्ट प्रकार के लेन-देन के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की खोज और उपलब्ध व्यक्तियों के साथ उपयुक्त प्रकार का आदान-प्रदान हमें करना ही है। इस प्रकार परस्पर मांगी या प्रस्तुत की हुई वस्तु को देने और लेने का समुत्सुक खुलापन या कम से कम उन्हें मुक्त भाव से देखने-दिखाने का चाव हमारा वह महान् गुण है जिसके आधार पर हम अपना अगले वर्षों का व्यावहारिक प्रयोग सफल बना सकेंगे। संसार में अतीव सुन्दर, अत्यन्त समर्थ और चमत्कार की सीमा तक असाधारण व्यक्ति और सम्पदाएँ हो सकती हैं। हममें से किसी किसी का वैसे कुछ व्यक्तियों से सम्पर्क भी हो सकता है। लेकिन उन असाधारण व्यक्तियों के पास भी सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु है : हृदय, जो कि हम सभी के पास है। इसलिए हमारा यह प्रयोग किन्हीं अज्ञात, अलौकिक, असाधारण या आध्यात्मिक वस्तुओं की खोज के लिए नहीं होगा वरन् अपने सहज स्तरीय हृदय-जगत् के श्रमों और उपार्जनों, आंसुओं और मुस्कानों, आशाओं और अनुरक्तियों का ही सार्थक व्यापार हम इसके माध्यम से करेंगे—क्योंकि जीवन का परम रोचक और परम उपयोगी हमारे हृदय से बाहर नहीं है।" ★

पचासवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"मेरे परिचय और अधिकार में कुछ ऐसे व्यक्ति और वस्तुएँ हैं जिनकी पूरी उपयोगिता का अनुमान आप अभी नहीं कर सकते। आप सभी के परिचय और अधिकार में ऐसे कुछ व्यक्ति और वस्तुएँ हैं

जिनकी उपयोगिता का अनुमान दूसरों को नहीं है। जिस महान् प्रयोग की भूमिका हमने इस वर्ष की गोष्ठियों में तैयार की है, अगले वर्ष उसके व्यावहारिक पक्ष में प्रवेश करेंगे। उस व्यवहार का पहला चरण यही होगा कि हम एक-दूसरे के सम्पर्क-गत अधिक से अधिक व्यक्तियों एवं वस्तुओं को खुले रूप में जानेंगे। व्यक्तियों के वर्ग में हमें कुछ असाधारण व्यक्तियों का परिचय तो मिलेगा, ही साधारण व्यक्तियों के भी कुछ असाधारण पार्श्वों के दर्शन हम करेंगे। इसी प्रकार वस्तुओं के वर्ग में जहाँ हमें कुछ असाधारण वस्तुएँ एक-दूसरे के पास दीखेंगी वहाँ कुछ साधारण वस्तुओं के ही असाधारण पक्ष हमारे लिए विशेष उपयोगी होंगे। असाधारण के चेहरे की अपेक्षा साधारण के गर्भ में जो वस्तु होती है वही प्रायः विशेष चमत्कार-पूर्ण होती है। अतएव हम एक-दूसरे की प्रस्तुत की हुई इच्छाओं-आवश्यकताओं, मान्यताओं, अभिप्रायों, विचारों का उत्साहपूर्वक निरीक्षण करने और उनके स्वजन-वर्ग के साधारण-असाधारण व्यक्तियों का स्वागतपूर्वक परिचय पाने के लिए अपने आपको भरपूर खोलने का प्रयत्न करेंगे। हो सकता है कि आपके किसी विचार या अभिप्राय को प्रकट करने में किसी समय आपके शब्द अपूर्ण, असमर्थ, या कुछ उलटा ही आभास देने वाले हों। उस दशा में आपके शब्दों की आलोचना में न उलझ कर उनके पार आपके हार्दिक अभिप्राय तक पहुँचने का ही हम सब प्रयत्न करेंगे। दूसरों की दुर्बल एवं उलझी हुई भाषा के भीतर घुस कर उसके अन्तर्निहित अभिप्राय को समझने-सराहने की यह प्रवृत्ति यद्यपि बहुत कठिन है फिर भी उन लोगों के लिए बहुत आवश्यक है जो जीवन की गहराई में उतरकर कुछ पाना और करना चाहते हैं। आलोचना और परदोष-दर्शन वे ही कर सकते हैं जिनके सामने जीवन का कोई अभिप्राय नहीं है। अतएव सजग होकर हमें अपनी इस प्रवृत्ति को सम्हाले रहना है। यह एक आवश्यक और ऐसी बातों की कड़ी में लगभग अन्तिम बात थी जो मुझे आपसे कहनी थी।

"आज की गोष्ठी के पन्द्रह मिनट और इस वर्ष की शेष दो गोष्ठियों का एक घंटे का समय हमारे पास ऐसी बातचीत के लिए और है। दूसरे वर्ष की पहली बैठक से हमारा कार्यक्रम अधिक व्यावहारिक हो जायगा और हमारी संख्या एकदम तिगुनी से चौगुनी तक बढ़ जायगी। मेरा प्रस्ताव है कि अगली गोष्ठी में आप सभी लोग मिलकर उन व्यक्तियों की सूची प्रस्तुत करें जिन्हें आप इस गोष्ठी में लाना चाहते हैं और जो इसमें आने के लिए उत्सुक हैं। मेरी राय है कि सोच समझ कर हमें सक्षम और विचारशील व्यक्तियों को ही अभी इस गोष्ठी में सम्मिलित करना चाहिए और उनकी संख्या अगले वर्ष के लिए चवालीस से अधिक न होनी चाहिए। चवालीस की संख्या मैं एक सहायक प्रस्ताव के रूप में रख रहा हूँ; इसे आप चाहें तो कुछ घटा-बढ़ा भी सकते हैं। यह स्पष्ट है कि राह-चलते दर्शकों के लिए यदि हम अपनी गोष्ठी के द्वार खोल देंगे तो हमें बैठने और बातचीत करने के लिए स्थान की कमी पड़ जायगी और कुछ अनावश्यक असुविधाएँ भी उत्पन्न हो जायँगी।

"अगले वर्ष का हमारा कार्यक्रम क्या होगा और वह कैसे चलाया जायगा, इस सम्बन्ध में मुझे अधिक कहने की आवश्यकता न पड़ेगी। जीवन की अन्तिम सार्थकता कर्म में है। कर्म को आप सृजनात्मक और आदान-प्रदानात्मक दो भागों में बाँट सकते हैं। अकेला होने पर मनुष्य सृजनात्मक कर्म कर सकता है और दूसरे के सामने आते ही उस सृजन के उपयोगात्मक अंश—आदान-प्रदान की बारी आती है। जब भी दो व्यक्ति आमने-सामने होते हैं, कर्म का एक महान् अवसर उनके बीच होता है। लेकिन प्रायः दुर्भाग्य यह होता है कि वे उस अवसर को उपभोग में लाये बिना खो देते हैं या उसका दुरुपयोग कर बैठते हैं। उस अवसर को ठीक तरीके से पकड़ कर आश्चर्यजनक फल प्राप्त किया जा सकता है। हम यहाँ ग्यारह हैं और अब शीघ्र ही और भी अधिक होने वाले हैं। हमारे सामने अवसरों का भण्डार ही खुलने वाला है।

आपका अगला कार्यक्रम आपके मन और वाणी से स्वयं ही निकलेगा। मुझे आप अपने बीच आवश्यक अवसरों के लिए अपने परामर्शदाता का पद - अवैधानिक रूप में ही सही—दिये रहेंगे तो मुझे वह सेवा विशेष प्रिय होगी।

"जो कुछ हम करने जा रहे हैं उसकी प्रेरणा और प्रयोग एकदम नये नहीं हैं। इस सम्बन्ध में निकट विगत की केवल एक घटना की ओर मुझे संकेत करना है। लगभग एक शताब्दी पूर्व एक व्यक्ति के मन में ऐसी बात आई और उसने अपने एक समर्थ मित्र को प्रेरित कर उसके द्वारा एक क्लब की स्थापना की। उस क्लब की स्थापना में उसकी आन्तरिक भावना यही थी कि उसके सदस्य एक-दूसरे से परस्पर कुछ भी माँगने-पूछने, देने और न देने के लिए स्वतन्त्र हों और उत्तर में मिलने वाली दूसरे व्यक्ति की भेंट या अस्वीकृति को सहज, निरापद भाव से स्वीकार करने में समर्थ हों। उस व्यक्ति की लिखने-पढ़ने की भाषा अँगरेज़ी थी, इसलिए उसने इस क्लब के अभिप्राय को, अपनी गोपनीय डायरी में, जिन चार अँगरेज़ी शब्दों में अंकित कर रक्खा था वे थे—Ask, Give, Refuse, Accept—आस्क : माँगने या पूछने की स्वतन्त्रता ; गिव : देने की स्वतन्त्रता ; रिफ़्यूज़ : इनकार करने की स्वतन्त्रता ; और ऐक्सेप्ट : उस भेंट या अस्वीकृति को सहज भाव से अङ्गीकार करने की समर्थता। अपने क्लब का नाम ही उसने इन चारों शब्दों के प्रथम अक्षरों को जोड़कर रक्खा था। संयोग-वश इन चार अक्षरों से भारत के एक प्रसिद्ध नगर का नाम भी बनता है और यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वह नगर आपसे कितनी दूर है। उस नगर के नाम पर नहीं, उसके उन अक्षरों की उक्त भावना पर ही उस क्लब का नामकरण किया गया था—यह बात आज शायद ही उसके किसी सदस्य को ज्ञात हो। आप जानते हैं कि उस नगर में वह क्लब आज भी चल रहा है, किन्तु उस क्लब की भावना उसके किसी भी सदस्य के सामने है, मैं नहीं कह सकता। क्लब के मौलिक प्रेरक

से भिन्न किसी अन्य सदस्य के सम्मुख वह अभिप्राय कभी इतना स्पष्ट था या नहीं, यह भी संदिग्ध है। किन्तु उस संस्था की चेतना में उसके उक्त प्रेरक के अभिप्राय के बीज आज भी विद्यमान हैं और मेरे पास ऐसी आशा रखने के कारण हैं कि उस क्लब में उसका अभिप्राय एक बार फिर अंकुरित होगा। अगले वर्षों में उस क्लब के भी कुछ सदस्य हमारी गोष्ठी में सम्मिलित हो सकते हैं।

"इस संकेत से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमें किसी अन्य सभा-संस्था या क्लब-सोसाइटी से सम्बद्ध होकर कोई काम करना है। उस क्लब की यह चर्चा केवल प्रासंगिक है और हमारी गोष्ठी का कार्य वस्तुतः एक स्वतन्त्र, और अभी अपने आप में ही सीमित प्रयोग है। इस गोष्ठी की प्रगति को दिशा मिलने पर आवश्यक हुआ तो किसी समर्थ निर्देशक का भी आविर्भाव हमारे बीच यथासमय हो सकेगा।" ✱

इक्यावनवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"आज हमें उन नये व्यक्तियों की सूची बना लेनी है जो अगले वर्ष से हमारी गोष्ठी में सम्मिलित होंगे। मुझे आशा है कि आप सभी ऐसे कुछ नाम सोच कर लाये हैं। आपमें से प्रत्येक दो-दो ऐसे व्यक्तियों को निमन्त्रित कर सकता है जो आपके समझे-बूझे और इस गोष्ठी के लिए उत्सुक एवं हर प्रकार से उपयुक्त जान पड़ते हों। या इस कार्यवाही से भिन्न और भी कोई बात आज कहने-सुनने के लिए शेष है?"

"व्यक्तियों की ही नहीं, कुछ वस्तुओं की भी सूची हममें से कुछ लोग आज यहाँ प्रस्तुत करना चाहेंगे। आपने पिछली गोष्ठी में कहा

था कि हमारा अगला कार्यक्रम हम लोगों ने मन और वाणी से स्वयं ही निकलेगा। यह आपने मेरे और सम्भवतः कुछ और भी सदस्यों के मन की बात कह दी थी। पिछले कई सप्ताहों से जो बात मैं कहना चाहता था उसका अवसर आपने अपने उस संकेत द्वारा दे दिया है। क्या वह बात भी मैं इस समय प्रस्तुत कर सकता हूँ ?" दसवें आसन के धनिक सज्जन ने कहा।

"अवश्य ! हम उसे सुनने को सहर्ष उद्यत होंगे।" वीरभद्र ने अनुमति दी।

"जैसा आपने कहा था और हम सभी जानते हैं, रोटी की समस्या हमारी सबसे पहली समस्या है और रोटी के अभाव में हम जीवन की किसी भी दिशा में प्रगति नहीं कर सकते। मेरा विश्वास है कि इस गोष्ठी में हम मानव-सम्पर्क सम्बन्धी कुछ बहुत गहरे और समाज के लिए परम उपयोगी अन्वेषण करने जा रहे हैं। ऐसे अन्वेषक वर्ग को कम से कम रोटी की चिन्ता से मुक्त होना ही चाहिए। मेरी अनुरोध-पूर्ण भेंट है कि इस गोष्ठी के किसी भी सदस्य को जब भी कभी रोटी की कमी पड़े तो उसकी पूर्ति का अवसर वह कृपया मुझे दे। रोटी के अन्तर्गत मैं अन्न, दाल, साग और ईंधन को सम्मिलित करता हूँ। इन वस्तुओं के लिए आर्थिक संकीर्णता के समय इस गोष्ठी के जो भी प्रस्तुत और अगले वर्ष सम्मिलित होने वाले सदस्य मुझे इस सेवा का अवसर देंगे वे मुझे एक आन्तरिक सन्तोष का अवसर देंगे और मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँगा।" पूर्व वक्ता ने कहा।

"अगले वर्ष की तैयारी के क्रम में हमारे मित्र की यह भेंट विशेष महत्वपूर्ण है। वैसे अभाव-कालीन अवसरों के लिए हमें उनकी यह भेंट सहर्ष स्वीकार ही होगी।" वीरभद्र ने कहा।

"और रोग की समस्या को हमने जिस व्यापक रूप में यहाँ देखा है वह तो किसी दूसरे सहायक के बस की बात नहीं है, फिर भी साधारण शारीरिक रोगों के निश्शुल्क उपचार के लिए मैं अपनी सेवाएँ इस

गोष्ठी के सदस्यों को प्रस्तुत करना चाहता हूँ। अलबत्ता जो सज्जन औषधि का मूल्य मुझे सुविधापूर्वक दे सकेंगे उनसे लेने में भी मुझे आपत्ति न होगी।" सातवें आसन के डाक्टर सज्जन ने कहा।

"नगर से बाहर बड़े उपवन के बीच बना हुआ अपना एक पैतृक मकान मैं इस गोष्ठी के कार्यों के लिए समर्पित करने का संकल्प कर चुका हूँ। मेरा विचार है कि अगली साप्ताहिक गोष्ठियाँ यदि वहाँ की जायँ तो बहुत सुखकर रहेंगी। सप्ताह में एक बार सदस्यों को वहाँ लाने और वापस पहुँचाने के लिए मोटर बस की व्यवस्था भी मेरे पास है और मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार हो तो उसकी यह सेवा भी मैं भेंट करना चाहता हूँ।" छठे आसन के व्यापारी सज्जन ने कहा।

"गोष्ठी के अगले वर्ष का आरम्भ सचमुच किसी बड़े सार्थक चमत्कार का आरम्भ प्रतीत होता है। आज जिस प्रकार की भेंटें हमारे सामने अचानक खुलकर आरही हैं उनके इतने शीघ्र आने की कल्पना मैं नहीं कर सकती थी। देने के लिए मेरे पास कोई विशेष वस्तु तो है नहीं, फिर भी मैं चाहती हूँ—प्रारम्भ से ही मेरी इच्छा रही है कि इस गोष्ठी का सम्मेलन प्रति सप्ताह कुछ अधिक समय के लिए हुआ करे और उसके भोजन-सत्कार का अवसर मुझे मिले। गोष्ठी के सभी सदस्यों के लिए साप्ताहिक प्रीति-भोजन का निमन्त्रण मैं अपनी ओर से प्रस्तुत करती हूँ।" तीसरे आसन की प्रौढ़ महिला ने कहा।

"गोष्ठी के लिए निमन्त्रण भेजने और लिखने-पढ़ने आदि की क्लैरिकल सेवाएँ मैं अपनी प्रस्तुत करती हूँ। यह कार्य मुझे विशेष प्रिय होगा और सप्ताह में चार-पांच घंटे मैं पूरी सुविधा के साथ इसके लिए दे सकूँगी। इस सेवा को मैं अपनी कोई बड़ी भेंट नहीं मानूँगी क्योंकि इस गोष्ठी के लिए मेरी बड़ी भेंट तो मेरी वह सहेली होगी जो नये वर्ष की पहली गोष्ठी से ही अपने पति के साथ आपके बीच उपस्थित होगी। अपनी सहेली और उसके पति के ही दो नाम मुझे अपनी ओर से प्रस्तुत करने हैं।" चौथे आसन की कुमारी जी ने कहा।

"आपकी वह सहेली उस गोष्ठी के लिए आपकी नहीं मेरी भेंट होगी। आप को बताने का अवसर आज ही आया है कि वह दस वर्ष पहले, अपनी अठारह वर्ष की अवस्था से मेरे निकटवर्ती स्वजनों में है और उसकी योजनाओं का मुझे ज्ञान है। मेरी इस सूचना की पुष्टि उससे अगली भेंट में आप कर लेंगी। विश्वास रखिये, आपकी स्वयं की भेंट और उसके क्रम में आने वाली आपकी अगली भेंटें कम महत्व-पूर्ण नहीं होंगी।" वीरभद्र ने कहा।

"यह आश्चर्य-जनक है और मेरे लिए विशेष उत्साह-प्रद भी।" पूर्ववक्ता ने सूचित किया।

कुछ समय के लिए सभा में स्तब्धता रही। तत्पश्चात् दूसरे आसन की महिला ने कहा :

"हममें से कुछ लोग शेष हैं जिन्होंने अभी तक अपनी भेंट का कोई प्रस्ताव नहीं किया। मेरा विश्वास है कि उनके पास से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भेंटें हमें प्राप्त होनी हैं। नवें आसन के हमारे तरुण मित्र, आठवें आसन के वकील साहब, पाँचवें आसन के पत्रकार बन्धु और पहले आसन के मेरे पति ने भी अभी अपना मुख नहीं खोला। लेकिन मैं जानती हूँ कि इन सभी के पास देने के लिए कुछ बड़ी वस्तुएँ हैं। इस गोष्ठी के लिए अपने पति की असाधारण भेंट मुझे ज्ञात है और उसे शब्दों में प्रकट करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जो मौन और प्रतीक्षा में हैं उनकी भी भेंट साधारण नहीं होगी। अपने सम्बन्ध में मुझे प्रतीत होता है कि गोष्ठी के अगले कार्यक्रम की कुछ सामग्री, उसका आंशिक नक्शा, सम्भवतः मुझे भी आपके सामने रखना है। मेरी इस प्रतीति में वीरभद्र जी की मौन प्रेरणा का हाथ मुझे स्पष्ट दीखता है। पिंडोरा के जिस बक्स की उन्होंने चर्चा की थी उसके अनेक ऊपरी विषों को पीने का सामर्थ्य मैं अपने भीतर देखती हूँ। आपकी सभी कामनाओं और आवश्यकताओं को मैं अपने रजिस्टर में और रजिस्टर से भी पहले अपने हृदय के किसी सक्रिय भाग में सहन करने और स्थान

देने के लिए प्रस्तुत हूँगी। केवल सेक्स और प्रेम की ही नहीं, आपकी सभी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक स्तर की कामनाओं की बात मैं कह रही हूँ। उन सब की कुछ व्यवस्था करने का उत्साह मेरे मन में है और मैं यथावसर आपकी माता और भार्या, दोनों का कार्य अपनी सीमाओं के भीतर करना चाहती हूँ। इसके लिए मैं शीघ्र ही आपकी दृष्टि में यथेष्ट सुन्दर और सम्पन्न होने की आशा करती हूँ। अगले कार्य की कुछ प्रेरणा मेरे मन में आई है और यदि वीरभद्र जी को तथा आप सब को इसकी सार्थकता का आभास मिले तो मैं इस गोष्ठी की संयोजिका अथवा मन्त्राणी का पद सम्हालने के लिए स्वयं को प्रस्तुत करती हूँ—यदि ऐसे पद का निर्माण आप स्वीकार करें। मेरी नवयुवा सहेली की लेखकीय सेवाएं मेरे लिए बड़ी सहायक होंगी। अपनी जिस परम सुन्दरी सहेली की बात उन्होंने पहले भी कई बार कही है और जिसके सम्बन्ध में वीरभद्र जी ने आज एक विशेष रोचक रहस्योद्घाटन किया है उसका एक विस्तृत पत्र मुझे कल ही मिला है। उस पत्र के अनुसार ही मैं अपनी यह सेवा प्रस्तुत कर रही हूँ। पारस्परिक सम्पर्क का गहरा दर्शन और उसके लिए एक असाधारण प्रेरणा हमें वीरभद्र जी से मिली है और उसके अगले व्यावहारिक कार्यक्रम के लिए उनके पथ-प्रदर्शन, परामर्श और आप इस शब्द का गलत अर्थ न लगायें तो मैं कहूँगी हस्तक्षेप के सहारे ही हमारा काम चल सकेगा। प्रयोग के क्रम में उठने वाली हमारी उलझनों, मनोमालिन्यों और झगड़ों को निपटाने का काम वे ही कर सकेंगे, क्योंकि यह एक बहुत नाजुक प्रयोग होगा। हम सभी की दृष्टि में गोष्ठी के वैधानिक या अवैधानिक प्रधान का पद उनके लिए सुरक्षित है। मेरे इन प्रस्तावों में क्या आप कोई सुधार करना चाहेंगे ?"

"अवैधानिकता ही हमारी गोष्ठी की अभी तक विशेषता रही है और अपने आगामी विधान में भी हम उसे यथेष्ट स्थान दिये रह सकते हैं। आप लोगों ने जो जो बातें कही हैं वे सभी उपयोगी हैं

और उनके अनुसार व्यवहार करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं दीखती। अगले वर्ष के लिए गोष्ठी के अवैधानिक प्रधान का पद मैं स्वीकार करता हूँ और संयोजिका तथा उनकी सहकारिणी के पद, प्रस्ताव करने वाली दोनों महिलाओं को यथाक्रम भेंट करता हूँ। इसमें किसी को कोई आपत्ति हो तो कहें।" वीरभद्र ने कहा।

'यह सब ठीक है'—कई कण्ठों के स्वरों का अभिप्राय था।

इसके पश्चात् वीरभद्र को छोड़ शेष दसों सदस्यों ने कुछ नाम लिखाये, जिन्हें नये वर्ष की गोष्ठियों में निमन्त्रित करने के लिए दूसरे आसन की महिला ने लिख लिया। इन नये सदस्यों की संख्या इक्कीस हुई, जिनमें आठ महिलाएँ और तेरह पुरुष थे। इन आठ महिलाओं में चौथे आसन की कुमारी जी की सहेली और पांचवें, छठे, सातवें एवं नवें आसन के—पत्रकार, व्यापारी, डाक्टर, और नवयुवक की पत्नियों की गिनती विशेष रूप से सूचनीय है।

इतनी कार्यवाही के पश्चात् सभा विसर्जित हुई। ★

बावनवीं गोष्ठी

वीरभद्र ने कहा :

"पिछले वर्ष शरद् ऋतु के जिस प्रारम्भिक मास में हमने ये गोष्ठियाँ प्रारम्भ की थीं, इस वर्ष उसी सुहावने महीने में इनका पहला दौर सम्पूर्ण कर रहे हैं। इन गोष्ठियों का कार्य निरन्तर, निर्विघ्न और विशेष सफलता के साथ सम्पन्न हुआ है और हम नई मंजिल के द्वार पर पहुँचने में समर्थ हुए हैं। अगले सप्ताह की गोष्ठी आज की—आज की ही नहीं, आज तक की सभी गोष्ठियों से सर्वथा भिन्न होगी। आज की और अगले सप्ताह की गोष्ठियों के बीच एक गहरी, लम्बी खाई—खाई नहीं, खाड़ी होगी, उतनी ही लम्बी और गहरी जितनी

किसी भी दुस्साध्य, विस्फोट-सम्भव, शक्ति-गर्भा प्रयोग के सैद्धान्तिक अध्ययन और व्यावहारिक परीक्षण के बीच हो सकती है। अभी तक हमने महती मानवीय इच्छा से प्रेरित आदान-प्रदान की सम्भावनाओं का कुछ सैद्धान्तिक विवेचन किया है; अब उसके व्यावहारिक प्रयोग में उतरेंगे। अभी तक आपने चार फ़ीट गहरे इमारती तालाब में चार घंटे तक तैर सकने की कला सीखी है; अब आप अथाह गहरे सागर में चार घंटे की सीधी यात्रा पर निकलेंगे। चार घंटे का ही नहीं, आगे आपको चौबीस घंटे तक अपना अभ्यास बढ़ाना होगा। छिछले ताल और गहरे सागर की तैराकी का अन्तर आप देख रहे हैं या नहीं? इस दूसरे के लिए ही पूरे साहस और संकल्प की आवश्यकता है। यह प्रयोग जीवन की बाह्य और आन्तरिक शक्तियों के मन्थन का प्रयोग होगा। इसका नियमन भौतिक अणुशक्ति के नियमन से भी अधिक कठिन, और सफल होने पर उसके उपयोग से कहीं अधिक कल्याणकारी होगा। हमारी गोष्ठी का यह वर्ग निस्संदेह मनोजगत् की शक्तियों और प्रवृत्तियों का एक अन्वेषक वर्ग होगा, और यह तथ्य है कि हमारा भौतिक जगत् मनोजगत् का ही एक अनिवार्य, अविभाज्य अंग है। इस प्रकार हमारी खोजें समाज के भौतिक जीवन पर सीधा प्रभाव डालेंगी। आज मानव-जाति के सृजनशील वर्गों का अधिकांश, कम से कम निन्नानवे प्रतिशत, उसके भोजन, वस्त्र, निवास, परिवहन और शारीरिक व्याधि-निवारण के पाँच क्षेत्रों में संलग्न, इन्हीं में सीमित है। व्यवस्था, आचार, विज्ञान, राजनीति और शिक्षण की भी लगभग सभी संस्थाओं का उद्देश्यान्त यहीं हो जाता है। लेकिन हमारी यह गोष्ठी समाज के उन अल्प-संख्यक वर्गों में से एक है जो जीवन के मौलिक धरातल पर व्यापक शोध और सृजन का कार्य करते हैं।

"मनुष्य-मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध उसकी किसी मूलभूत सम्पर्क-कामना से ही सृजित होता है और उसीसे उसकी समस्त सामाजिक-नागरिक प्रवृत्तियों और संस्थाओं का जन्म होता है। यदि ये सम्बन्ध

स्वस्थ हैं तो उनकी उक्त प्रवृत्तियां एवं संस्थाएँ भी स्वस्थ होंगी, अन्यथा उनका रुग्ण होना अनिवार्य है। तब फिर लोक-कल्याण के लिए मानव-सम्बन्धों के दर्शन एवं परिमार्जन से बढ़कर मौलिक और व्यावहारिक दूसरा कौन-सा कार्य हो सकता है? स्पष्ट है कि हम तात्कालिक और सर्वकालिक उपयोग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करने जा रहे हैं। यह हमारे लिए गर्व की नहीं, फिर भी गौरव की बात है और उस गौरव को हम दूसरों के प्रति अपनी तुलनात्मक गुरुता के ओछे पात्र में नहीं, विनीत जिज्ञासा की अगाध अञ्जलि में ही ग्रहण कर सकते हैं।

"आज हम अपने प्रयोग के व्यवहार-कक्ष के द्वार पर हैं। इस व्यवहार भी रूपरेखा क्या होगी? हम इसे सहज ही बनाते और देखते चलेंगे। वैसे इसका रूप बहुत सरल होगा। हम आपस में एक दूसरे को खोजेंगे; इस खोज में स्वयं भी अपनी दृष्टि के सामने उभरेंगे। हम देखेंगे कि हमारा स्वजन क्या है और हम स्वयं क्या हैं। हम उन जर्जर, कमजोर तख्तों को भी देखेंगे जो हमारे पावों के नीचे आते ही चटक जाते हैं और जिनके कारण गिरकर हम एक दूसरे से दूर जा पड़ते हैं। आगे हम उस समतल, सुदृढ़ भूमि को भी खोज निकालेंगे जहाँ अपने किसी भी स्वजन से चिर-संयुक्त, निर्विघ्न रूप में मिलकर रह सकते हैं। हमारे पारस्परिक आदान-प्रदान में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक शालीनता, सहानुभूति और सत्कार के तीन शब्द प्रहरी बनकर सदा जागते रहेंगे। अपने स्वजन को हम पूर्णाङ्क स्वतन्त्रता देंगे और वही पूर्णाङ्क स्वतन्त्रता अपने लिए भी सुरक्षित रक्खेंगे। स्वतन्त्रता के आँगन से बाहर किया हुआ सत्कार सत्कार नहीं रह सकता और स्नेह एवं सहयोग को बन्धनों में बाँध कर जीवित नहीं रखा जा सकता। अतएव इस स्वतन्त्रता के प्राङ्गण में ही हम एक-दूसरे का सत्कार करेंगे। हमारा पारस्परिक सत्कार हमें किसी एक ओर नहीं, प्रत्युत अपनी अपनी मुक्त दिशाओं में, अपनी-अपनी विशिष्टताओं में विकसित होने का सम्बल देगा। हमारे पारस्परिक सम्पर्क की बढ़ती हुई रोचक-

ताएँ और नये नये उपयोग ही हमारे करने के लिए नये नये काम प्रस्तुत करेंगे। विधान और योजनाएँ हमें नहीं बाँधेंगी, हम ही अपने अभिप्रायों के लिए उनका जितना चाहें उपयोग करेंगे। हमने प्रारम्भ में अनुमान किया था कि यदि हम ठीक तरीके से परस्पर मिल सकेंगे तो हमारी सभी आवश्यकताएँ हमारे बीच से ही पूरी होकर हमारे जीवन की सरसता और समृद्धि का साधन जुटा देंगी। बहुत बड़े संतोष की बात है कि हमारा यह अनुमान अक्षरशः पूरा होता दिखाई देता है। पिछली गोष्ठी में अनायास ही आपके संकल्प-पूर्ण हृदयों से जो कुछ निकला है वह, हमारी तीसरे आसन की सदस्या के शब्दों के अनुसार, एक चमत्कार ही है। एक सुमति-सम्पन्न समृद्ध परिवार के प्रारम्भिक निर्वाह के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो सकती है वे सभी आपकी उन भेंटों में आ जाती हैं।

"मेरा बड़ा सौभाग्य है कि ऐसे स्नेह-समर्थ, मुक्त-हृदय मित्रों का वर्ग मुझे मिल गया है। संसार के महान् शिक्षकों और महापुरुषों को अपना हृदय-दान करने वाले श्रद्धालुओं के वर्ग मिलते रहे हैं, किन्तु समता और मैत्री के धरातल पर मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को उसके समस्तरीय इतने मित्रों का ऐसे जागरूक भाव से मिल जाना एक दुर्लभ संयोग है। इस संयोग को निभाने का महत्वपूर्ण, साथ ही अत्यन्त कठिन कार्य हमें करना है। एक तरह से आज की गोष्ठी हमारी अंतिम और विदाई की गोष्ठी है। आज तक हम लोकाचारिक आवरणों-परिधानों में एक-दूसरे से मिले हैं, अगले सत्र में हमें निरावरण होकर मिलने का प्रयास करना है। जैसा मैंने कहा, यह गहरे सागर की पहली निरवलम्ब यात्रा होगी। लेकिन आप चिन्ता न करें, यह उतनी भयावह नहीं जान पड़ेगी, क्योंकि इसमें आप अकेले नहीं होंगे और नया परिवर्तन आप पर अचानक आक्रमण करता नहीं प्रतीत होगा। मैं देख रहा हूँ, आपके मन में अनेक प्रश्न बीतते वर्ष के, अनपूछे और अनबताये पड़े हैं। जो चर्चाएँ हमने इस वर्ष की हैं वे अनेक स्थलों पर

अधूरी छूट गई हैं। उन सब के समाधान का अवसर अगले वर्ष आयेगा। उन चर्चाओं का अभिप्राय अवश्य पूरा आपके सामने आ चुका है। हमारी अगली गोष्ठी आज के ही दिन हमारी सम्मान्या सदस्या के, जो कि इस सभा में तीसरा--यह तीन का अङ्क प्राकृतिक अङ्क विद्या के अनुसार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्क है, ऐसा तीसरा आसन ग्रहण करती आई हैं, 'उनके घर पर होगी। और नये वर्ष की वह पहली गोष्ठी जिसमें हमारे नये सदस्य भी सम्मिलित होंगे, एक सुरुचिपूर्ण प्रीतिभोज के बीच पारस्परिक परिचय से प्रारम्भ होगी। ऐसा निमन्त्रण उन्होंने कल मेरे पास लिखकर भेज दिया था। यथेष्ट व्यवस्था हो जाने पर हम अपने छठे आसन के मित्र द्वारा प्रस्तुत उनके वाटिका-भवन में इन गोष्ठियों की बैठक बना लेंगे।

"मेरी सब बात पूरी हो चुकी है और इस घर की अन्तिम वस्तु, चाय के कुछ प्याले आपकी प्रतीक्षा में हैं। इन चाय के प्यालों में चाय, पानी, दूध और चीनी के अतिरिक्त एक पाँचवीं वस्तु मैं विशेष रूप से आपको पिलाना चाहता हूँ—*वर्ष भर की चर्चाओं का सबसे अधिक शक्तिशाली और सारगर्भित एवं सृजन-समर्थ शब्द : प रि व र्त न–क्ष म ता, जिसके पर्यायवाची शब्दों में आप रिक्तता, अरूढ़ता, अनिश्चय, अविश्वास, सर्वग्राहकता आदि को यथावसर गिन सकते हैं।*"

वीरभद्र के इन शब्दों के साथ वर्ष भर की गोष्ठियों की वार्ता समाप्त हुई। उसके साथ नीचे के कमरे में उतर कर सबने चाय ली। चाय से निवृत्त होकर ज्यों ही सब लोग घर के बाहरी द्वार पर पहुँचे एक विशेष सुन्दर, नई चमचमाती कार आकर वहाँ रुकी और उसके भीतर से निकल कर असाधारण रूप-वैभव-सम्पन्न युवक और युवती के एक प्रसन्न युगल ने उन सबको अभिवादन किया। ★

—:०:—